शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 12 अंक : 1 1 अगस्त 2019

(श्रावण-भाद्रपद, विक्रम संवत् 2076)

संस्थापक
स्व. मुकुन्दराव कुलकर्णी

❖

परामर्श
के.नरहरि
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
जगदीश प्रसाद सिंघल
शिवानन्द सिन्दनकेरा

❖

सम्पादक
डॉ. राजेन्द्र शर्मा

❖

सह सम्पादक
भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक
डॉ. शिवशरण कौशिक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय**
कार्यालय प्रभारी :
आलोक चतुर्वेदी : 8619935766

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग, जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13, कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष : 011-22914799

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/– वार्षिक शुल्क 200/– आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

राष्ट्रीय आंदोलन में स्वातंत्र्यवीर सावरकर का शैक्षिक आयाम

q हनुमान सिंह राठौड़

अपने अध्ययन व पठित पुस्तक के सारांश व उद्धरणों को वीर सावरकर ने पृथक् पुस्तिका में, जिसे वे 'सर्वसार संग्रह' कहते थे, लिखने का स्वभाव बनाया। इसके संबंध में उनका कथन है, ''इस कारण मेरा वाचन धूल पर बनी लकीरें नहीं रहता था और पूरी तरह पच जाता था। फिर आवश्यकता पड़ने पर उस टिप्पणी को देखते ही सारा विषय आँखों के सामने आ जाता और फिर जब चाहता, उस विषय पर निबंध या व्याख्यान देना सम्भव हो जाता। वह हमारी 'मित्र मेला' की साप्ताहिक बैठकों के लिए भी उपयोगी रहा। पढ़कर जो समझा, जब उसे दूसरों को कहने जाते, तो कई गुना अधिक समझ में आ जाता।

5

अनुक्रम

4.	संपादक की कलम से....	– डॉ. राजेन्द्र शर्मा
9.	हमारी ज्ञाननिधि पर अंग्रेजी आक्रमण	– वासुदेव प्रजापति
11.	स्वतंत्रता आंदोलन, महात्मा गांधी और शिक्षा	– प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय
16.	स्वामी दयानन्द सरस्वती का शैक्षिक अवदान	– प्रो. बीना शर्मा
20.	ठाकुर के शिक्षा दर्शन में प्राकृतिक परिवेश	– जगमोहन सिंह राजपूत
22.	ब्रिटिश काल में कैसे लुप्त हुई भारतीय ज्ञान परम्परा	– गोविन्द प्रसाद शर्मा
26.	शिक्षा से आनन्दोत्कर्ष	– डॉ. नन्द सिंह नरूका
29.	वन्देमातरम् : राष्ट्रवाद का मूल मंत्र	– प्रो. मधुर मोहन रंगा
31.	भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और पत्रकारिता	– डॉ. शिवशरण कौशिक
34.	भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और शिक्षा	– प्रो. प्रकाश चन्द्र अग्रवाल
37.	जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो	– श्रीमती भारती दशोरा
39.	भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में समाचार-पत्रों	– श्रीमती अनीता मोदी
41.	ब्रह्म समाज और आर्य समाज का शैक्षिक योगदान	– श्रीमती दीप्ति चतुर्वेदी
43.	स्वतंत्रता पूर्व शिक्षा का स्वरूप एवं परिणाम	– बजरंग प्रसाद मजेजी
51.	औपनिवेशिक भारत की शिक्षा व्यवस्था	– डॉ. सुमनबाला
55.	भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और आर्य समाज	– डॉ. राधाकृष्ण
57.	राष्ट्रीय एकता में संस्कृत का योगदान	– डॉ. ओम प्रकाश पारीक
60.	स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान शिक्षा व्यवस्था	– डॉ. राकेश कुमार शर्मा
62.	भारतेन्दु मण्डल का योगदान	– प्रियंका कुमारी गर्ग
65.	Bharatiya Struggle for independence and	– Dr. T. S. Girishkumar
68.	Role of Education during Indian Freedom	– Sudhir Singh
70.	Women in Indian Freedom Struggle: Role	– Aaradhana Singh
72.	भारत के विचारों की लींचिंग	– प्रो. सतीश कुमार
74.	गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा	– प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल
78.	स्वतंत्रता आंदोलन काल में जयपुर की संस्कृत शिक्षा	– डॉ. नाथू लाल सुमन
80.	गाँधी के विचार और राष्ट्रवाद	– प्रो. सतीश कुमार
83.	गतिविधि	

ब्रिटिश समय से चली आ रही आज की शिक्षा व्यवस्था अनेकानेक समस्याओं से ग्रस्त है। बाजार में तब्दील हो चुकी शिक्षा से बहुत कुछ पीछे छूटा जा रहा है। सेवा व मिशन भाव के स्थान पर निजी स्कूल-कॉलेज मोटा लाभ कमाने का माध्यम बन गये हैं। शासन की ओर से भी शिक्षा पर खर्च भी कम किया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में 'आयुस्मान भारत' जैसी एक ऐसी ही पहल अपेक्षित है जिससे प्रत्येक को शिक्षा का समुचित अवसर मिल सके, उनमें मूल्यों का वर्धन हो सके एवं उन्हें क्षमता व योग्यतानुसार आजीविका प्राप्त हो सके।

संपादकीय

अपना यह विशेषांक 'भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और शिक्षा' को समर्पित है। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व देश के हर ग्राम में छोटा-बड़ा विद्यालय था। सर टामस मुनरो ने अपनी सर्वेक्षण रिपोर्ट में परन्तु है कि मद्रास प्रान्त के प्रत्येक गाँव में पाठशाला थी। अंग्रेजों ने भारत की शिक्षा व्यवस्था को निष्प्रभावी बनाने का कार्य योजनापूर्वक किया। उनकी शिक्षा-नीति इस सिद्धान्त पर आधारित थी कि यदि किसी देश को अधीन बनाए रखना है तो उसके ज्ञान, साहित्य, शिक्षा और संस्कृति को नष्ट कर देना चाहिए। इसी नीति को अंग्रेज कार्यरूप में परिणत करते रहे। चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य के समय निर्मित महरौली का लौह स्तम्भ धातु विज्ञान के क्षेत्र में हमारी उत्कृष्टता का प्रमाण है जिस पर डेढ़ हजार वर्षों के बाद भी जंग नहीं लगी, परन्तु लौह-इस्पात की इतनी समृद्ध विरासत का उपयोग करने के स्थान पर अंग्रेजों ने भारत में रेल्वे के लिये इंग्लैण्ड से लोहा आयात किया ताकि ढाका की मलमल एवं लघु-कुटीर उद्योग की तरह लोहा-इस्पात के काम को ठप्प किया जा सके तथा इसमें लगे कुशल कामगारों को बेकार किया जा सके।

ब्रिटिश शासन ने अपने औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए अंग्रेजी माध्यम के शैक्षणिक संस्थान प्रारम्भ किये जिससे कम कीमत पर अंग्रेजी भाषा में शिक्षित कार्मिक मिल सके। ब्रिटिश शिक्षा ने ज्ञान-विज्ञान का इतिहास कुछ इस रूप में प्रस्तुत किया कि मानो ज्ञान-विज्ञान के सारे अनुसंधान एवं शोध यूरोपीय देशों में ही हुए हैं। चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, नागार्जुन, वराहमिहिर आदि के योगदान को विस्मृत किया गया। इस शिक्षा ने हमें हमारी जड़ों से काटा। इसे उदर पोषण का आधार बना दिया तथा एक ऐसी परीक्षा प्रणाली शुरू कर दी जो विद्यार्थी की रटने की योग्यता की जाँच करती है। शिक्षा की यह स्थिति देखकर ही महात्मा गाँधी ने अंग्रेजों से कहा कि 'आपने शिक्षा के रमणीय वृक्ष (Beautiful Tree) की जड़ें काट दी है तथा इसके स्वरूप को ही बिगाड़ दिया है।'

स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान अंग्रेजों के इतर राष्ट्रवादियों ने शिक्षा के विस्तार में उल्लेखनीय योगदान दिया। नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय ने कलकत्ता में हिन्दू कॉलेज एवं वेदान्त कॉलेज की स्थापना की। प्रार्थना समाज के महादेव गोविन्द रानाडे ने 'दक्कन एजुकेशन सोसाइटी' की तथा श्री धोंदो केशव कर्वे ने बम्बई में प्रथम महिला विश्वविद्यालय की स्थापना की। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने स्वराज, स्वदेशी, स्वधर्म और स्वभाषा पर बल दिया। स्वामी जी ने अछूतों एवं स्त्रियों के वेद पढ़ने, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए न केवल आन्दोलन चलाया अपितु आपके सहयोगियों ने डीएवी शिक्षण संस्थायें तथा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय प्रारम्भ। स्वामी विवेकानन्द जिन्हें सुभाष चन्द्र बोस ने राष्ट्रीय आन्दोलन का आध्यात्मिक पिता कहा, ने शिक्षा संबंधी विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है कि मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है। उन्होंने मनुष्य बनाने वाली शिक्षा की आवश्यकता बताते हुए मनुष्य निर्माण को शिक्षा का उद्देश्य बताया।

ब्रिटिश समय से चली आ रही आज की शिक्षा व्यवस्था अनेकानेक समस्याओं से ग्रस्त है। बाजार में तब्दील हो चुकी शिक्षा से बहुत कुछ पीछे छूटा जा रहा है। सेवा व मिशन भाव के स्थान पर निजी स्कूल-कॉलेज मोटा लाभ कमाने का माध्यम बन गये हैं। शासन की ओर से भी शिक्षा पर खर्च भी कम किया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में 'आयुस्मान भारत' जैसी एक ऐसी ही पहल अपेक्षित है जिससे प्रत्येक को शिक्षा का समुचित अवसर मिल सके, उनमें मूल्यों का वर्धन हो सके एवं उन्हें क्षमता व योग्यतानुसार आजीविका प्राप्त हो सके। समय की माँग है कि शिक्षा से जुड़े सभी सम्बद्ध पक्ष-शिक्षाविद, शिक्षक, शिक्षार्थी अभिभावक एवं शासन अपनी-अपनी भूमिका सशक्त रूप से निभायें।

शुरूआत इसरो की महत्त्वपूर्ण 'उडान' से। सोमवार, 22 जुलाई 2019 को दोपहर 2.43 बजे श्री हरिकोटा से चन्द्रयान-2 के सफलतापूर्वक प्रक्षेपण के साथ भारत ने अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में नया इतिहास रचा। प्रक्षेपण के 16 मिनट बाद यह पृथ्वी की कक्षा में स्थापित हो गया। सितम्बर के प्रथम सप्ताह में चन्द्रयान-2 का लैंडर चाँद की सतह पर उतरेगा। इसके साथ ही अमेरिका, रूस और चीन के बाद भारत ऐसी उपलब्धि हासिल करने वाला दुनिया का चौथ देश बन जाएगा। इस मिशन की खास बात यह है कि चन्द्रयान-2 चन्द्रमा के दक्षिण ध्रुवीय क्षेत्र में उतरेगा जहाँ आज तक कोई देश नहीं उतरा है।

– डॉ. राजेन्द्र शर्मा

राष्ट्रीय आंदोलन में स्वातंत्र्यवीर सावरकर का शैक्षिक आयाम

अपने अध्ययन व पठित पुस्तक के सारांश व उद्धरणों को वीर सावरकर ने पृथक् पुस्तिका में, जिसे वे 'सर्वसार संग्रह' कहते थे, लिखने का स्वभाव बनाया। इसके संबंध में उनका कथन है, ''इस कारण मेरा वाचन धूल पर बनी लकीरें नहीं रहता था और पूरी तरह पच जाता था। फिर आवश्यकता पड़ने पर उस टिप्पणी को देखते ही सारा विषय आँखों के सामने आ जाता और फिर जब चाहता, उस विषय पर निबंध या व्याख्यान देना सम्भव हो जाता। वह हमारी 'मित्र मेला' की साप्ताहिक बैठकों के लिए भी उपयोगी रहा। पढ़कर जो समझा, जब उसे दूसरों को कहने जाते, तो कई गुना अधिक समझ में आ जाता।

❑ हनुमान सिंह राठौड़

महात्मा गाँधी द्वारा घोषित 'भारत छोड़ो आंदोलन' में कांग्रेस को समर्थन देने के सम्बन्ध में हिन्दू महासभा की शर्तों का स्पष्टीकरण वीर सावरकर ने 2 अगस्त 1942 को पुणे के अपने प्रसिद्ध भाषण में किया। इन शर्तों में भारत की अखण्डता की पूर्ण प्रतिभूति, मुस्लिम लीग जैसी राष्ट्र विरोधी संस्था से कोई समझौता न करने आदि के साथ देवनागरी लिपि युक्त हिन्दी भाषा को देश की सम्पर्क भाषा (Lingua Franca) के रूप में स्वीकृति भी थी।

कांग्रेस ने उस समय किसी भी शर्त को स्वीकार करने का संकेत भी नहीं किया परन्तु वीर सावरकर की दूर दृष्टि का प्रत्यक्ष दर्शन आज हो रहा है जब अंग्रेजी लगभग सभी भारतीय भाषाओं को निगलती जा रही है। अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों का योग आज भारतीय भाषाओं से अधिक है तथा इसमें राज्य सरकारों की सर्वाधिक भूमिका है।

शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएँ हों, इसी आधार पर अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों के विरुद्ध अपनी अस्मिता एवं स्वाधीनता की ललक जगाने वाले राष्ट्रीय विद्यालयों, आर्य समाज के गुरुकुलों की एक शृंखला स्वाधीनता आंदोलन के काल में प्रारम्भ हुई थी। घर और राष्ट्रीय विद्यालयों में मिले संस्कारों का ही परिणाम महान् देशभक्त, स्वतंत्रता सेनानी, क्रांतिकारियों का प्रादुर्भाव उस काल में हो पाया।

स्वातंत्र्यवीर सावरकर 'अपनी' कहने योग्य प्रथम स्मृति अपनी सात-आठ वर्ष की आयु की बताते हैं जब रात्रि भोजन के बाद नित्य उनके पिताजी अपने बड़े पुत्र (बाबा राव सावरकर) से मराठी के किसी ग्रंथ का वाचन करवाते थे तथा पिताजी उस प्रसंग पर माँ से चर्चा करते थे। बच्चे उस चर्चा के श्रोता वर्ग में रहते थे। घर में पढ़े जाने वाले ग्रंथों में 'राम विजय', 'हरि विजय', 'पांडव प्रताप', 'शिव लीलामृत', 'जैमिनी अश्वमेध' आदि प्रमुख थे।

वीर सावरकर की भाभी अपने संस्मरणों में लिखती हैं ''ग्यारह वर्ष के थे, पर पुस्तकों पर जैसे टूट पड़ते थे। हमारा गाँव (भगूर, नासिक) जैसे गकुग्राम ही था, पर चार-पाँच समाचार-पत्र आ जाते थे। हर किसी से समाचार-पत्र ले आना, पढ़कर लौटा आना। वैसे ही पुस्तकों का, कहीं

पुस्तक दिख जाए तो उसे उनको पढ़ना ही था। उस समय वे 'पेशवा की बखर' नामक पुस्तक का वाचन कर रहे थे। उस पुस्तक में सवाई माधव राव का एक चित्र था। उस चित्र को उन्होंने अलग कागज पर चित्रित किया। हम सबको दिखाया, मुझे अच्छा लगा। सवाई माधवराव पर एक होली-गीत लिखा। हम सबको लिखवाया। घर में ही टँगे बड़े झूले पर बैठ हम उसे गाते। उसके रचे गीतों में आर्यभूमि के उद्धार की बात अवश्य पिरोई रहती। मराठी में एक प्रकार का गीत 'फटका' कहलाता है। फटका माने फटकार। जो चेतते नहीं उनके लिए। देवरजी ने एक ऐसा स्वदेशी फटका रचा था जो बहुत लोकप्रिय था। गणपति उत्सव की तो जान ही था वह फटका।''

बाल्यकाल से ही वीर सावरकर के साथ एक संगठित मित्र-मण्डल रहता था। अपने बाल सखाओं के सम्बन्ध में वे कहते हैं- ''मेरी संगति में समाचार पत्र आदि पढ़ने का चाव उन्हें लगा और उनके मन-बुद्धि का विकास हुआ। मेरे लड़कपन के राष्ट्रीय आंदोलन और राजनीति में वे प्रमुखता से भाग लेते थे। उनकी नौटंकी (नाट्य मण्डली) के लिए मैंने उन्हें कुछ उपदेश परक, राजनीतिक लावणियाँ और झगड़े रचकर दिए।''

महाभारत को ज्ञान का विश्वकोश कहते हैं किन्तु अधिकांश लोगों में यह अंधविश्वास है कि महाभारत घर में रखने पर घर में महाभारत हो जाता है। ऐसा ही प्रसंग वीर सावरकर के बचपन का है जब उनके आरण्यक ग्रंथ पढ़ने पर पिताजी ने डांटते हुए पोथी छीन ली कि ''यह आरण्यक है, इसे घर में पढ़ना नहीं चाहिए, नहीं तो घर अरण्य हो जाएगा।'' हिन्दू समाज में आयी अशास्त्रीय बातों का यह उदाहरण है। वीर सावरकर लिखते हैं- 'पानी में देखोगे तो दाँत गिर जाएँगे', ऐसी धमकाने वाली फलश्रुति की तरह ही पिताजी द्वारा कथित आरण्यक पढ़ने पर होने वाली फलश्रुति भी थी। और मेरी विद्रोही तात्त्विक बुद्धि को वह स्पष्ट अर्थवाही बिजूका दिखाने पर मैं उससे बिना भयभीत हुए देखूँ कि कैसे दाँत गिरते हैं? कहता हुआ बार-बार पानी में झाँककर देखने को आतुर बालक की भाँति आरण्यक के उन रंगे पृष्ठों को बार-बार देखता और पढ़ता।''

वीर सावरकर के अनुसार घर में रखी 'ए शोर्ट हिस्टरी ऑफ वर्ल्ड' पुस्तक ने उनके मन पर एक चिरस्थायी परिणाम अंकित किया। बचपन में ही उन्होंने विष्णु शास्त्री चिपलूणकर की 'निबंध माला', पुराने काव्य-इतिहास संग्रह के अंक, महाभारत का अनुवाद, होमर का इलियट पढ़ लिया था। पिताजी ने नासिक से लाकर पेशवा और शिवाजी की बखर (इतिहास) दी। सावरकर ने उन्हें कई बार पढ़ा तथा अपने बाल-मित्रों से उसके बारे में चर्चा की।

वीर सावरकर ने आठ वर्ष की आयु से कविताएँ लिखना प्रारम्भ कर दिया था। उनकी 'स्वदेशी की फटकार' नामक प्रथम कविता है जो समाचार पत्र में छपी। इस समय उन्होंने 'देवी दास विजय' ग्रंथ लिखा जिसमें अंग्रेजों के अत्याचारों का वर्णन 'दैत्य', 'पृथ्वी भार हरण', 'अवतार' आदि का ठेठ पौराणिक भाषा में किया।

भगूर की प्राथमिक शाला में पाँचवी कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद अगली कक्षा में प्रवेश हेतु वीर सावरकर नासिक आ गए। यहाँ की दिनचर्या व सहपाठी छात्रों के संबंध में वे लिखते हैं- ''अध्ययन, व्यायाम, वाचन आदि में मेरा समय बँटा रहता था। शेष समय में राजनीति पर चर्चा करना मुझे अच्छा लगता था। पर उनमें मुझे ऐसा कोई दिखा नहीं। मुझे तो उन पढ़े-लिखे नागरिकों की तुलना में भगूर के वे ग्रामीण बंधु ही अधिक ज्ञानी, देशभक्त, सत्संगी और राजनीतिक चर्चा के अधिक मर्मज्ञ लगते थे।''

नासिक के शिवाजी स्कूल में अध्ययन करते समय 'हिन्दू संस्कृति का गौरव', शीर्षक लेख 'नासिक वैभव' में छपा। उसकी भाषा-शैली और विचारों का बड़ा प्रभाव समाज पर हुआ। लोगों ने लेखक के बारे में पूछताछ की तो यह जानकर प्रभावित हुए कि इसका लेखक सावरकर अंग्रेजी प्राथमिक विद्यालय का छात्र है। नासिक में होने वाली वाद-विवाद प्रतियोगिता में वीर सावरकर का पहला सार्वजनिक व्याख्यान हुआ और इसमें उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया।

अपनी वक्तृत्व कला के संबंध में वीर सावरकर लिखते हैं- ''संक्षेप में यह कि भाषण-कला के लिए कुछ आवश्यक घटक यद्यपि मुझमें प्रकृति प्रदत्त ही थे, फिर उनका विकास कर उसे परिशोधित कर, उसे कला का लालित्य प्राप्त कराने के लिए मैंने पूरे प्रयास भी किए। यह बात सच है कि ज्ञान-साधना मैंने ज्ञान प्राप्ति के लिए ही की थी। व्याख्यानों में जो उसका उपयोग हुआ, वह दूसरा लाभ था।''

सावरकर जी का यह गुण था कि वे जो भी पुस्तक पढ़ते उसके महत्त्वपूर्ण अंश अलग पुस्तिका में लिख लेते तथा उद्धरण कण्ठस्थ कर लेते थे।

चाफेकर बंधुओं के बलिदान पर वीर सावरकर ने एक प्रशस्ति गीत (चापकर का फटका) लिखा जो अत्यंत प्रसिद्ध हुआ। अंग्रेजों से भयभीत कोई समाचार पत्र इसे छापने को तैयार नहीं हुआ। वीर सावरकर ने अपनी कुल देवी के समक्ष प्रतिज्ञा की कि, ''अपने देश की स्वतंत्रता के लिए मैं सशस्त्र युद्ध में चापेकर की तरह ही मर जाऊँगा या शिवाजी जैसा विजयी होकर अपनी मातृभूमि के सिर पर स्वराज का राज्याभिषेक करवाऊँगा।'' वीर सावरकर कहते हैं कि 'अभिनव भारत' नामक क्रांतिकारी संस्था का बीज वपन पन्द्रह वर्ष की आयु में लिए गए उनके इसी संकल्प का परिणाम था।

वीर सावरकर के इस संकल्प के

पीछे उनके पिताजी की शिक्षा थी। वीर सावरकर का कथन है, ''सच तो यह है कि उन्होंने ही मुझमें बचपन से देशप्रेम, काव्य, इतिहास और लोकमान्य तिलक की राजनीति में रुचि जगाई थी।''

क्रांतिकारी गुप्त संस्था की प्रकट शाखा का नाम 'मित्र मेला' था। इसकी बैठक शनिवार, रविवार को होती थी। किसी एक वक्ता का तय विषय पर भाषण होता था। इसके बाद सब उस विषय पर चर्चा करते थे। वीर सावरकर इस अवसर का उपयोग किस प्रकार क्रांतिकारी शिक्षण के लिए करते थे, वे लिखते हैं - ''मित्र मेला में आयोजित भाषण शुरू-शुरू में सामान्य ही होते थे, परन्तु मैं उनका सम्बन्ध राजनीति से जोड़ देता था और जब मैं राजनीति के विषय पर बात करता, तब क्रांतिकारी विचारों का प्रवाह मेरे भाषणों के प्रारम्भ से ही दुर्दान्त वेग से चल पड़ता। उन बैठकों में चर्चा का विषय स्वभाषा, साहित्य, व्यापार, इतिहास, व्यायाम, गोरक्षा, वेदांत आदि कुछ भी हो, मैं उसके निष्कर्ष को यहीं (स्वदेश-स्वतंत्रता की प्राप्ति) तक पहुँचाता था।''

अभिनव भारत के कार्यालय में झाँसी की रानी, तात्या टोपे, वासुदेव बलवंत फड़के, चापेकर, रानाडे, तिलक आदि के चित्र थे। अंग्रेजों के कोप से बचने के लिए किसी सदस्य ने इंग्लैण्ड के राजा-रानी का चित्र लगाने का भी सुझाव दिया। वीर सावरकर लिखते हैं- ''मेरे युवा साथियों ने तिरस्कार के साथ उस सुझाव को अनसुना कर दिया। राजद्रोह का दण्ड भुगतने के लिए तैयार है, परन्तु अपने देश के प्रत्येक शत्रु के चित्रों का वंदन हम नहीं करेंगे- किसी ढोंग मात्र के लिए भी नहीं- ऐसा स्पष्ट उत्तर हमने दिया। इतना ही नहीं, स्कूली पुस्तकों में भी इंग्लैण्ड के राजा या रानी का चित्र हिन्दुस्थान के सम्राट, या साम्राज्ञी के रूप में हम नहीं रखते थे।''

वीर सावरकर नासिक की जिस शिवाजी पाठशाला में पढ़ते थे वह राष्ट्रीय विद्यालय योजनान्तर्गत थी किन्तु इसमें चौथी कक्षा तक ही अध्ययन की व्यवस्था थी। इसके बाद नासिक हाई स्कूल में प्रवेश लिया। इसके प्रधानाध्यापक रा.ब.जोशी थे जिनकी विद्वत्ता और राजनीतिक उपयुक्तता महाराष्ट्र में प्रसिद्ध थी। सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्ति के बाद वे लोकमान्य तिलक के राष्ट्रकार्य में सहयोगी बने तथा स्वदेशी और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार में उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वीर सावरकर उनकी नौकरी काल की अवस्था का वर्णन करते हैं, ''यद्यपि ऐसे भारी विद्वान् और देशभक्त शिक्षक नासिक हाई स्कूल में थे, फिर भी हम छात्रों को राष्ट्रीय वृत्ति के विकास की दृष्टि से कोई अधिक लाभ नहीं हुआ था। चूँकि शिक्षक-वर्ग पर सरकार की कड़ी निगरानी थी- विशेषकर चापेकर प्रकरण के बाद अतः वे कक्षा में रटे-रटाए पाठ पढ़ाने के सिवाय एक भी शब्द अतिरिक्त नहीं निकाल सकते थे। फिर भी कभी-कभी कविता-पाठ की प्रतियोगिता के अवसर खोजकर देशभक्ति-परक कविता वे हमसे पढ़वाते रहते थे। ऐसी एक कविता-पाठ प्रतियोगिता में उन्होंने मुझे चुना था। जो कविता मैंने सुनाई (और जिसके लिए प्रथम स्थान मिला) उसका प्रारम्भ कुछ ऐसा था-

"We are the sons of sires of old
Wo crushed crowned and
mitred tyrrany
They defied the field and scaftold
for their birth right so will we."

'मित्र मेला' में अधिक तरुण ही थे। अतः सार्वजनिक कार्यक्रमों के कारण उनका विद्यार्जन कम न पड़े, उलटे राष्ट्रीय सेवा के उनके ध्येय के अनुरूप योग्यता, विद्वत्ता और अनुशासन का अधिकतम सम्पादन वे करें, इसके लिए संगठन में प्रारंभ से जुड़े आयुवृद्ध श्री म्हासकर प्रयास करते और उनके समक्ष वीर सावरकर का ही उदाहरण देते थे। वीर सावरकर, श्री म्हासकर तथा श्री पागे मिलकर ऐसा कड़ा अनुशासन बनाए रखते थे कि मित्र मेला के हर छात्र को वार्षिक परीक्षा में उत्तीर्ण होना ही है और इसके लिए हर छमाही और हर वर्ष संस्था के कितने छात्र परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं, इसकी जानकारी रखते थे। उत्तीर्ण छात्रों का सम्मान करते व कठिन विषयों की पूछताछ कर उनको निःशुल्क पढ़ाने का उपाय करते थे। स्वयं की तैयारी के सम्बन्ध में वीर सावरकर लिखते हैं- ''शालेय अध्ययन करने और परीक्षा उत्तीर्ण करने की मेरी एक पद्धति निश्चित हो गई थी और वही अंत तक बनी रही। मेरे हर दिन का अधिकतर समय समाचार पत्र और अन्य

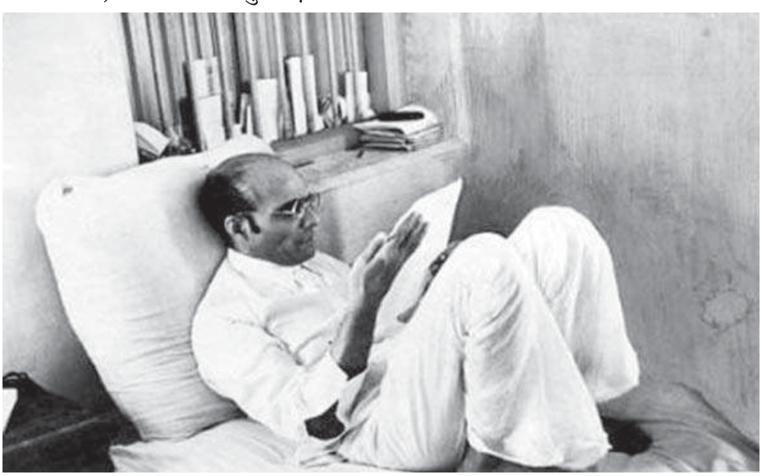

ग्रंथ आदि विद्यालयेतर पढ़ाई करने तथा राष्ट्रीय वाद-विवाद और सार्वजनिक कार्यों के संचालन में ही चला जाता था। इसलिए कक्षा का दैनिक अध्ययन गड़बड़ा जाता था। छमाही या वार्षिक परीक्षा आते-आते मैं एक या दो माह तक अपने को कमरे में बंद कर लेता और सारे विषय एक सिरे से दूसरे सिरे तक पढ़ कर तैयार कर लेता। इस तरह एक दो मास में मेरी पढ़ाई पूरी हो जाती और मैं परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता।''

मित्र मेला के सदस्यों ने अपनी-अपनी रुचि के एक-एक विषय में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए विषय-चयन कर लिए थे। अपने तैयार विषय पर पत्र वाचन या भाषण से उनके सामान्य ज्ञान वृद्धि तथा वक्तृत्व कला विकास में बहुत सहायता मिली। भारत की स्वतंत्रता क्यों आवश्यक है? वह स्वतंत्रता बिना सशस्त्र क्रांति के मिलना कितना कठिन है? अन्य देशों ने स्वतंत्रता कैसे प्राप्त की? वह हमें कैसे प्राप्त करनी है? ये ऐसे विषय थे जिनकी सांकेतिक चर्चा भी उस समय के सरकारी विद्यालय-महाविद्यालयों में, समाचार पत्रों में या सार्वजनिक सभाओं में करना सम्भव नहीं था। फिर वह चर्चा कहाँ होगी? 'राष्ट्रीय' कही जाने वाली पाठशालाओं में भी जो ज्ञान दिया जाना असम्भव था, वह वास्तविक राजनीति इन गुप्त संस्थाओं के अतिरिक्त अन्यत्र पढ़ाया जाना सम्भव नहीं था। **ये गुप्त संस्थाएँ ही एक तरह से सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय पाठशालाएँ थीं, राष्ट्रीय विचार दृढ़ीकरण की संस्कार-शालाएँ थीं। जिस प्रकार कंस के वध की आयु प्राप्त होने तक श्री कृष्ण का गुप्तवास आवश्यक था उसी प्रकार स्वतंत्रता की उत्कट अभिलाषा जनता में खुले रूप में अभिव्यक्त करने की अवस्था आने तक गुप्त क्रांति-विद्यालय चलाना आवश्यक था। इसलिए कोई आये या नहीं, शनिवार-रविवार की बौद्धिक-बैठक अखण्ड चले इसका संकल्प लिया गया।**

अपने अध्ययन व पठित पुस्तक के सारांश व उद्धरणों को वीर सावरकर ने पृथक् पुस्तिका में, जिसे वे 'सर्वसार संग्रह' कहते थे, लिखने का स्वभाव बनाया। इसके संबंध में उनका कथन है, ''इस कारण मेरा वाचन धूल पर बनी लकीरें नहीं रहता था और पूरी तरह पच जाता था। फिर आवश्यकता पड़ने पर उस टिप्पणी को देखते ही सारा विषय आँखों के सामने आ जाता और फिर जब चाहता, उस विषय पर निबंध या व्याख्यान देना सम्भव हो जाता। वह हमारी 'मित्र मेला' की साप्ताहिक बैठकों के लिए भी उपयोगी रहा। पढ़कर जो समझा, जब उसे दूसरों को कहने जाते, तो कई गुना अधिक समझ में आ जाता। इसके साथ ही उसे प्रभावी ढंग से कैसे व्यक्त किया जाए, कैसे उसे श्रोता के मन में उतारा जाए, वह कला भी सीखने को मिलती। इस तरह पढ़ा हुआ ज्ञान 'मित्र मेला' के साथियों में प्रति सप्ताह बाँटते हुए बढ़ाने का जो सुयोग मुझे मिला, उसका परिणाम मेरे ज्ञानार्जन और सामर्थ्य पर बड़ा अनुकूल हुआ। 'मित्र मेला' के मेरे साथियों के ज्ञान का विकास भी कुल मिलाकर मेरी ज्ञान-वृद्धि पर अवलम्बित था। मुझे इसकी पूर्ण कल्पना थी। इसलिए उस संस्था के विकास के लिए मुझे क्या नया पढ़ना है और कहना है, मैं इसकी खोज में रहता था।''

वीर सावरकर विद्यार्थी काल में प्रतिवर्ष पढ़ी हुई पुस्तकों की एक सूची बनाते तथा गत वर्षों से उस सूची की तुलना करते थे। उन्होंने इसी समय नासिक के नगर वाचनालय की समस्त पुस्तकें अथ से इति तक पढ़ी थीं। वीर सावरकर ने अभिनव भारत के सदस्यों की ज्ञान वृद्धि तथा प्रत्येक को राज्यक्रांति के महान् कार्य के प्रति समर्पित करने के लिए अध्ययन हेतु 20-25 पुस्तकों की सूची बनाई। इनमें विश्व में हुई राज्यक्रांतियों की पुस्तकें, नेपोलियन आदि विश्व-वीरों के चरित्र, भारतीय इतिहास, व्यायाम, स्वामी विवेकानन्द व स्वामी रामतीर्थ के वेदांत संबंधी ग्रंथ थे। इतनी पुस्तकें प्रत्येक को पढ़नी ही थी। इसके अतिरिक्त भी अध्ययन के लिए विष्णु मंदिर में निःशुल्क ग्रंथालय स्थापित किया गया था।

वीर सावरकर अपनी मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण होने का सम्बन्ध स्वाधीनता आंदोलन से जोड़ते हुए कहते हैं, ''संस्था (मित्र मेला) के कारण राजनीति में पढ़े छात्रों की पढ़ाई का सत्यानाश होगा, ऐसी भविष्यवाणी करने वाले हमारे शिक्षक, पालक आदि लोगों के मुँह एकदम बंद हो गए थे। मैं उस संस्था का नेता, सारा समय उसके लिए देने वाला, मेरी ओर सबकी आँखें थी। यदि मैं पहले ही अनुत्तीर्ण हो जाता तो उस संस्था की साख उन लोगों की दृष्टि में गिर जाती। मेरे मैट्रिक होने का अर्थ था कॉलेज में जाना और कॉलेज जाने का अर्थ था मेरे पीछे-पीछे 'मित्र मेला' के क्रांतिकारी विचारों का भी कॉलेज में प्रवेश होना। वे युवा हमारे क्रांतिकारी विचारों से उत्स्फूर्त होते ही अपने-अपने घर (पूरी मुम्बई प्रेसिडेंसी में) क्रांति बीज ले जाने वाले थे। भविष्य में ये युवक ही बी.ए., एम.ए. होकर समाज में प्रतिष्ठित पदधारी होंगे, नेता होंगे।''

इस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन के लिए विपरीत परिस्थितियों में भी शिक्षा संस्थान तथा औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षण का उपयोग वीर सावरकर ने किया। क्रांति-संस्था को विश्वव्यापी करने तथा अन्यत्र चल रहे स्वतंत्रता आंदोलनों का अनुभव प्राप्त करने के लिए ही वीर सावरकर ने लंदन को चुना। इस प्रकार शिक्षा, शिक्षण संस्था व वहाँ सम्पर्क में आये युवकों के प्रशिक्षण का एक आयाम पूर्ण होता है। वीर सावरकर के शैक्षिक अवदान के तीन आयाम- साहित्य रचना, अंदमान में शैक्षिक जागरण, कारामुक्ति के पश्चात कार्य और है। समयानुसार आलेखों में उनकी चर्चा करेंगे। ❑

(चिंतक एवं सामाजिक विषयों के अध्येता)

अब हमारा दायित्व बनता है कि हम अंग्रेजों की कुटिलता को अच्छी तरह समझें। उनके द्वारा किये गये विकृतिकरण पर अनुसंधान करें और उनके निष्कर्षों को जन-मन तक पहुँचाएँ। उनके द्वारा स्थापित भ्रान्त धारणाओं और सिद्धान्तों को भारत के लिए अहितकर सिद्ध करें। भारतीयों को हीनता बोध से मुक्त करवाने हेतु भारतीय ज्ञाननिधि को पुनः प्रतिष्ठित करें। सर्व सामान्य अपना जीवन धर्म व संस्कृति के अनुसार जीने लगे, ऐसी नई पुस्तकें एवं नये पाठ्यक्रम तैयार करें। इस मूल दायित्व को स्वीकार करने पर ही भारत पुनः विश्वगुरु बनने की राह पर अग्रसर हो सकेगा।

हमारी ज्ञाननिधि पर अंग्रेजी आक्रमण

❑ **वासुदेव प्रजापति**

धर्म एवं संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने का साधन शिक्षा है। सही अर्थ में शिक्षा वही है जो धर्म सिखाती है। भारत का शिक्षा इतिहास सुदीर्घ है। समस्त विश्व मानता है कि ऋग्वेद विश्व का प्रथम ज्ञानग्रन्थ है, और चारों वेद उच्च कोटि की प्रज्ञा का परिणाम हैं। अर्थात् अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में ज्ञानोपासना शुरू हो गई थी। विश्व जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था, उस ज्ञान की ऊँचाई को भारत ने पा लिया था। इसीलिए भारत विश्व गुरु था।

यूरोप में भारतीय ज्ञाननिधि का प्रचार

भारत के श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान का भान जब यूरोप के विद्वानों को होने लगा तो वे भी इसे अपनी-अपनी भाषा में सँजोने लगे। सन् 1789 में विलियम जोन्स ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् और हितोपदेश का अनुवाद किया। सन् 1794 में मनु के धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) का अनुवाद हुआ। दारा शिकोह द्वारा उपनिषदों के फ़रासी में किये गये अनुवाद का सन् 1801 में आंकेतिल दुपेरा ने लैटिन भाषा में 'ओपनेखत' नाम से अनुवाद किया। प्रख्यात जर्मन विद्वान शोपन हॉवर ने जब इस अनुवाद को पढ़ा तो वह आत्मविभोर हो गया, और उसने अपने उद्‌गार इन शब्दों में व्यक्त किये - **'उपनिषद् मानव बुद्धि की सर्वोच्च उपज हैं। ये मेरे जीवन के लिए शान्ति का आश्वासन रहा है, जो मेरी मृत्यु के बाद तक बना रहेगा।'** सन् 1805 में हेनरी कोलबुक ने 'ऑन द वेदाज' नामक निबन्ध लिखा। इन रचनाओं से पश्चिम में भारत के तत्त्वज्ञान को जानने के प्रति रुचि जगी। जर्मनी में आगस्ट विल्हेम्स, फॉन श्लेगल तथा हमबोल्ट आदि विद्वान संस्कृत वाङ्मय से प्रभावित होने लगे। हमबोल्ट गीता को संसार का गम्भीरतम और उच्चतम ज्ञान मानते थे। इस प्रकार भारतीय ज्ञाननिधि का प्रचार सम्पूर्ण यूरोप में बड़ी तीव्र गति से होने लगा।

बाइबिल के रक्षकों का भयभीत होना

जैसे-जैसे पश्चिम में भारत, भारतीयता और भारतीय ज्ञान का प्रचार होने लगा, वैसे-वैसे ईसाई धर्म प्रचारकों और पादरियों के कान खड़े होने लगे। उन्हें लगने लगा कि यदि इसी प्रकार संस्कृत वाङ्मय का प्रचार होता गया तो 'बाइबिल में व्यक्त विचार ही सर्वश्रेष्ठ विचार हैं' की मान्यताएँ ध्वस्त हो जायेगी। जैसे बाइबिल की मान्यताओं में एक मान्यता यह है कि सृष्टि का निर्माण 4004 ईसा पूर्व हुआ है। जबकि भारतीय ग्रन्थ बताते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति 1,97,29,49,121 अर्थात् एक अरब सत्ताणवे करोड़ उन्तीस लाख, उन्चास हजार एक सौ इक्कीस वर्ष पूर्व हुई है। आज का विज्ञान भी लगभग दो अरब वर्ष बतलाता है। भारत की मान्यता विज्ञान सम्मत होने के कारण बाइबिल की मान्यताएँ गलत सिद्ध होने वाली थी। अतः इन लोगों के मन में भारतीय साहित्य का भय व्याप्त होने लगा। वे कितने अधिक भयभीत थे, इसका

उल्लेख फ्रेडरिक वॉडमर ने इन शब्दों में किया था – 'बाइबिल के रक्षक इतने भयभीत हो गये हैं कि उन्हें ऐसा लगने लगा है कि संस्कृत का वर्चस्व बाबेल की मीनार गिरा देगा।'

एक सुनियोजित षड़यन्त्र

इन भयाक्रान्त लोगों ने इसके प्रतिकार के रूप में जर्मनी और इंग्लैण्ड के लेखकों की एक बड़ी फौज तैयार की। इस फौज ने भारतीय साहित्य और इतिहास की प्राचीनता, श्रेष्ठता और गहनता का विरोध करना शुरू किया। इनके विरोध का उद्देश्य भारतीय साहित्य, इतिहास और संस्कृति को बिगाड़ना था।

उनके प्रयत्न तीन प्रकार से हुए और तीन लोग उनके आधार स्तम्भ बने। 1. संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद कर उसके अर्थ को विकृत करना, इसका आधार स्तम्भ बना–मैक्समूलर। 2. भारतीय इतिहास की प्राचीनता व प्राचीन इतिहास को नकारना और नया आधुनिक इतिहास लिखना, इसका आधार स्तम्भ बना–जेम्स मिल। 3. उपर्युक्त दोनों प्रयत्नों को शिक्षा में जोड़कर समूची पीढ़ी को भारतीयता से काटने की व्यवस्था अंग्रेजी शिक्षा पद्धति लागू करके की गई, और इसका आधार स्तम्भ बना–मैकाले।

वेदों में पीएच.डी. प्राप्त 28 वर्ष का एक बेरोजगार युवा मैक्समूलर काम की तलाश में इंग्लैण्ड आया, इसकी मैकाले से भेंट हुई। मैकाले ने उसे ईसाई धर्म के प्रसार के लिए वेदों का अनुवाद करने हेतु प्रवृत्त किया। मैक्समूलर ने अपने लेखन के द्वारा कुछ भ्रान्त धारणाएँ प्रतिपादित कीं, जैसे – वेद गड़रियों के गीत हैं, वैदिक काल को ईसा पूर्व 1500 वर्षों में समेटना, वैदिक सूक्तों को जटिल, अधम और बचकाना बताना, हिन्दू देवी–देवताओं को हास्यास्पद रूप में दर्शाना, आर्य एक जाति थी, जो बाहर से आई तथा यहाँ उन्होंने आक्रमण किया आदि सिद्धान्त मैक्समूलर ने ही दिये।

दूसरा प्रयत्न जेम्स मिल के नेतृत्व में चला उसने भारतीय इतिहास की प्राचीनता को कम करने हेतु दो नये शब्द गढ़े – 'मिथक एवं माइथोलॉजी'। हमारे सभी प्राचीन ऋषि–मुनि, महापुरुष जैसे–मनु, पाराशर, नारद, कपिल, वसिष्ठ, विश्वामित्र और राम–कृष्ण आदि को मिथक अर्थात् काल्पनिक माना गया। साथ ही साथ इनके वर्णन रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में हैं उन्हें माइथोलॉजी कहा गया। और यह भारतीयों के गले उतारा गया कि यह सब कल्पना है, इसलिए ये इतिहास का हिस्सा नहीं हो सकते। इस तर्क के आधार पर जिन शास्त्रग्रन्थों में हजारों वर्षों का अखण्ड भारतीय जीवन प्रवाह वर्णित है, वे सब ग्रन्थ अध्ययन से बाहर कर दिये गये।

एक ओर जहाँ मिथक व माइथोलॉजी शब्दों के द्वारा भारत के प्राचीन वाङ्मय को अनैतिहासिक सिद्ध करने का प्रयत्न हुआ, वहीं दूसरी ओर अपने दृष्टिकोण से भारत का इतिहास लिखकर यहाँ की प्राचीनधारा को मोड़ने का प्रयत्न हुआ। जेम्स मिल ने 'ब्रिटिश भारत का इतिहास' लिखा, जो भारत आने वाले प्रत्येक अंग्रेज के लिए पढ़ना अनिवार्य था। किन्तु इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता पर इसलिए प्रश्न चिह्न लगता है कि जेम्स मिल स्वयं कभी भारत नहीं आया, न इंग्लैण्ड में किसी भारतीय से मिला, न वह किसी भी भारतीय भाषा का जानकार था और न उसने कभी कोई भारतीय ग्रन्थ ही पढ़ा था। आप स्वयं विचार करें ऐसे व्यक्ति के द्वारा लिखा इतिहास कितना प्रामाणिक होगा ? मिल के द्वारा लिखे गये इतिहास ने अनेक विकृतियों को जन्म दिया, जो आज भी देश के लिए सिरदर्द बनी हुई हैं। कुछ प्रमुख विकृतियाँ ये हैं –

इसने इतिहास को हिन्दुकाल, मुस्लिम काल और अंग्रेजी काल में बाँट दिया। भारत को एक देश न मानते हुए एक उपमहाद्वीप माना। मानव सभ्यता के विकास में भारत का कोई योगदान नहीं है, यह लिखा। इसके साथी जॉन माल्कम ने 'पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में सिक्खों और मराठों का अलग नेशन बताया।

तीसरा प्रयत्न थॉमस बाबिंग्टन मैकाले का था। मैकाले तो हृदय से भारत विरोधी था। इसे भारत की प्रत्येक बात बेहूदा लगती थी। वह कहा करता था कि इंग्लैण्ड की लाइब्रेरी की किसी अलमारी में रखी दो पुस्तकें भी भारत के सम्पूर्ण साहित्य से अधिक मूल्यवान हैं। इस मनोवृत्ति वाला मैकाले 1834 में शिक्षा प्रमुख बनकर भारत आया और 1835 में अपनी अंग्रेजी शिक्षा पद्धति यहाँ लागू की। वह तो अपनी शिक्षा के माध्यम से भारतीयों को काला अंग्रेज बनाना चाहता था। इस संदर्भ में वह एक स्थान पर कहता है – 'हमें भारत में एक ऐसी पीढ़ी तैयार करनी चाहिए जो रक्त और रंग में तो भारतीय हो परन्तु अभिरुचि, अभिमत, नैतिक आदर्श तथा वैचारिक धारणाओं में पूर्ण रूप से अंग्रेज हो।' इस प्रकार मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा देश में मंत्र विप्लव किया।

हमारा दायित्व

अब हमारा दायित्व बनता है कि हम अंग्रेजों की कुटिलता को अच्छी तरह समझें। उनके द्वारा किये गये विकृतिकरण पर अनुसंधान करें और उनके निष्कर्षों को जन–मन तक पहुँचाएँ। उनके द्वारा स्थापित भ्रान्त धारणाओं और सिद्धान्तों को भारत के लिए अहितकर सिद्ध करें। भारतीयों को हीनता बोध से मुक्त करवाने हेतु भारतीय ज्ञाननिधि को पुनः प्रतिष्ठित करें। सर्व सामान्य अपना जीवन धर्म व संस्कृति के अनुसार जीने लगे, ऐसी नई पुस्तकें एवं नये पाठ्यक्रम तैयार करें। इस मूल दायित्व को स्वीकार करने पर ही भारत पुनः विश्वगुरु बनने की राह पर अग्रसर हो सकेगा। ❑

(सह सचिव, संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरुक्षेत्र)

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी भारत में एक ऐसी शिक्षा का स्वप्न पाले हुए थे जो सभी धर्मों के बीच समन्वय का था, जिसमें अस्पृश्यता जैसी कोई चीज नहीं था। सभी सभ्यताओं के समन्वय का था जिसका प्रस्फुटन वस्तुतः भारत में हुआ है। वे उस संस्कृति को पुनर्जीवित कर रहे थे जिसकी नींव भारत के अतीत की थी। केवल दासता से मुक्ति तो एक विषय था। रोमां रोला ने 'महात्मा गांधी : जीवन और दर्शन' पुस्तक लिखी। यह पुस्तक गांधी जी पर लिखी गई अच्छी पुस्तकों में मानी जाती है।

स्वतंत्रता आंदोलन, महात्मा गांधी और शिक्षा

❑ प्रो. नन्दकिशोर पाण्डेय

महात्मा गांधी के स्मरण के साथ ही कुछ नैतिक और धार्मिक चीजों का स्मरण होता है। महात्मा गांधी यानी आधे तन का कपड़ा धारण करने वाला एक संत जैसा मनुष्य जो सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, चरखा, स्वभाषा और स्वदेशी की बात करता है। महात्मा गांधी की प्रार्थना सभा और डायरियों को देखने से ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि जिसके सात्विक और अहिंसक भय से अंग्रेजी सत्ता थर्राती थी। नियमित या यदाकदा मिलने वालों के संस्मरणों को पढ़कर भी ये ही लगता है कि गांधी जी सबको स्वस्थ, नैतिक तथा परोपकारी जीवन जीने की प्रेरणा दे रहे थे। महात्मा गांधी के आश्रम के जीवन में शौच स्वयं साफ करने की प्रेरणा है, अपने हाथ से शुद्ध, शाकाहारी भोजन बनाने की कुशलता की शिक्षा है, संध्या समय में सामूहिक रूप से प्रार्थना सभा में उपस्थित होने, राष्ट्र की समस्याओं पर विचार करने, समाधान ढूँढ़ने, समाधान को क्रियारूप में परिणत करने तथा इन सबके लिए गीता पढ़ने, एक-एक श्लोक पर गहराई से विचार करने तथा तद्नुरूप जीवन जीने की सिद्धता को प्राप्त करने के लिए हरि धुन गाते हुए कर्म पथ पर निरंतर गतिमान रहकर लक्ष्य प्राप्ति तक न रुकने का धीरज संवरण कर, ऊर्जस्वित जीवन को स्वराष्ट्र के लिए भस्मीभूत करने की भारतीय सनातनता है।

गांधी जी के आश्रमों की कल्पना और उसको व्यावहारिक रूप देना उनकी शिक्षा व्यवस्था का हिस्सा था। कोचरब आश्रम बहुत कम दिनों तक संचालित हुआ। यह आश्रम फिर साबरमती में स्थानांतरित हो गया। यह आश्रम भारत के लिए कुछ तेजस्वी व्यक्तित्वों को गढ़ने में सफल रहा। कोचरब आश्रम में बताया जाता है कि महात्मा गांधी और कस्तूरबा का सामान इतना कम था कि उसे दो हाथ की जगह में रखा जा सकता था। वहाँ दो गज लंबी और ढाई फुट चौड़ी बोरी, दरी, हल्की चादर, हल्का कंबल, दो जोड़ी कपड़े पर्याप्त थे। प्रभुदास छगनलाल गांधी ने लिखा है कि इस आश्रम का उद्देश्य सुयोग्य सत्याग्रही पैदा करना था। उन्हीं के शब्दों में, 'कोचरब-आश्रम तेजोमय व्यक्तित्व की बुनियाद पक्की करने के लिए शुरू हुआ था। **फिनिक्स में बापू जी ने जो तैयारी हम लोगों से करवाई थी, उसका सीधा लक्ष्य था, सुयोग्य, सुदृढ़ सत्याग्रही पैदा करने का- ऐसे सत्याग्रही, जिनका बंदी जीवन शोभामय बने, कारागृह में जाने पर तन से और मन से जो अडिग बना रहे। कठोर परिश्रम से जो भागे नहीं और खाने-पीने की भीषण सख्तियों के सामने भी जो कातर न बने। फिनिक्स में जो अनुशासन हमें सिखाया जा रहा था, उसमें हृदय उल्लास से भरा हुआ रहता था कि अपने देश की प्रतिष्ठा के लिए हमें जूझना है।'**

इस आश्रम में प्रभावशाली बनने की शिक्षा वस्तुतः आश्रमवासी बनाकर दी गई। सत्य, अहिंसा

और ब्रह्मचर्य के साथ ही अपरिग्रह को उसके समानांतर रखा गया। आश्रमवासियों के सामने आदर्श भारतीय छोटे किसान का था जो अपने घर में बर्तन सहित अन्य सामानों को भी कम रखता है। उसे उसके परिश्रम की तुलना में कम मिलता है लेकिन श्रम में कोई कमी नहीं करता। **भारतीय किसान का गुण यह है कि अभाव के जीवन में भी संतुष्ट और प्रसन्न रहता है। इस व्यवस्था ने यह शिक्षा दी कि अपने कौशल का प्रयोग बेहतर ढंग से करो तथा जो कुछ भी कौशल, ज्ञान अपने पास है उसे दूसरे को उत्साहपूर्वक सिखाओ। गांधी जी के परिग्रह की व्यवस्था में उन दिनों प्रातःकाल जगाने के लिए घंटी भी नहीं खरीदी गई थी। रसोईघर की थाली और बेलन से घंटी बजाई जाती थी। झाड़ू के तिनके संभाले जाते थे। प्रयास यह होता था कि रात के दस बजे तक आश्रम के काम पूरे हो जाएँ।** लालटेन की चिमनियाँ टूटने पर चिपकाने से काम जब तक चल जाए, चलाया जाए। पानी का कम से कम प्रयोग किया जाता था। धोने के लिए तीन कढ़ाइयों में पानी रखा जाता था। तीसरी कढ़ाही का पानी स्वच्छ और पहली का पानी थोड़ा गंदा रहता था। बर्तन स्वयं धोना पड़ता था। कम पानी से भी बर्तन इतना साफ धुलता था कि कहीं कोई गंदगी नहीं दिखती थी। गांधी जी पानी भरने के लिए स्वयं कुएँ पर जाते थे। आश्रम में अपरिग्रह, श्रम, त्याग और अहिंसा को आचरण से समझाया गया है। वहाँ परिग्रह केवल पुस्तकों का था। तरह-तरह की पुस्तकें पढ़ने के लिए मंगाई जाती थीं। उनका संग्रह होता था। विनोबाभावे तो पुस्तकों को भी अधिक से अधिक वितरित कर पढ़वाने के पक्ष में थे। गांधी जी की शिक्षा में स्वावलंबन शब्द की चर्चा बहुत होती है। स्वावलंबन को उन्होंने स्वयं के क्रियाकलापों से दिशा दी। डरबन जाते हुए गांधी जी के मन में ये विचार आया था कि 'इंडियन ओपीनियन' को एक फार्म में स्थापित किया जाना चाहिए। वहाँ सभी लोग श्रम करें, सबको समान वेतन मिले, काम और राष्ट्रीयता चाहे जो भी हो। एक बार इंजन न चलने पर गांधी जी ने स्वयं रात भर काम किया। एम. चेलापतिराव ने 'गांधी जी पत्रकार के रूप में लेख में लिखा है', छापाखाना तेल के इंजन से चलता था। पर गांधी जी ने सोचा कि वहाँ के वातावरण में तेल के बजाय हाथ से काम करना ज्यादा अच्छा होगा। 'इंडियन ओपीनियन' को घटाकर फुलस्केप साइज में किया गया और वह हैंड प्रेस में छपने लगा। इसमें यह लाभ था कि जरूरत पड़ने पर उसे ट्रेडिल पर भी छापा जा सकता था। पहली बार ही जब इंजन नहीं चला तो बढ़इयों के साथ सारी रात गांधी जी ने काम किया। इस तरह इंजन गौण चीज बन गया और हस्त-शक्ति यानी अपनी ताकत पर ही जोर दिया गया। स्वावलंबन की दिशा में वह बड़ा कदम था।'

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी भारत में एक ऐसी शिक्षा का स्वप्न पाले हुए थे जो सभी धर्मों के बीच समन्वय का था जिसमें अस्पृश्यता जैसी कोई चीज नहीं थी। सभी सभ्यताओं के समन्वय का था जिसका प्रस्फुटन वस्तुतः भारत में हुआ है। वे उस संस्कृति को पुनर्जीवित कर रहे थे जिसकी नींव भारत के अतीत की थी। केवल दासता से मुक्ति तो एक विषय था। रोमां रोला ने 'महात्मा गांधी : जीवन और दर्शन' पुस्तक लिखी। यह पुस्तक गांधी जी पर लिखी गई अच्छी पुस्तकों में मानी जाती है। उन्होंने गांधी जी के शिक्षा संबंधी विचारों पर भी लिखा है। वे लिखते हैं कि, 'गांधी ने चाहा था कि उनका देश यूरोपीय संस्कृति को बलपूर्वक झकझोर दे और उनके अनेक गौरवपूर्ण प्रयत्नों में जिसका सबसे अधिक महत्त्व था, वह थी देश में एक वास्तविक भारतीय शिक्षा पद्धति की नींव डालने की इच्छा।'

शिक्षा और शिक्षकों के भारत की परंपरानुसार गुणवृद्धि पर उनका ध्यान था। शिक्षकों में, शिक्षार्थियों में उन गुणों को देखना चाहते थे जो पाश्चात्य जगत में नहीं पाए जाते हैं। गुलाम भारत में उन्होंने जिन व्रतों और नियमों का पालन करने का आग्रह किया वह आधुनिक शिक्षाविदों के लिए केवल कागजी चीज थी। **गांधी शिक्षा में जिस त्याग, प्रेम, पवित्रता, चित्त की चैतन्यता, सभ्यताओं के सामंजस्य, भारतीय भाषाओं की समृद्धि की बात कर रहे थे, वह तो आज भी स्वतंत्र देश के लिए स्वप्न जैसा ही है। रोमां रोला ने गांधी के शिक्षा दर्शन पर विचार करते हुए सत्य का व्रत, अहिंसा का व्रत, ब्रह्मचर्य व्रत, भोजन-संयम का व्रत, अस्तेय व्रत, असंग्रह व्रत, स्वदेशी, निर्भीकता, चरित्र-गठन आदि को रेखांकित किया है।** इन शिक्षाओं को नैतिक शिक्षा के खाते में डाल कर उच्च शिक्षा तो दूर माध्यमिक शिक्षा में भी पढ़ाने की जरूरत नहीं समझी गई। इन विषयों के अनुरूप पाठ रचना नहीं की गई तथा इसे धार्मिक शिक्षा मान लिया गया। इन शीर्षकों की पूर्ति के लिए पाठ्यक्रम और कथाएँ नए सिरे से रची जा सकती हैं। रचने की भी आवश्यकता नहीं है। वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, भागवत और जातक कथाएँ उनके उदाहरणों से भरी पड़ी हैं। उनका उपयोग कम से कम माध्यमिक स्तर तक की भाषा और साहित्य की पुस्तकों में किया जा सकता था। कई बार किया भी गया और किन्हीं दबावों से उसे पाठ्यक्रमों से निकाल दिया गया। वस्तुतः इस तरह के पाठ्यक्रमों से निकालने वाले लोगों ने गांधी की मनोरचना के अनुरूप शिक्षा को कभी बनने ही नहीं दिया। यह यूँ ही नहीं कहा जाता है कि गांधी को समझना आसान नहीं है, उनके अनुसार चलना तो बिल्कुल ही सरल नहीं है। गांधी का साबरमती आश्रम विश्वभर में एक कुटुंब

की तरह चलने के लिए प्रसिद्ध था। अनेक देशों के लोग कुछ सीखने और समझने के लिए आश्रम में आते थे। पूरा का पूरा आश्रम एक प्रयोगशाला की तरह था। गांधी स्वच्छता के विषय में विशेष रूप से जहाँ विद्यालय है, वहाँ के गाँव की स्वच्छता के बारे में पूछते थे। कई बार लोगों के मन में प्रश्न उठता है कि विद्यालय और गाँव की स्वच्छता का क्या संबंध है। बहुत बाद में यह बात समझ में आती है कि जिस गाँव में विद्यालय है, उसे स्वच्छ तो होना ही चाहिए।

आज कौशल विकास का विषय सबके सामने रखा जा रहा है। यह कार्य स्वतंत्रता के साथ ही होना चाहिए था। भारतीयों में कौशल की एक परंपरा रही है और संस्कार भी। उस कौशल और संस्कार को गांधी जी विकसित होते देखना चाहते थे। खादी तथा कताई बुनाई का कार्य उस कौशल को विकसित करने के लिए ही था। भारत में कपास सब जगह पैदा होती है। जहाँ के 80 प्रतिशत किसानों को बारहों मास काम करने के लिए काम नहीं था, कृषि कार्य पूरा करने के पश्चात खाली समय में करने के लिए वे काम जिससे कौशल विकसित होता है, आय बढ़ती है वह करोड़ों-करोड़ जनसंख्या के लिए बहुत आवश्यक था और आज कुछ अधिक ही उसकी जरूरत है। शिवाभाई गो. पटेल साबरमती आश्रम में रहे थे। उन्होंने अपने अनुभव को बापू की प्रयोगशाला शीर्षक से लिखा है, 'स्नातक होकर जब मैं सन् 1926 में आश्रम में दाखिल हुआ और सफाई का काम मुझे दिया गया तो मैंने देखा कि उस काम को मिल-मालिक भी करता है। बापू के पुत्र हरिलालभाई और देवदासभाई भी करते हैं। विदेश से आये हुए भी करते हैं, क्योंकि आश्रम में कोई हरिजन नहीं रखा गया था। विशेषता यह भी कि जो काम सबसे करवाना हो, उसे बापू पहले स्वयं करते थे। हरिजन का काम समाज में हल्का माना जाता था। जीवन की दृष्टि से यह काम आवश्यक और अनिवार्य था, तो हल्का किस तरह हो सकता था!'

स्वच्छता को अभियान के रूप में स्वतंत्र देश में सार्वजनिक रूप से स्वीकार्यता प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी के कारण आई है। गांधी जी आश्रमों से लेकर अन्य सभाओं में स्वच्छता की बात बार-बार करते थे क्योंकि वे भारत में रेलगाड़ियों से लेकर मंदिरों तक में गंदगी का अंबार देख चुके थे। 'सत्य के मेरे प्रयोग में एक अध्याय 'काशी प्रवास' है। काशी विश्वनाथ मंदिर में दर्शन के लिए जाते समय का उनका अनुभव बड़ा कष्टकारी है। गलियों में उन्होंने गंदगी देखी, मंदिर के भीतर भी जिस अव्यवस्था और आपाधापी में दर्शन उन्होंने किए वह दु:खी करने वाला है। विश्वनाथ मंदिर जाने वाले प्राय: लोगों का यही अनुभव है। उन्होंने लिखा है कि काशी विश्वनाथ मंदिर के आसपास शांत, निर्मल, सुगंधित और स्वच्छ वातावरण बनाए रखने का कार्य प्रबंधकों का है। यह उनका कर्तव्य होना चाहिए। गांधी जी के शब्दों में, 'मंदिर में पहुँचने पर दरवाजे के सामने बदबूदार सड़े हुए फूल मिले। अंदर संगमरमर का बढ़िया फर्श था। लेकिन किसी अंध श्रद्धालु ने उसे रुपयों से जड़वाकर खराब कर डाला था और रुपयों में मैल भर गया था। मैं ज्ञानवापी के समीप गया। वहाँ मैंने ईश्वर को खोजा, लेकिन वह न मिला। इससे मैं मन ही मन क्षुब्ध हो रहा था। ज्ञानवापी के आसपास भी गंदगी देखी। दक्षिणा के रूप में कुछ चढ़ाने की मेरी श्रद्धा नहीं थी। इसलिए मैंने सचमुच ही एक पाई चढ़ाई, जिससे पुजारी पंडाजी तमतमा उठे। उन्होंने पाई फेंक दी। दो-चार गालियाँ देकर बोले, 'तू यों अपमान करेगा तो नरक में सड़ेगा।'

गांधी जी ने घर में परिवर्तन और बाल शिक्षा पर कुछ बातें कही हैं। जोहंसबर्ग में सर्वोदय के विचार ने उनके जीवन में बहुत कुछ परिवर्तन ला दिया। बाजार के ब्रेड के बदले घर में ब्रेड हाथ से बनाने का कार्य प्रारंभ हो गया। मिल के पिसे आटे की जगह हाथ से चलाने वाली चक्की उन्होंने खरीदकर रख ली। चक्की को चलाने में कस्तूरबा और बच्चे भी मदद करते थे। गांधी जी ने कभी जबरदस्ती बच्चों से चक्की नहीं चलवाई। वे खेल-खेल में चलाते थे। इस कारण से उन्होंने ये माना है कि बच्चों की कसरत बहुत अच्छी सिद्ध होगी। महात्मा गांधी अपनी शिक्षा में अक्षर ज्ञान के साथ चरित्र-निर्माण की शिक्षा को बहुत महत्त्व देते हैं। वे इसे हमेशा पहला स्थान देते हैं। वे मानते हैं कि चरित्र निर्माण की शिक्षा किसी भी उम्र में, अलग-अलग वातावरण में पले हुए लड़के-लड़कियों को दी जा सकती है। चरित्र निर्माण को शिक्षा की बुनियाद के रूप में उन्होंने माना।

वे आत्मिक शिक्षा के पक्षधर थे। शरीर और मन को शिक्षित करने की तुलना में आत्मा को शिक्षित करना और आत्मा के विकास के लिए आवश्यक कार्यों को करना अधिक जरूरी है। उनका मानना था कि सभी विद्यार्थियों को अपने-अपने धर्म के मूल तत्त्वों को जानना चाहिए तथा धर्म ग्रंथों का सामान्य ज्ञान होना चाहिए। आत्मिक शिक्षा के लिए गांधी जी ने भजन गवाने और नीति की किताबें पढ़कर सुनाने का प्रयोग भी बच्चों के बीच किया। उन्होंने अनुभव किया कि आत्मिक शिक्षा का ज्ञान किताबों के माध्यम से नहीं दिया जा सकता। शारीरिक शिक्षा, शारीरिक कसरत आदि कराकर दी जाती है। बौद्धिक शिक्षा, बौद्धिक कसरत द्वारा दी जाती है। उसी प्रकार आत्मा की शिक्षा आत्मिक कसरत द्वारा दी जा सकती है। इसके लिए उन्होंने शिक्षकों द्वारा सावधानी बरतने की बात की है। शिक्षक को निरंतर अपने आचरण का ध्यान रखना होगा। खुद झूठ बोलते हुए शिष्यों को सच्चा बनाने का प्रयास करने से कुछ भी हासिल नहीं होगा। उन्होंने ऐसे कई उदाहरण दिए हैं। जैसे डरपोक शिक्षक शिष्यों को वीरता नहीं सिखा सकता। व्याभिचारी शिक्षक शिष्यों को संयम की शिक्षा नहीं दे पाएगा। इसलिए शिक्षक को आदर्श बनकर रहना ही होगा। इस संदर्भ में उन्होंने टॉलस्टॉय आश्रम के अनुभवों को साझा किया है।

गांधी जी ने दृढ़तापूर्वक ये माना कि बच्चों को अंग्रेजी शिक्षा प्रारंभ में नहीं देनी चाहिए। वे विदेशों में भी इस बात को दृढ़तापूर्वक कहते थे और पालन करने का आग्रह भी करते थे। सत्य के मेरे प्रयोग के अध्याय घर में परिवर्तन और बाल शिक्षा में उन्होंने लिखा है, **'मैंने शुरू से ही यह माना है कि जो हिंदुस्तानी माता-पिता अपने बच्चों को बचपन से ही अंग्रेजी बोलने वाले बना देते हैं, वे उनके और देश के साथ द्रोह करते हैं। मैंने यह भी माना है कि इससे बच्चा अपने देश की धार्मिक और सामाजिक विरासत से वंचित रहता है और उस हद तक वह देश की तथा संसार की सेवा के लिए कम योग्य बनता है। अपने इस विश्वास के कारण मैं हमेशा जान-बूझकर बच्चों के साथ गुजराती में ही बातचीत करता था।'**

गांधी जी ने 20 सितंबर, 1927 को नेशनल कॉलेज त्रिचनापल्ली में एक भाषण किया। इसकी खबर 21 सितंबर, 1927 के 'हिंदू' में छपी है। गांधी वाङ्मय के खंड पैंतीस में संगृहीत भी है। उस कार्यक्रम में गांधी जी को थैली प्रदान की गई तथा संस्कृत में अभिनंदन पत्र पढ़ा गया। राजगोपालाचारी की अपील थी कि अधिक से अधिक धन खादी और गरीबों के लिए जुटाया जाए। लेकिन वक्ताओं ने खुद महसूस किया कि जितना चाहिए उतना रुपया वे जमा नहीं कर पाए। गांधी जी खादी के कपड़ों में कम लोगों को देखकर भी प्रसन्न नहीं हुए। वे चाहते थे कि अधिक से अधिक लोग खादी पहनें। अभिनंदन पत्र संस्कृत में पढ़ा गया था। गांधी जी ने श्रोताओं से पूछा कि जो लोग इसे समझ सकें वे हाथ ऊपर उठाएँ। सभा में बहुत कम लोगों ने हाथ ऊपर उठाया। उन्होंने यह भी कहा कि आयोजकों को वे चीजें कार्यवाही से हटा देनी चाहिए थीं जो लोगों को समझ में न आएँ। गांधी जी ने सुझाव दिया कि आपमें से अधिकांश लोग हिंदू हैं, आप संस्कृत का ज्ञान अवश्य प्राप्त करें जिससे कि संस्कृत के श्लोकों का पाठ किया जाए तो आप समझ सकें। फिर उन्होंने कहा कि आप राष्ट्रीय कॉलेज के छात्र हैं। आपसे मैं ये पूछूँ कि आपमें से कितने लोगों को हिंदी आती है तो मुश्किल से एक प्रतिशत लोग हाथ उठाएँगे। हिंदी को लेकर गांधी जी ने दक्षिण भारत के एक महाविद्यालय में 1927 में अपने विचारों को दृढ़तापूर्वक साफ-साफ रख दिया था कि जिसमें नेशनल लगा है उसे हिंदी आनी चाहिए। हिंदी के बिना राष्ट्रीय शब्द भाषा के अर्थ में पूरा नहीं होता। अपने भाषण के अंत में उन्होंने खादी के प्रयोग और हिंदी सीखने का आग्रह भी किया। यह बहुत ही मार्मिक भाषण था। जहाँ दरिद्रनारायण के लिए धन एकत्र करने की बात थी वहीं हिंदी सीखने के लिए भावुक आग्रह था। गांधी जी ने कहा, दरिद्रनारायण अब भी आपके दरवाजे खटखटा रहे हैं। खादी अब भी आपके हाथों विकसित होने की राह देख रही है। खादी के लिए दी गई थैली आपने मेरी खुशी के लिए नहीं दी है। वह आपने दरिद्रनारायण के नाम पर और उन्हीं की खातिर दी है। इस लिए आपकी जेब पर उसका दावा बराबर बना हुआ है। तो मैं आशा करता हूँ कि आप खादी के काम में पीछे नहीं रहेंगे, आप अपना हिंदी का ज्ञान ठीक करेंगे, क्योंकि आपके यहाँ एक हिंदी-प्रचारक हैं; और आप संस्कृत भी सीखेंगे। मैं आपसे कहना चाहूँगा कि दूसरी जगहों पर मैंने छात्रों के सम्मुख जो कुछ कहा है उस पर ध्यान दें और उन भाषणों में जो संदेश निहित है, उसे आप समझें।

गांधी जी ने 23 दिसंबर, 1927 को मद्रास में खादी और हिंदी प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। हिंदी प्रदर्शनी का उद्घाटन करने के लिए पं. मदनमोहन मालवीय जी को आना था। वे किन्हीं कारणों से उस दिन नहीं पहुँच पाए। गांधी जी ने इस कार्यक्रम में हिंदी सीखने के लिए आग्रह किया। गांधी जी की शिक्षा पर विचार करते समय नैतिक शिक्षा, श्रम शिक्षा और भाषाई शिक्षा से मुँह मोड़कर बात नहीं की जा सकती। उनके पूरे लेखन, भाषण और पत्रों का बहुत बड़ा हिस्सा हिंदुस्तानी, खादी और भारतीय जीवन मूल्यों के पाठों से भरा हुआ है। खादी पर बोलते हुए इस उद्घाटन भाषण में 1927 में गांधी जी ने कुछ आँकड़े दिए हैं, 'मैनचेस्टर में बना माल और भारतीय मिलों में बना

माल तो अंग्रेज और भारतीय पूँजीपतियों को समृद्ध करता है, जबकि खादी उस गरीब से गरीब मेहनतकश को भोजन मुहैय्या कराती है, जिसके पास आजीविका का कोई दूसरा साधन नहीं है। खादी आंदोलन ने 2000 गाँवों में फैले 75 हजार कतैयों को भोजन दिया है और 6000 बुनकर खादी के वस्त्र बुनकर अपनी रोजी चलाते हैं। मैंने इस आंदोलन के सिलसिले में केवल कतैयों और बुनकरों का ही उल्लेख किया है और उनका जिक्र नहीं किया है जो छपाई, रंगाई आदि जैसे कामों में लगे हैं और जिन्हें आंदोलन से लाभ पहुँचा है।'

हिंदी प्रदर्शनी के उद्घाटन के अवसर पर उसी दिन गांधी जी ने कहा, 'हिंदी आंदोलन की कल्पना करोड़ों भारतीयों के हित को ध्यान में रखकर की गई है। हिंदी या हिंदुस्तानी को 21 करोड़ लोग बोलते हैं, और यह बहुत से मुलसमानों की मातृभाषा है। यही एक भाषा है जो अंतरप्रांतीय भाषा बन सकती है। पिछले कुछ समय से दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचार करने का प्रयत्न किया जा रहा है। हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की गई है और वह तमिलनाडु तथा आंध्र प्रदेश में काफी बड़ी संख्या में लोगों को हिंदी की शिक्षा देती रही है।'

14 सितंबर, 1927 को गांधी जी का एक भाषण तमिलनाडु के कुंभकोणम् में हुआ। इस भाषण में तीन बातों का आग्रह विशेष रूप से था। उन्होंने यहाँ भी जनता से, विशेष रूप से नेताओं से हिंदी सीखने का आग्रह किया। यह संयोग है कि 14 सितंबर, 1949 को भारतीय संविधान सभा ने हिंदी को राजभाषा के रूप में मान्यता दी। नगर परिषदों में सफाई व्यवस्था अच्छी हो और भ्रष्टाचार तथा आपसी वैमनस्य समाप्त हो, इसका आग्रह उन्होंने किया। गांधी जी हिंदू संस्कृति और सनातन हिंदू धर्म की मान्यताओं पर बार-बार विमर्श करते थे। कई बार उन्होंने स्वयं को सनातनी हिंदू कहा और यह कहते हुए अस्पृश्यता समाप्त करने का आग्रह किया। कौन व्यक्ति किस विषय को पढ़कर कितना ज्ञानी है, शिक्षा पर विचार करते समय गांधी जी इस पर कम बोलते और लिखते थे। उस दिन के व्याख्यान में विद्यार्थियों के बीच उन्होंने बाल विवाह का विरोध किया तथा विधवा विवाह के समर्थन में अपना व्याख्यान दिया। बंगाल में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर विधवा विवाह के लिए लगातार सक्रिय थे। विधवाओं की पीड़ा को लोगों के सामने रख रहे थे और एक बड़ा आंदोलन चला रखा था। जयशंकर प्रसाद के मंचीय दृष्टि से सबसे लोकप्रिय नाटक 'धुवस्वामिनी' में विधवा विवाह का समर्थन किया गया है। यह समय भी वही है। गांधी जी ने साफ-साफ कहा कि जैसे बाल विवाह जैसी कोई चीज नहीं है, इसलिए 'बाल-वैधव्य' जैसी भी कोई चीज नहीं होती। गांधी जी ने विद्यार्थियों को कहा कि आप विधवाओं से विवाह कीजिए। उन्होंने यह भी कहा कि संस्कृत के कुछ ग्रंथों को इसके आड़े नहीं आना चाहिए। गांधी जी ने यह भी कहा कि कुछ लोग कहते हैं कि ईसाईयों और मुसलमानों की सभा में बोलते समय आपका स्वर नरम रहता है और हिंदुओं के दोषों के बारे में बोलते समय आपके स्वर में नरमी नहीं रहती। इसके उत्तर में गांधी जी ने कहा कि 'मैं हिंदू धर्म को जितना जानने का दावा करता हूँ, उतना ईसाई धर्म और इस्लाम के बारे में जानने का दावा नहीं करता।

पिछली शताब्दी के प्रारंभ में विधवाओं की स्थिति विशेषकर बाल विधवाओं की स्थिति बहुत दयनीय थी। गांधी जी ने इस विषय को युवा विद्यार्थियों के बीच में रखा। उनकी बात को हूबहू यहाँ रखना उचित होगा, इसलिए मैं इस सलाह को बेहिचक दोहरा रहा हूँ कि यदि कुछ विद्यार्थी विवाह करना चाहते हों तो उन्हें चाहिए कि ढूँढ़कर ऐसी वयस्क लड़कियों से विवाह करें जो बचपन में ही विधवा हो गई हों। यह एक परमार्थ का कार्य होगा और यदि वे कच्ची उम्र की लड़कियों से शादी न करके बाल-वैधव्य को समाप्त कर देने का संकल्प कर लें तो यह देश की बहुत बड़ी सेवा होगी। जब कोई चीज स्पष्टत: अनैतिक हो और समस्त तर्क-बुद्धि और न्याय-भावना के लिए अग्राह्य हो तो ऐसे संस्कृत ग्रंथों की आड़ में उसे सही ठहराना गलत है जिनकी उपयोगिता और प्रामाणिकता दोनों ही संदिग्ध हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान गांधी जी ने भारत में मूल्यपरक शिक्षा पर अधिक सोचा। उनकी आँखों के सामने कई विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। गुजरात विद्यापीठ की स्थापना से वे बहुत खुश थे। काशी विद्यापीठ, काशी हिंदू विश्वविद्यालय और शांति निकेतन से वे बहुत नजदीक से जुड़े थे। इन विश्वविद्यालयों के संस्थापक गांधी जी के अनन्य सहयोगी थे। पं. मदनमोहन मालवीय गांधी जी से कांग्रेस में बहुत वरिष्ठ थे और कई बार कांग्रेस के अध्यक्ष भी रहे थे। वे सभी नेता शिक्षाविद् लेखक और कई पत्रकार भी थे जो इन विश्वविद्यालयों के संस्थापक थे। समाज और देश में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। गांधी जी ने संपूर्ण देश में बाल शिक्षा से लेकर युवाओं तक की शिक्षा के लिए उन विषयों पर बात की जिससे देश को पराधीनता से मुक्ति मिले और पूरा राष्ट्र अपने पैरों पर खड़ा हो सके। समस्त प्रकार की बुराइयों के विरुद्ध अपनी बात को उन्होंने अपने शैक्षिक चिंतन में समाहित किया है। भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से हिंदी या हिंदुस्तानी की समृद्धि के लिए जोरदार वकालत की। भास्वर भारत बनाने के लिए जो कुछ भी उद्यम हो सकता था, गांधी जी ने किया। वह उनके चिंतन, मनन, लेखन तथा प्रत्यक्ष किए गए कार्यों से भासित होता है।❑

(निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा)

स्वामी दयानन्द सरस्वती का शैक्षिक अवदान

विद्यार्थी आर्य बने। यहाँ आर्य से तात्पर्य एक प्रत्येक व्यक्ति एक ऐसे व्यक्ति से है जो पूर्ण रूप से स्वस्थ हो। वेदों के अध्ययन पर विशेष बल देने का संदर्भ विद्यार्थी को विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान में दक्ष बनाना है। मानव कल्याण सर्वश्रेष्ठ धर्म है। धर्म के पालन का अर्थ है मन, वचन और कर्म से सत्य का आचरण करना। मानव जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष। आनन्दानुभूति है जिसे राजयोग, भक्तियोग , कर्मयोग से प्राप्त किया जा सकता है। सोलह संस्कारों से विद्यार्थी का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास होता है।

❑ **प्रो. बीना शर्मा**

भारत में अंग्रेजों के प्रभुत्व की अवधि में ध्वस्त भारत देश उन तमाम महापुरुषों–जगद्गुरु शंकराचार्य, दयानन्द सरस्वती, सर सैयद अहमद खाँ, डॉ. एनी बेसेन्ट, घोंदो केशव कर्वे, स्वामी विवेकानन्द, गोपालकृष्ण गोखले, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महामना पंडित मदन मोहन मालवीय, महायोगी श्री अरविंद, महात्मा गाँधी, आचार्य नरेन्द्र देव आचार्य विनोबा भावे , डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के प्रति कृतज्ञ है जिन्होंने अपना जीवन बिखरी व्यवस्थाओं को संभालने में लगाकर देश के स्वाभिमान को बचाए रखा। दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर भारत की भौतिक संस्कृति का संरक्षण किया, सामाजिक कुरीतियों का बहिष्कार किया और गुरुकुलों की स्थापना की।

भारत में अंग्रेजी शासन काल में जो भी समाज सुधार कार्यक्रम चलाए गए उनमें शैक्षिक व्यवस्थापन एक प्रमुख मुद्दा था। शिक्षा के क्षेत्र में हुई उस सकारात्मक पहल ने सामाजिक राजनैतिक क्षेत्र में सकारात्मक परिणाम दिए।

भारत में ईसाईयत का प्रचार, भारतीय धर्मों की निन्दा, अंग्रेजी पढ़े –लिखे हिन्दुओं द्वारा हिंदुत्व की भर्त्सना जैसे कारणों से धार्मिक सुधार आन्दोलनों का जन्म हुआ। ब्रह्म समाज पहला आन्दोलन था। और उसके प्रवर्तक राजा राम मोहन राय थे। बंगाल में जन्मे राममोहन राय ने घर छोड़कर सारे भारत का भ्रमण किया। फारसी में एक पुस्तक लिखीं जिसमें मूर्तिपूजा का खण्डन, एकेश्वरवाद की प्रशंसा और विश्वधर्म को आवश्यक बतलाया। सती प्रथा का विरोध किया, हिंदु धर्म को रूढ़ियों से मुक्त कर एक नया रूप दिया। ब्रह्म समाज नये हिंदुत्व का रूप था। राजा राममोहन राय की मृत्यु के बाद ब्रह्म समाज का दायित्व महर्षि देवेन्द्रनाथ और उनके बाद केशवदेव सेन के पास आया। ब्रह्म समाज का सबसे बड़ा योगदान भारतीय और यूरोपीय समाज में समन्वय स्थापित करना रहा। प्रार्थना समाज ब्रह्म समाज की एक शाखा के रूप में उभरा। मुख्य प्रवर्तक रानाडे थे। गोपाल कृष्ण गोखले उनके शिष्य थे। रानाडे सुधारवादी थे और रूढ़ियों को मिटाकर हिंदुत्व को प्रथा रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे। बाल गंगाधर तिलक गोपाल कृष्ण गोखले और आगरकर की प्रार्थना समाज में महत्वपूर्ण भूमिका रही। गोखले को भारतीय विद्रोहों का पिता कहा जाता है। ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज दोनों आंदोलन तेजी से उभरे जरूर पर जनता ने इन समाजों के धार्मिक सिद्धांतों को अधिक पसंद नहीं किया। उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप आर्य समाज अस्तित्वों में आया। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद थे। वे विश्व मानवता के नेता थे। उन्होंने वैदिक धर्म की पुनः स्थापना की, हिंदुत्व का बुद्धिसम्मत रूप जनता के सामने रखा।

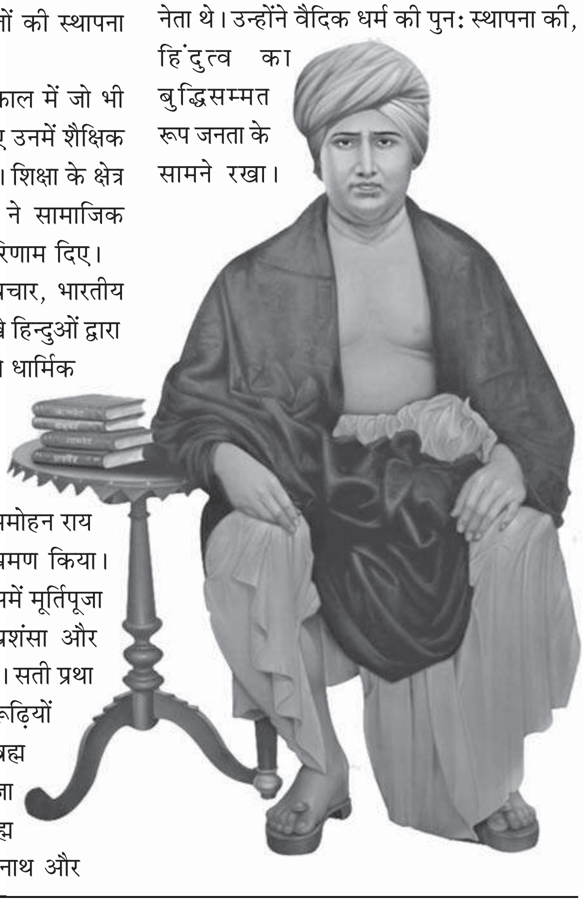

उनका उद्देश्य सभी मनुष्यों को उस दिशा में ले जाना था जिसे वे सत्य की दिशा समझते थे। महर्षि अरविंद ने उन्हें अद्वितीय योद्धा, मनुष्य और मानवीय संस्थाओं को संस्कारित करने वाला अद्‌भुत शिल्पी माना है। उनका कथन है–

' ऋषि दयानंद की विचारधारा में असम्बद्ध बताये है कि वेद में विज्ञान और धर्म दोनों के सत्य निहित है। मेरा तो यहाँ तक विश्वास है कि वेद में विज्ञान के साथ सत्य भी निहित है जो आधुनिक विश्व के पास बिल्कुल भी नहीं है और इसलिए दयानंद ने वैदिक ज्ञान की गहराई के विषय में अधिक नहीं बल्कि कम ही कहा है। '

ऋग्वेद –मंडल –7–8 के दयानंद सरस्वती कृत भाष्य के आवरण पृष्ठ पर लिखी भूमिका को पढ़ना आवश्यक है– ऋषि दयानंद सरस्वती वर्तमान युग के महान वेदाचार्य थे। उन्होंने अपने धर्म आंदोलन को न केवल वेदों के आधार पर संचालित किया अपितु यह भी स्पष्ट रूप से घोषित किया कि मानवीय धर्म, अध्यात्म और नैतिक चिंतन का स्रोत वेद ही है। वेदों को समस्त सत्य विद्याओं की पुस्तक घोषित किया तथा प्रत्येक वैदिक धर्मी आर्य के लिए उनका पठन–पाठन तथा सुनना –सुनाना आवश्यक बताया। वस्तुत: स्वामी दयानंद ने वेदों का आधार लेकर ही भारत में नवजागरण की लहर पैदा की थी तथा इस देश में धार्मिक राष्ट्रीय और सामाजिक क्रांति का प्रवर्तन किया। वेदों के विषय में अज्ञान को उन्मूलित करने के लिए उन्होंने यह आवश्यक समझा कि वेदों के सर्वमान्य ज्ञान को भारत समुदाय के समक्ष उपस्थित करने के लिए पुरातन ऋषियों द्वारा अपनाई गई पुरानी परिपाटी के अनुरूप भाष्य लिखा जाए जिससे उन ग्रंथों का प्रज्जवल और हितकारी रूप पुन: आ सके।''

स्वामी दयानंद के शैक्षिक –विचारों का अवगाहन करने के लिए सत्यार्थ प्रकाश का अवलोकन आवश्यक है। सत्यार्थ प्रकाश दयानंद सरस्वती प्रणीत रचना है। इस प्रकाश में चौदह समुल्लास है। इसमें दस समुल्लास में पूर्वार्द्ध और चार उत्तरार्द्ध में बने हैं। प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओंकार आदि नाम, दूसरे में सन्तानों की शिक्षा तीसरे में ब्रह्मचर्य, पठन–पाठन, सत्य असत्य ग्रंथ, पढ़ने की रीति, चौथे में विवाह और गृहाश्रम का व्यवहार, पाँचवें में वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम की विधि, छठे में राजधर्म, सातवें में वेद ईश्वर विषय, आठवें में जगत उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, नवें में विद्या, अविद्या मोक्ष की व्यवस्था दसवें में आचार –अनाचार, भक्ष्य –अभक्ष्य विषय, ग्यारहवें में आर्यावर्तीय मत मतांतर का खण्डन मण्डन, बाहरवें में चार्वक, बौद्ध , जैनमत का विषय, तेरहवें में ईसाई मत का विषय और चौदहवें में मुसलमानों के मत का विषय अंत में आर्यों के सनातन वेद विहित मत की व्याख्या प्रस्तुत है।

दयानंद सरस्वती इस ग्रंथ की भूमिका में लिखते हैं –मेरा इस ग्रंथ बनाने का प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना, सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।

जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त रहता है। इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपम'

जो–जो विद्या और धर्म प्राप्ति के कर्म हैं वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात अमृत के सदृश होते हैं।

वाक्यार्थ वेद में चार कारण होते हैं –आकांक्षा, योग्यता , आसक्ति, और तात्पर्य।

किसी विषय पर वक्ता की ओर वाक्यार्थ पदों की आकांक्षा परस्पर होती है जिससे जो हो सके जैसे जल से सींचना – यह योग्यता है।

जिस पद के साथ संबंध हो उसी के समीप पद का बोलना आसक्ति है।

जिसके लिए वक्ता ने शब्दोच्चारण का लेख किया हो उसी के उस वचन का लेखों को युक्त करना तात्पर्य है।

स्वामी जी का भारत राष्ट्र निर्माण कार्य अथर्ववेद के मंत्र पर आधारित है जिसके अनुसार–

''जब राष्ट्र छिन्न हो जाता है उसकी मान मार्यादा का कोई रक्षक और पोषक नहीं रहता, तब उसकी मान मार्यादा के रक्षक उस–जात और राष्ट्र के नायक ही होते हैं । वे राष्ट्र उद्धार के लिए तप की दीक्षा लेते हैं तब छिन–भिन्न राष्ट्र में बल आता है , तब उसका ओज बढ़ता है , तब उसको पुन: गतवैभव प्राप्त होता है, तब उसकी मानमर्यादा ठिकाने आ जाती है, राष्ट्र उद्धार के लिए नेताओं को इसी उपाय का अवलंबन करना चाहिये। राष्ट्र के पुरोहितों का यही धर्म है।''

तैत्तरीय उपनिषद के एकादश अनुवाक् से उद्धृत निम्न अनुच्छेद से वेद उपनिषद आधारित शिक्षा का महत्त्व रेखांकित होता है–

अथ यदि ते कर्म विचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये ब्राह्मण समदर्शिनो युक्ता अयुक्ता:। अलक्षा धर्मकामा: स्यु:। यथा, तत्र वर्तेन, तथा तत्र वर्तेथा–।

यदि तुम्हें कभी कर्तव्य के निर्णय करने में या सदाचार के निर्णय करने के विषय में कोई शंका हो जाए तो ऐसी स्थिति में उत्तम विचार वाले, उचित परामर्श देने में दक्ष, सत्कर्म और सदाचार में संलग्न, स्नेह पूर्ण स्वभाव वाले तथा धर्म पालन की इच्छा रखने वाले विद्वान पुरुष हो, उनके आचरण को देखो और वे जिस प्रकार आचरण करते हों, उसी प्रकार से आचरण तुम्हें भी करना चाहिए।

दयानंद सरस्वती ने शिक्षा का लक्ष्य धर्माचारण माना है। बालकों को खान–पान,

आचार -विचार, वेशभूषा तथा व्यवहार कुशलता की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। प्रत्येक छात्र को वेदों में पारंगत होना चाहिए। वैदिक संस्कृति का पुनरुत्थान शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिए । ब्रह्मचर्य व्रत के पालन के साथ-साथ वेदों का अध्ययन करना विद्यार्थी का प्रथम कर्तव्य है।

विद्यार्थी आर्य बने। यहाँ आर्य से तात्पर्य एक प्रत्येक व्यक्ति एक ऐसे व्यक्ति से है जो पूर्ण रूप से स्वस्थ हो। वेदों के अध्ययन पर विशेष बल देने का संदर्भ विद्यार्थी को विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान में दक्ष बनाना है। मानव कल्याण सर्वश्रेष्ठ धर्म है। धर्म के पालन का अर्थ है मन, वचन और कर्म से सत्य का आचरण करना। मानव जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष। आनन्दानुभूति है जिसे राजयोग, भक्तियोग , कर्मयोग से प्राप्त किया जा सकता है। सोलह संस्कारों से विद्यार्थी का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास होता है। सत्यार्थ प्रकाश के नवें समुल्लास में शिक्षा की परिभाषा इस रूप में दी गई है-

विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभ्यः सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।।
यजुर्वेद अ.-40

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप के साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को वर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है।

अविद्या का लक्षण है- जो अनित्य, संसार और देहादि में नित्य अर्थात् जो कार्य जगत देखा -सुना जाता है, सदा रहेगा, सदा से है और योगबल से यही देवों का शरीर सदा रहता है वैसी विपरीत बुद्धि होना अविद्या का प्रथम भाग है। अशुचि, मिथ्याभाषण, चोरी आदि में बुद्धि स्थिर करना ही दूसरा, दुख में सुख बुद्धि तीसरा और अनात्मा में आत्मबुद्धि चौथा भाग है इस चार प्रकार के विपरीत ज्ञान को अविद्या कहते हैं। विद्या ठीक इसके विपरीत है। अनित्य में अनित्य, नित्य में नित्य, अपवित्र में सपवित्र, पवित्र में पवित्र दुख में दुख, सुख में सुख, आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना विद्या है। जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप पता चले वह विद्या और जिससे तत्वस्वरूप न जान पड़े वह अविद्या है-

वेत्तियथावत तत्वं पदार्थस्वरूपं मया सा विद्या।
भया तत्वस्वरूपं न जानाति -सा ऽविद्या।

शिक्षा वह है जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियता बढ़ती हो और अविद्यायादि दोष छूटते हों।

बालक का विकास उसके जन्म से प्रारंभ न होकर उसके गर्भाधान से प्रारंभ होता है गर्भ में माता का चरित्र बालक के चरित्र को प्रभावित करता है। माता ही बालक की प्रथम शिक्षिका है। माता का कर्तव्य है कि वह बालक को संस्कारित करे, उसके विकास में सहायक बने। पिता बच्चे में ज्ञान के प्रति जिज्ञासा, शारीरिक स्वास्थ्य, के प्रति सत्संगति एवं इन्द्रिय निग्रह की प्रवृत्ति का विकास करे और कर्म के प्रति सजग करें।

सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास का प्रथम वाक्य ही है -

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषोवेद।

जब तीन उत्तम शिक्षक एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान होता है।

प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी
माता विद्यते यस्य स मातृमान

तृतीय समुल्लास में पढ़ने -पढ़ाने के प्रकार की चर्चा है।

विद्याविलास मनसो धूतशील शिक्षाः,
संसार दुखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता है, शील स्वभाव युक्त, सत्य भाषण आदि नियम पालन युक्त, अभिमान अपवित्रता से रहित, अन्य की मलिनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारीजनों के दुखों को दूर करने से सुभुषित, वेदविहित कर्मों से परोपकार करने में रहते हैं, वे नर और नारी धन्य हैं । बिना इसके किसी को शोभा प्राप्त नहीं होती ।

अभिमानः श्रियं हन्ति- अभिमान से शोभा और लक्ष्मी का नाश होता है। इसलिए अभिमान नहीं करना चाहिए।

सत्यमेव जयति नानृतं ,
सत्येन पन्था विततो देवयनः।

सत्य की विजय होती है असत्य की नहीं, सत्य से ही विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है।

तैतरीयोपनिषद के वचन का उल्लेख इसी समुल्लास में है-

आचार्य अन्तेवासी को इस प्रकार उपदेश करे - सदा सत्य बोल, धर्माचारणकरि, प्रमाद रहित होकर पढ़-पढ़ा, पूर्ण ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं के गृहण और आचार्य को प्रिय धन देकर, विवाह कर सन्तानोत्पत्ति कर। प्रमाद से सत्य को मत छोड़, धर्म का त्याग मत कर, आरोग्य और चतुराई को मत छोड़,

उत्तर ऐश्वर्य की वृद्धि मत छोड़ , पढ़ने-पढ़ाने को कभी मत छोड़, देव,दिव्यज्ञान, माता, पिताकी सेवा में प्रमाद मत कर। विद्वान के सत्कार की तरह ही माता पिता को आचार्य अतिथि की सेवा सदा कर। जो अनिंदित धर्मयुक्त कर्म है, उन सत्यभाषण को किया कर, उनसे भिन्न मिथ्याभाषणादि को कभी मत कर। जो हमारे सुच्चरित्र अर्थात् धर्म युक्त कर्म हैं उनका ग्रहण कर और जो हमारे पापाचरण हैं उनको कभी कम कर। जो कोई हमारे मध्य में उत्तम विद्वान धर्मात्मा ब्राह्मण हैं उन्हीं के समीप बैठ और उन्हीं का विश्वास किया कर। श्रद्धा से, अश्रद्धा से, भय से, लज्जा से प्रतिज्ञा से देना चाहिए।

आज भी सभी विद्यार्थियों के लिए यही उपदेश उचित है। जो विद्या पढ़कर धर्माचरण करता है। वही संपूर्ण सुख को प्राप्त करता है।

धर्माचरण का अर्थ है वेद और वेदानुकूल स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का आचरण। यह शिक्षा ही कहने-सुनने, सुनाने, पढ़ने, पढ़ाने का सार है। विद्यार्थी के लिए सत्य-असत्य, ग्राह्य-अग्राह्य, प्रिय-अप्रिय के भेद को जानना आवश्यक है। जो ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुकूल है वह सत्य और जो इसके विरुद्ध है वह असत्य। विद्वान, सत्यवादी, निष्कपटी के संग, उपदेश के अनुकूल विद्या ग्राह्य है शेष अग्राह्य। आदमी आत्मा की पवित्रता के अनुकूल है वह प्रिय और शेष अप्रिय है। आचार्य के गुण हैं- ब्रह्मचारी, संन्यासी, सर्वविद्या विभूषित, सर्व कौशल्यपूर्ण, शिष्ट, सभ्य, शालीन और पूर्ण दक्ष।

शिक्षार्थी की विशेषता है - आज्ञापालन, संयम, ब्रह्मचर्य,श्रद्धा, धैर्य, परिश्रम, सद्‌गुण, सच्चरित्र, स्वाध्यायी, ईश्वरी शक्ति पर विश्वास करने वाला हो।

इसी संदर्भ में दयानंद जी का कथन है-

तत्कालीन शिक्षा हमें अपनी संस्कृति के अनुरूप नहीं बनाती। वर्तमान शिक्षा से केवल बाह्य परिवर्तन हो रहा है। वर्तमान शिक्षा हमारे नवयुवकों को केवल नौकरी के योग्य बनाती है। नौकरी के अतिरिक्त वे कुछ नहीं कर सकते।

विदेशी भाषा में दूसरे के विचारों को याद कर लेने, उन्हें अपने मस्तिष्क में ठूँस-ठूँस कर भरने और किसी विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त कर लेने पर आप अपने को शिक्षित समझने का गर्व कर सकते हो। क्या यह शिक्षा है? शिक्षा तो सद्‌गुणों की प्राप्ति है और ज्ञान ही सद्‌गुण है।

पाठ्‌यक्रम के विषय में सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में अंकित है-

माता सदैव उत्तम शिक्षा दे जिससे वे सभ्य बने और किसी भी अंग से कुचेष्टा न करने पाएँ। जब बालक बोलने लगे तो उसे सही उच्चारण सिखाएँ। वर्ण का जैसा स्थान और प्रयत्न होता है उसे ठीक-ठीक बताना चाहिए जिससे वह मधुर, गंभीर, सुंदर, स्वर, अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता और अवसान भिन्न-भिन्न सुने।

जब बालक बोलने और समझने लगे तब उसे सुंदर वाणी और छोटे, बड़े, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान आदि से भाषण और उनके पास बैठने आदि की शिक्षा दी जाए जिससे वह यथायोग्य व्यवहार करके प्रतिष्ठा प्राप्त करे।

बालक की शिक्षा का क्रम इस प्रकार होना चाहिए- जन्म से पाँच वर्ष तक बालक की शिक्षा माता के द्वारा, छठे से आठवें वर्ष तक पिता के द्वारा, आठ से ग्यारह वर्ष गुरुकुल। आचार्य कुल भेजें, शिक्षक विद्वान हो। व्याकरण की शिक्षा में अष्टाध्यायी, महाभाष्य, साहित्य, धर्म ग्रंथ का अध्ययन करे।

डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी, डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़कर तीन वर्ष में वैयाकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दों का व्याकरण बोध कर पुन: अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज पढ़ सकते हैं।

ग्यारह से तेरह वर्ष निघंटू और निरूक्त पढ़े। यह वेद अध्ययन की तैयारी है।

तेरह से पन्द्रह वर्ष पूर्व मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, वेदांत पढ़े। वेदों के अध्ययन से पूर्व ईश, केन, कठ, मांडूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, छान्दोग्य उपनिषद का अध्ययन करना चाहिए।

पन्द्रह से इक्कीस वर्ष ब्राह्मण ग्रंथ सहित चारों वेदों का अध्ययन करे।

इक्कीस से पच्चीस वर्ष उपयोगी विषयों- धनुर्विद्या, आयुर्वेद, सैन्य विद्या, भूगोल, गणित, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, विज्ञान, कानून, संगीत, शिल्प कलाओं का अध्ययन करे।

इनमें विशेषज्ञता प्राप्त करने के बाद विद्यार्थी गृहस्थ जीवन में प्रवेश के योग्य हो जाता है।

शिक्षण विधि के संदर्भ में उपदेश/ व्याख्यान/ स्वाध्याय/शास्त्रार्थ/ प्रश्नोत्तर/ निरीक्षण/ प्रायोगिक विधि का निर्देश है। अनुशासन बनाए रखने के लिए दंड और पुरस्कार के विषय में स्वामी जी ने स्पष्ट लिखा है- जो माता-पिता, आचार्य अपनी संतानों को शिष्यों को ताड़न करते हैं वे मानो अपनी संतानों को, शिष्यों को अपने हाथों से अमृत पिला रहे हैं तथा जो शिष्यों और संतानों का लाड़ करते हैं वे अपनी संतानों और शिष्यों को विष पिलाकर भ्रष्ट कर रहे हैं। मानसिक संयम योगाभ्यास से आता है। बुद्धि का स्थायित्व भी योग से ही संभव है।

स्त्री शिक्षा- वेद स्त्री शिक्षा का विरोध नहीं करता। इदम् मन्त्रम् पत्नी पठेत- यह मंत्र पत्नी पढ़े। यदि पत्नी अशिक्षित है तो यज्ञ में सम्मिलित न हो सकेगी। अथर्ववेद में ब्रह्मचर्येण कन्या युवान् विन्दते पतिम् का अर्थ ही है बालिका ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे और शिक्षा प्राप्त करे। श्री मेधावृताचार्य ने 'दयानंद दिग्विजयम्' महाकाव्य के तेरहवें सर्ग में उद्‌धृत किया है-

यदि माताएँ उत्तम धर्म ज्ञान और विविध ज्ञान से अलंकृत होकर सद्‌गुण शालिनी बनेगी तो उनकी कोख से जन्मे पुत्र-पुत्री भी परम धार्मिक बनेंगे। वस्तुत: मातृशक्ति के विकास से ही स्वदेश का अभ्युदय होगा।

जीवन की उज्ज्वलता का मूल उद्‌गम स्थान स्त्रियों के मन की शुभ भावना ही है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि दयानंद सरस्वती विरचित सत्यार्थ प्रकाश में स्वधर्म, स्वभाषा व स्वदेश भावना को प्रोत्साहित कर स्वराज्य प्राप्ति का मूलमंत्र था जो स्वतंत्रता संग्राम में कार्यरूप में परिणत हुआ। दयानंद सरस्वती के शैक्षिक विचारों पर आधृत शिक्षा ही जनकल्याण का मूलमंत्र है। ❑

(कुलसचिव, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा)

ठाकुर के शिक्षा दर्शन में प्राकृतिक परिवेश

❑ **जगमोहन सिंह राजपूत**

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का बचपन उस समय के धनाढ्य घरों की परंपरा के अनुसार ही प्रारम्भ हुआ, उनकी देखभाल सेवकों द्वारा ही अधिक की गई। बाद में उन्होंने स्वयं उस समय को परिवार के ही 'सेवकों' के निरंकुश शासन के रूप में वर्णित किया। उनके ऊपर जो बंधन लगाए गए, उससे उन्हें घर कैद सा लगा, बच्चों को प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन कर उसका आनंद लेने से रोकना उन्हें अपार मानसिक कष्ट देता रहा। वे घर के बंधनों से बाहर आना चाहते थे, उन्होंने स्कूल जाने की उत्सुकता स्वयं व्यक्त की, परिवार का दबाव नहीं था, मगर जब गए तो उन्होंने वहाँ भी हर तरफ बंधन ही देखे, लगभग वैसे ही जैसे उन्हें घर की चारदीवारी में मिले थे। वहाँ के ऐसे अनुभव के बाद वे स्कूल के बंधन से छूटने को भी व्याकुल हो गए। जेल की तरह की दीवारें, और वह निर्मम अनुशासन और सजा; अध्यापक उन्हें 'बेंत की प्रतिमूर्ति' ही दिखाई देता था। असहनीय परिस्थितियों में अपरिचित भाषा में दी जा रही शुष्क तथा नीरस शिक्षा प्रारम्भ से ही नियमों, सिद्धांतों, तथ्यों, संकल्पनाओं को रटाने पर ही निर्भर थी। इसमें जो सिखाया जाता था उस पर विचार करनें या उसे समझकर आत्मसात करने की कोई संभावना ही नहीं बनती थी। 1892 में शिक्षा हेरफेर लेख में टैगोर नें लिखा था कि सोचने की शक्ति और कल्पना शक्ति दो ऐसी अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानसिक शक्तियाँ हैं जिनसे मनुष्य की क्षमताएँ लगातर बढ़ती रहनी चाहिए। यह एक कार्यशील और सर्जनात्मक जीवन के आवश्यक अंग हैं, उसमें नवाचार और नवोन्मेष लाने के कारक हैं। बचपन से ही विचार की शक्ति तथा कल्पना की शक्ति को प्रस्फुटित करने का प्रयास अनिवार्य रूप से करना चाहिए। दुर्भाग्य से रटाने पर इतना जोर दिया जाता रहा है कि स्कूलों में यह दोनों ही लगातार कुंद होते जाते हैं। जैसे ही इन पर ध्यान देना प्रारंभ होगा, तो दो अन्य अत्यावश्यक तत्व स्वत: ही उभरेंगे। जिज्ञासा और सर्जनात्मकता यह तभी संभव है जब बच्चों पर अनावश्यक नियंत्रण नहीं थोपा जायेगा। गुरुदेव हर अवसर पर किताबी शिक्षा के प्रति अपनी दूरी को अवश्य प्रगट करते थे। वे प्रकृति से सीधे सीखने की क्षमता को प्रोत्साहन देने के पक्षधर थे। वे मानते थे कि 'हमारी बुद्धि, संवेदना और संकल्पना शक्ति क्षीण हो जाती है यदि वह वास्तविकता से दूर होती है। किसी जीवित व्यक्ति को जानने के प्रयास और उसके संपर्क में आने में नैसर्गिक शिक्षा निहित होती है। इसे हर प्रकार से बढ़ाना और प्रोत्साहित करना चाहिए।

टैगोर ने प्रकृति और जीवन से सीधे सीखने के महत्त्व पर सदा ही बल दिया। अध्यापकों के प्रयास बच्चों को जीवन की वास्तविकता और अपने आसपास के पर्यावरण से परिचित कराने की दिशा में ही केन्द्रित होने चाहिए। हमारी शिक्षा कुछ ऐसी है जैसे पेड़ की जड़ों से सैकड़ों गज दूर वर्षा हो और उसमें से कुछ बूँदें ही बड़ी मुश्किल से जड़ों तक; यानि हमें अपने जीवन संवारने के लिए मिल सकें! हमारे सामने यक्ष प्रश्न शिक्षा और जीवन के बीच समरसता (हारमनी) स्थापित करने का है। **कृष्ण कृपलानी की पुस्तक 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक जीवनी' में ये पक्ष बड़े ही प्रभावशाली ढंग से उभरते हैं – 'उनका मानना था कि बालक का मस्तिष्क अपने परिवेश के प्रति असाधारण रूप से सजग होता है और वह उसे ऐन्द्रिक अनुभवों द्वारा ग्रहण करता है। अपने मस्तिष्क से सीखने के पूर्व वह इन अनुभवों को इन्द्रियों से आत्मसात करना सीख चुका होता है। इसलिए उसे एक ऐसा वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए जो उसकी जिज्ञासा को उत्प्रेरित करे ताकि उसे अपने चारों ओर की दुनिया सहज और आनंदपूर्ण लगे।** उसे इस बात के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए कि वह अपना काम स्वयं करे और जहाँ तक संभव हो शिक्षक पर उसकी निर्भरता कम हो। इसलिए जहाँ तक हो सके उसे कला का शिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। ताकि बालक अपने वातावरण को समझ सके और उससे प्यार कर सके, ...रवीन्द्रनाथ के अनुसार, प्रकृति ही सर्वश्रेष्ठ

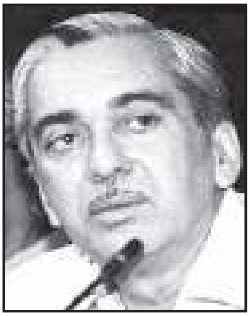

गुरुदेव कला से प्रारम्भ करने की बात करते थे, गांधी 'क्राफ्ट' की बात करते थे। बुनियादी तालीम में जो हाथ से काम सीखने को बात थी, उस पर गुरुदेव के यहाँ भी जोर दिया जाता था कि बालक अपने हर अंग-प्रत्यंग के कार्य और उनकी संवेदना को समझ ले। इस सारे चिंतन और शैक्षिक दर्शन के विपरीत शिक्षा के नाम पर जो तब हो रहा था- और आज भी हो रहा है – उस पर गुरुदेव का कथन था। हमारे देश की शैक्षिक संस्थाएँ मात्र ज्ञान का भिक्षापात्र हैं और यह हमारे राष्ट्रीय आत्मसम्मान का सिर नीचा करती हैं और हमें इस बात के लिए उत्साहित करती हैं कि हम उधार लिए पंखों का आडम्बरपूर्ण प्रदर्शन कर सकें।' इस सब के परिणाम के सम्बन्ध में वे आगाह भी करते हैं; 'अगर सारी दुनिया आगे बढ़ते-बढ़ते अतिरंजित पश्चिम की तरह ही हो जाय तो फिर ऐसी फूहड़ नकल वाले आधुनिक युग की छद्मता अपने आप समाप्त हो जायेगी, वह अपनी ही विमूढ़ता के नीचे दम तोड़ देगी।'

शिक्षक है। गुरुदेव कला से प्रारम्भ करने की बात करते थे, गांधी 'क्राफ्ट' की बात करते थे। बुनियादी तालीम में जो हाथ से काम सीखने को बात थी, उस पर गुरुदेव के यहाँ भी जोर दिया जाता था कि बालक अपने हर अंग-प्रत्यंग के कार्य और उनकी संवेदना को समझ ले। इस सारे चिंतन और शैक्षिक दर्शन के विपरीत शिक्षा के नाम पर जो तब हो रहा था- और आज भी हो रहा है - उस पर गुरुदेव का कथन था। हमारे देश की शैक्षिक संस्थाएँ मात्र ज्ञान का भिक्षापात्र हैं और यह हमारे राष्ट्रीय आत्मसम्मान का सिर नीचा करती हैं और हमें इस बात के लिए उत्साहित करती हैं कि हम उधार लिए पंखों का आडम्बरपूर्ण प्रदर्शन कर सकें।' इस सब के परिणाम के सम्बन्ध में वे आगाह भी करते हैं; 'अगर सारी दुनिया आगे बढ़ते-बढ़ते अतिरंजित पश्चिम की तरह ही हो जाय तो फिर ऐसी फूहड़ नकल वाले आधुनिक युग की छद्मता अपने आप समाप्त हो जायेगी, वह अपनी ही विमूढ़ता के नीचे दम तोड़ देगी।' 1909 में मोहनदास करमचंद गाँधी ने अपनी कालजयी पुस्तक हिन्द स्वराज लिखी और कहा- 'हजारों साल पहले से जैसी हमारी शिक्षा थी वही चलती आयी। हमने नाशकारक होड़ को समाज में जगह नहीं दी; अब अपना अपना धंधा करते रहे। उसमें उन्होंने दस्तूर के मुताबिक दाम लिए। ऐसा नहीं था कि हमें यन्त्र वगैरह की खोज करना ही नहीं आता था। लेकिन हमारे पूर्वजों ने देखा कि लोग अगर यन्त्र वगैरह की झंझट में पड़ेंगे, तो गुलाम ही बनेंगे और अपनी नीति को छोड़ देंगे। उन्होंने सोच समझ कर कहा कि हमें अपने हाथ पैरों से जो काम हो सके वही करना चाहिए। हाथ पैरों का इस्तेमाल करने में ही सच्चा सुख है, उसी में तंदुरुस्ती है।'

आज अगर यह वाक्य उच्च वर्ग के सुसंपन्न लोगों के सामने प्रस्तुत किया जाय तो संभवतः हँसी में उड़ा दिया जाएगा। मगर यदि इसी चर्चा को अनुभवी किसानों और मजदूरों के बीच रखा जाय तो अत्यंत सम्मान के साथ इसे सुना जाएगा और यही कहा जाएगा कि यदि इस पर ध्यान दिया गया होता तो स्थानीय और घरेलू कौशल और छोटे उद्योग समाप्त नहीं होते, लोग कृषि कार्य से भागते नहीं, मनुष्य और प्रक्रति के बीच के सम्बन्ध विकृत नहीं होते, मानवीय सम्बन्ध और संवेदनाएँ शिथिल नहीं पड़ती, दिल्ली की हवा जहरीली नहीं होती। ठाकुर मनुष्य को कर्म-विहीनता से दूर रखने के लिए शिक्षा को आवश्यक मानते थे, उदासीनता और अज्ञान मनुष्य के चारों ओर एक ऐसी जकड़न की दीवार बना देते हैं जो व्यक्ति-स्वातंर्त्र्य का अपहरण कर लेती है। उसके मष्तिष्क की प्रखरता कुंद हो जाती है, क्रियाशीलता उससे दूर चली जाती है। सक्रिय बने रहना, भाईचारा तथा प्रेम के बंधन व्यक्ति को खुलेपन और आत्म विश्वास से ओत प्रोत रखते हैं। ठाकुर और गाँधी पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान के प्रशंसक थे मगर दोनों भारत की विशेषता और विशेषज्ञता को नजरंदाज करने को तैयार नहीं थे। **गुरुदेव के अनुसार हमें अपने नैतिक ज्ञान भण्डार को किसी भी सूरत में भूलना नहीं चाहिए क्योंकि यह पश्चिम के उस ज्ञान से कहीं उच्च स्तर का तथा प्रभावशाली है जिसमें केवल अनगिनत उत्पाद तथा भौतिकता लगातार संघर्षरत हैं।** गुरुदेव नें स्पष्ट लिखा कि हमें यह स्वीकार करना चाहिए की आधुनिक विज्ञान मानवता को सदा के लिए यूरोप का दिया एक वरदान है। हमें उसे उपयोग में लाना चाहिए और पिछड़े बने रहने से मुक्ति पानी चाहिए, मगर उसे उसी स्वरूप में बिना विश्लेषण के स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसका सबसे सटीक उदाहरण है यूरोप की शिक्षा प्रणाली को वैसे-का-वैसा ही भारत में लागू कर लेना। शिक्षा का जो अनुपयुक्त और अव्यवहारिक स्वरूप भारत पर थोपा गया था उससे उनका और गाँधी का भी पूर्ण विरोध था। उससे बचने के लिए आवश्यक था कि भारत की संस्कृति के हर पक्ष को संबल देकर शिक्षा में उभारा जाय, न कि पश्चिम की संस्कृति के विरोध में राष्ट्रीय ऊर्जा को खपाया जाय।

गुरुदेव मानते थे कि मनुष्य की वैचारिकता के वृहद और विस्तृत अध्ययन के द्वारा भारतीय जीवन में 'विविधता में निहित सामंजस्य तथा तालमेल' को समझा जा सकता है। गुरुदेव सदा ही खुलेपन और नैसर्गिक तथा आनंदपूर्ण वातावरण की ओर इंगित करते रहे जिसे पाना बच्चों का नैसगिक अधिकार माना जाना चाहिए। गुरुदेव का सारा शैक्षिक दर्शन प्रकृति को सर्वश्रेष्ठ शिक्षक मानता रहा। उसे ही व्यवहारिक रूप में शांति निकेतन परिसर में सभी के समक्ष रखा गया। मनुष्य की नियति है कि वह प्रकृति की सदा बदलती रहती मनोदशाओं को जानने समझने का प्रयास करे. यदि वह ऐसा पूर्ण मनोयोग से करेगा तो उसका प्रकृति से मानसिक और संवेदनात्मक सम्बन्ध स्थापित हो हो जाएगा। चूँकि स्कूल-आधारित शिक्षा व्यवस्थाएँ ऐसा नहीं कर पायीं हैं, अतः मनुष्य और प्रकृति के बीच की संवेदनात्मक कड़ी कमजोर हो गई और मनुष्य प्रकृति को केवल संसाधनों के दोहन और संग्रहण में ही उलझ कर रह गया। परिणाम सामने है- जलवायु परिवर्तन; ग्लोबल वार्मिंग; ओजोन परत; वायु-प्रदुषण; जल संकट; और कितने ही अन्य विज्ञान बढ़ा है, ज्ञान बढ़ा है; मगर विवेक नहीं बढ़ा है। परिणामस्वरूप मानवता नहीं बढ़ी है, गुरुदेव मानते थे कि प्रकृति और ललित कलाओं से संपर्क का बालक की भावनाओं पर जो प्रभाव पड़ता था वह उसे मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने में सहायक होगा। वह उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास के लिए भी आवश्यक है। इन में जो भी रुचि लेगा उसकी जिज्ञासा और प्रखर होगी तथा इससे उसकी सर्जनात्मकता को भी संबल मिलेगा। इसके लिए ऐसी शिक्षा व्यवस्था को साकार रूप देना होगा जिसकी जड़ें देश की मिटटी। यानि संस्कृति, विरासत, इतिहास और ज्ञानार्जन परंपरा में गहराई तक गई हुई होनी चाहिए। आज के नीति निर्धारकों के समक्ष यही चुनौती है।❑

(यूनेस्को में भारत के स्थाई प्रतिनिधि)

ब्रिटिश काल में कैसे लुप्त हुई भारतीय ज्ञान परम्परा

भारत भाषाओं की स्थिति आश्चर्यजनक रूप से विचित्र हो गई। यहाँ तक कि संस्कृत साहित्य में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त करने के लिए लिखे जाने वाले शोध प्रबंध इंग्लिश भाषा में लिखे जाने लगे और उनके आधार पर उपाधियाँ दी जाने लगीं। यह तो ऐसा ही हुआ जैसे इंग्लिश साहित्य में पी.एच.डी. का शोध हिन्दी या संस्कृत भाषा में लिखा जाय। पर भारतीय शिक्षा में भारतीय भाषाओं की विडम्बना देखिए विषय संस्कृत साहित्य एवं भाषा का पर शोध का माध्यम इंग्लिश भाषा। संस्कृत विषय में एम.ए. की उपाधि अंग्रेजी माध्यम से प्राप्त की जा सकती थी।

❑ **गोविन्द प्रसाद शर्मा**

भारतीय ज्ञान परम्परा काफी समृद्ध रही है। मानव सभ्यता के विकास का इतिहास यह बतलाता है कि तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला आदि भारतीय विश्वविद्यालय इतिहास के प्राचीनत्तम विश्व विद्यालय रहे हैं। अनेक विदेशी यात्रियों ने जिन्होंने शताब्दियों पूर्व समय-समय पर भारत की यात्राएँ की अपने संस्मरणों में लिखा है कि भारत में ज्ञान विज्ञान की समृद्ध परम्परा रही है। कई विदेशी यात्रियों ने भारतीय विश्वविद्यालयों में अध्ययन भी किया था ह्वेनसांग (चीन) ने नालंदा विश्वविद्यालय में बुद्धधर्म के साथ ही चिकित्साशास्त्र, दर्शन, तर्कशास्त्र, गणित, ज्योतिर्विज्ञान और व्याकरण का अध्ययन किया। (अमर्त्य सेन, भारतीय अर्थतंत्र, इतिहास और संस्कृति पृ.क्र. 139 एवं 160) सार्वजनिक शिक्षा की दृष्टि से भी भारत अग्रणी रहा। पं. सुन्दरलाल ने अपनी पुस्तक भारत में अंग्रेजी राज में लिखा है कि अंग्रेजों के आने से पहले सार्वजनिक शिक्षा और विद्या प्रचार की दृष्टि से भारत संसार के अप्रीतम देशों में गिना जाता था। 19वीं सदी के प्रारम्भ में और उसके कुछ बाद तक भी यूरोप किसी देश में शिक्षा का प्रचार इतना अधिक न था जितना भारतवर्ष में और न कहीं भी प्रतिशत आबादी के हिसाब से पढ़े लिखे लोगों की तादाद इतनी अधिक थी जितनी भारत में। (पं. सुन्दरलाल भारतीय शिक्षा का सर्वनाश : भारत में अंग्रेजी राज नाम 1939 में प्रकाशित वृहद् ग्रंथ का छत्तीसवां अध्ययन प्र. सं. 5)

इतना होने पर भी भारतीय ज्ञान परम्परा और तत्व चिंतन को अंग्रेजी शासन काल में पाठ्यक्रम में कोई स्थान नहीं दिया गया यद्यपि वह इसकी हकदार थी। आखिर ऐसा यों हुआ।

अंग्रेजों ने जिस चातुर्य, योजना और हिम्मत के साथ भारतीय ज्ञान परम्परा और भारतीय भाषाओं को पाठ्यक्रमों से अलग किया उसे समझने की आवश्यकता है। (वैसे इस प्रकार का कार्य आक्रांताओं ने भारत में ही नहीं किया अपितु उन सभी देशों में किया जहाँ उन्होंने अपने उपनिवेश बनाए। भारत में ऐसा करने का विशेष महत्व इसलिए है क्योंकि यहाँ की ज्ञान परम्परा और भाषाएँ अन्य देशों की तुलना में अधिक समृद्ध रही हैं।

प्रारम्भ से लेकर अंग्रेजों के आगमन के पूर्व तक भारतीय शिक्षा में अध्यापन के विषयों तथा शिक्षण-व्यवस्था में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया था तथा शासकीय स्तर पर शिक्षा पद्धति में कोई हस्तक्षेप भी नहीं हुआ था। यहाँ तक कि अंग्रेजों के आने के बाद भी प्रारम्भिक काल में उनकी शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाएँ जाने वाले विषयों को लेकर अथवा शिक्षा व्यवस्था को लेकर कोई रुचि नहीं थी जैसा कि धर्मपाल ने लिखा है। आस्था के वर्षों में भारत के धर्म, तत्त्व ज्ञान, क्षात्र-साहित्य या शिक्षा प्रथा में अंग्रेजों

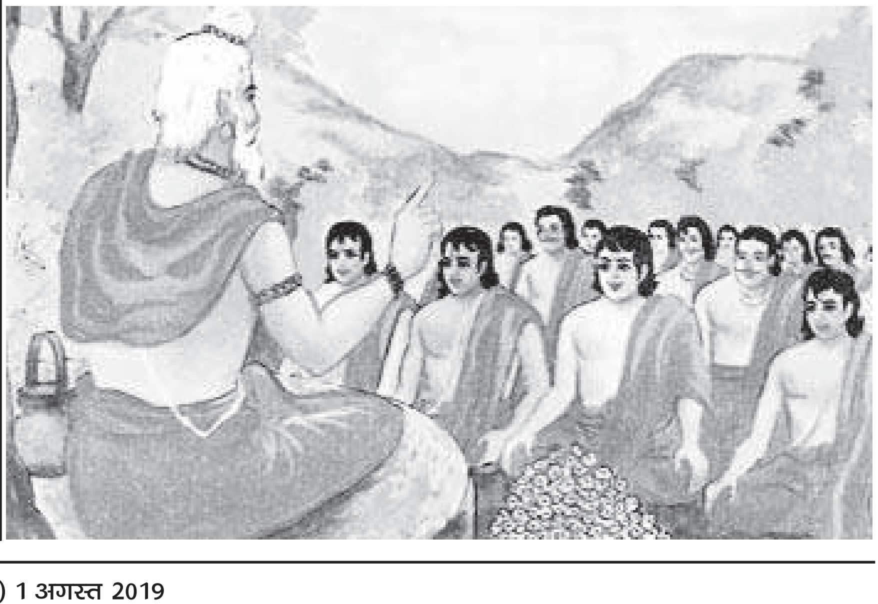

की लेशमात्र भी रुचि नहीं थी। (धर्मपाल : इस शोध वृक्ष, 18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा पृ.क्र.10)

भारत की शिक्षा से ही पाठ्यक्रम को लेकर अंग्रेजों की रुचि पहली बार ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के सदस्य चार्ल्स ग्रांट के प्रयत्नों से जाग्रत हुई और सार्वजनिक भी हुई। चार्ल्स ग्रांट ने भारत में शिक्षा और पढ़ाने जाने वाले विषयों के संबंध में अपने विचारों को 1792 में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में विचार हेतु तैयार किए गए एक प्रस्ताव में व्यक्त किए। संदर्भ यह था कि 1793 में 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' का चार्टर नवीनीकरण के लिए ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में प्रस्तुत होना था। चार्ल्स ग्रांट चाहते थे कि प्रस्ताव पर विचार करने के पूर्व पार्लियामेन्ट के सदस्य भारत की जनता के प्रति कम्पनी के कर्तव्यों के प्रति कुछ जान सके। इस संबंध में चार्ल्स ग्रांट एक प्रस्ताव भी ब्रिटिश पार्लियामेंट में लाना चाहते थे। जिसमें भारतीय शिक्षा और भाषा के संबंध में कम्पनी के दायित्वों की चर्चा थी। इस प्रस्ताव को लाने के पूर्व चार्ल्स ग्रांट पार्लियामेन्ट के सदस्यों को अपने विचारों से अवगत कराना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने 1792 में एक प्रस्ताव तैयार किया उसका शीर्षक था 'आब्जर्वेशंस ऑफ द स्टेट ऑफ सोसाइटी अमंग द एशियाटिक सब्जैक्टस ऑफ ग्रेट ब्रिटेन पर्टिकुलरली विद रिस्पेक्ट टु मारल्स एण्ड द मील ऑफ इंप्रूविंग इट' इस प्रस्ताव की प्रतियाँ पार्लियामेंट के सदस्यों को बाँटी गई।

इस प्रस्ताव में चार्ल्स ग्रांट ने कई सुझााव प्रस्तुत किए उनमें से निम्न सुझाव प्रमुख हैं।

- भारत में शिक्षा का प्रसार कम्पनी सरकार की वैधानिक जिम्मेदारी हो।
- भारत में पाश्चात्य शिक्षा लागू की जाय।
- शिक्षा के विषय हो साहस, इंजीनियरिंग, कला कौशल, सामान्य ज्ञान और साहित्य।
- अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय।
- अंग्रेजी भाषा को सरकारी भाषा बनाया जाय।
- अंग्रेजी को सरकार और जनता के बीच सम्पर्क-भाषा के रूप में प्रयुक्त किया जाय।
- अंग्रेजी ऐसी कुंजी है जिससे भारत के लिए विचारों की नई दुनिया के द्वारा खुल जावेंगे और अंग्रेजी स्कूलों में नौजवानों की भीड़ लग जायेगी।
  (तुलसीराम: भारत में अंग्रेजी क्या खोया, क्या पाया पृ. क्र. 16)

चार्ल्स ग्रांट के इस प्रस्ताव के माध्यम से पहली बार भारत में भाषा और पाठ्यचार्या के प्रति अंग्रेजों की रुचि जागृत हुई। इसी रुचि ने आगे चलकर भारत में शिक्षा के पूरे परिदृश्य को बदल दिया। इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि अंग्रेजी भाषा के सरकारी भाषा के रूप में और सम्पर्क भाषा के रूप में स्थापित होने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई।

जहाँ तक यह प्रश्न है कि चार्ल्स ग्रांट के प्रस्ताव के आधार पर भारत में कौन-कौन से विषय पढ़ाये जाने चाहिए उस समय और ब्रिटेन की कक्षाओं में बढ़ाएँ जाने वाले विषयों के संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करना उचित होगा।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक भारत में शिक्षा के अन्तर्गत धर्मशास्त्र, न्यायशास्त्र, तर्कशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष विज्ञान, खगोलशास्त्र जैसे विषय पढ़ाये जाते थे। (धर्मपाल: रमणीय वृक्ष 18 वीं शताब्दी में भारतीय दीक्षा पृ.सं. 52) इसके अतिरिक्त प्राथमिक स्तर में अक्षरज्ञान, वाचन, लेखन, अंकगणित पाठ्यक्रम का ज्ञान था।

उस समय इंग्लैण्ड के स्कूलों में धार्मिक शिक्षा, पठन, लेखन, अंकगणित आदि विषय पढ़ाये जाते थे स्पष्ट है इंग्लैण्ड के स्कूलों का पाठ्यक्रम भारत के स्कूलों के पाठ्यक्रम से किसी भी प्रकार उभत नहीं था।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रारम्भ में प्रमुखत: दर्शन, व्याकरण, खगोल शास्त्र, प्राचीन इतिहास (हिब्रू और यूरोप) के अतिरिक्त 1669 से वनस्पति शास्त्र 1980 से चिकित्साशास्त्र तथा 1803 से रसायन शास्त्र का अध्ययन कराया जाता था।

(धर्मपाल : रमणीय वृक्ष 18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा पृ. स. 14) पार्लियामेण्ट के सदस्यों को बाँटी गई।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने आरम्भिक वर्षों में सीधे तौर पर भारत में शिक्षा संबंधी कार्य नहीं किया अलबत्ता कुछ मिशनरी संस्थाओं द्वारा किए गए कार्यों की कम्पनी ने सराहना अवश्य की तथा उन्हें आर्थिक सहयोग भी दिया। मिशनरी संस्थाओं द्वारा अंग्रेजी के प्रचार-प्रसार को कम्पनी ने अच्छा भी माना। प्रारंभ में तो मिशनरीज ने बच्चों को अपनी मातृभाषा में ही पढ़ाया पर बाद में अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाने लगे।

शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाएँ जाने वाले विषयों तथा उनके पाठ्यक्रमों में दखल का प्रारम्भ बीज रूप से तो 1793 के चार्ल्स ग्रांट के ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के सदस्यों को वितरित प्रस्ताव के द्वारा ही हो गया था, तथापि 21 वर्ष बाद 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा वह खुले रूप में सामने आया। वैसे तो इस चार्टर एक्ट में बहुत कुछ कहा गया था तथापि चार्ट एक्ट पर चर्चा के समय भारत की मूल शिक्षा में परम्परा के विषय में ब्रिटिश पार्लियामेंण्ट में विस्तार से चर्चा हुई। इस चर्चा में भारत में धार्मिक और नैतिक सुधार का विचार प्रमुख था।

(धर्मपाल- रमणीय वृक्ष, 18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा पृ. सं. 18)

जहाँ तक भारतीयों को दिए जाने वाले ज्ञान का प्रश्न है। इस संबंध में कहा गया कि भारतीयों में उपयोगी ज्ञान का प्रचार और नैतिक उन्नति की जानी चाहिए। यह उपयोगी ज्ञान कौन-सा है।

यह स्पष्ट नहीं था तथापि उपयोगी ज्ञान का अभिप्राय यूरोपीय विज्ञान से ही था। इस बात की पुष्टि होल्ट मैकेंजी के इस कथन से होती है कि, 'यदि यूरोपीय विज्ञान सत्य और श्रेष्ठ है तो उसे भारत के लोगों तक पहुँचाना हमारी शिक्षा योजना का प्रारम्भ से ही अनिवार्य अंग होना चाहिए और सरकार को यह बात अधिकृत रूप से घोषित कर देनी चाहिए' (शार्प, सेलेक्शन्स फ्रॉम एजूकेशनल रिकॉर्ड्स प्रथम भाग 1781-1839 पृ. सं. 26-27 उद्घृत राष्ट्रीय शिक्षा आन्दोलन का इतिहास

सम्पादक देवेन्द्र स्वरूप पृ. सं. 63)

इसी प्रकार नैतिकता का अभिप्राय भारतीय नैतिक मूल्य या नैतिक अवधारणाएँ नहीं थीं अपितु ईसाईयत थी। यह माना गया कि नैतिक उन्नति ईसाईयत से ही होगी।

भारतीयों को दी जाने वाली शिक्षा के संबंध में इस समय अंग्रेज शासकों में दो पक्ष थे। एक पक्ष इस मत का था कि भारतीयों को भारतीय साहित्य, भारतीय विद्वान, संस्कृत, फारसी, अरबी भाषाएँ पढ़ाई जावें। यह पक्ष बहुत तेजी से शिक्षा में परिवर्तन का पक्षधर नहीं था अपितु धीरे-धीरे भारत में जन की भावनाओं को आहत किए बिना शिक्षा में परिवर्तन का समर्थक था। इस मत के समर्थन में मुनरो, जॉन मैल्कम, एल्फिंस्टन और मेटकॉफ प्रमुख थे। दूसरा पक्ष यह मानता था कि भारतीयों को पश्चिमी साहित्य, अंग्रेजी, पश्चिमी विद्वान की शिक्षा दी जानी चाहिए। इस विचार के समर्थकों में चार्ल्स ग्रांट, विल्बर्ट फोर्स, लार्ड कार्नवालिस तथा लार्ड वेलेजली प्रमुख थे।

इसी बीच सन् 1823 में लार्ड एम्हर्स्ट ने सामान्य लोक शिक्षा समिति (ए जनरल कमिटी ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन)का गठन किया। इसके अधिकांश सदस्य भारतीय साहित्य और शिक्षा पद्धति के समर्थक थे वे चाहते थे कि परम्परागत विषयों को पढ़ाते हुए यूरोपीयन साहित्य और विज्ञान को भी समाहित किया जाय। समिति के प्रयासों से विज्ञान की यूरोपीयन पुस्तकों का संस्कृत और अरबी में अनुवाद भी हुआ।

शिक्षा संबंधी उपर्युक्त कार्यों से बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स प्रसन्न नहीं था अत: उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि हमें संस्कृत साहित्य या अरबी, फारसी साहित्य के अध्ययन-अध्यापन पर जोर नहीं देना चाहिए। अपितु हमारे उद्देश्य उपयोगी साहित्य के अध्यापन का होना चाहिए। उपयोगी साहित्य का अभिप्राय था विज्ञान। 1829 में लार्ड विलियम बैटिंक जो उस समय भारत में गवर्नर-जनरल थे ने शिक्षा समिति को एक पत्र लिखा जिसका अभिप्राय यह था कि भारत में यूरोपियन विज्ञान, नैतिकता और सभ्यता के प्रकाश में कार्य किया जाय तथा सरकार की यह पद्धति नीति रहेगी कि प्रशासनिक कार्य में अंग्रेजी लागू की जाय। नैतिकता का अभिप्राय था क्रिश्चियनिटी और सभ्यता का अभिप्राय था पाश्चात्य सभ्यता।

1834 में मैकाले भारत के गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्य बनाए गए। वे गवर्नर-जनरल की कौंसिल में विधि-सदस्य बने साथ ही उन्हें 'सामान्य लोक-शिक्षा समिति' का अध्यक्ष भी बनाया गया। अध्यक्ष के नाते उनके सम्मुख भारतीय शिक्षा को लेकर उस समय चलने वाले भारतीय शिक्षा पद्धति समर्थकों का विवाद लाया गया। विवाद बहुत स्पष्ट था तथा शिक्षा संस्थाओं में शिक्षण पुरानी प्रचलित पद्धति से किया जाय और विज्ञान पढ़ाने के लिए पहले यूरोपीय विज्ञान का अनुवाद भारतीय भाषाओं में किया जाय फिर उसे भारतीय भाषाओं में पढ़ाया जाय या विज्ञान को आधुनिक भाषा (अंग्रेजी) के माध्यम से पढ़ाया जाय।

प्रश्न यह भी था कि शिक्षा का माध्यम क्या हो? अंग्रेजी या देशज भाषाएँ माध्यम के रूप में अंग्रेजी भाषा अनिवार्य हो या ऐच्छिक। उस समय के गर्वनर-जनरल लार्ड विलियम बैटिक ने इस प्रश्न पर तथा अन्य बिन्दुओं पर उचित समाधान और परामर्श के लिए शिक्षा समिति के अध्यक्ष लार्ड मैकाले के पास भेज दिया। मैकाले भारत आने के पूर्व ही अपना मानस अंग्रेजी शिक्षा के लिए बना चुके। उन्होंने भारत में शिक्षा के स्वरूप को लेकर और शिक्षा के माध्यम को लेकर बुनियादी काम पहले ही कर लिया था। अत: उन्होंने पहला काम तो यह किया कि भारतीय शिक्षा पद्धति के समर्थकों को सभी तर्कों के आधार को ही खारिज कर दिया परिणामत: भारतीय पद्धति और माध्यम से शिक्षण की बात ही समाप्त हो गई। इसके पश्चात् मैकाले ने 1813 के चार्टर एक्ट में प्रयुक्त शिक्षा संबंधी कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर अपना निर्णायक अभिमत दिया।

मैकाले ने कहा चार्टर एक्ट में प्रयुक्त 'लिटरेचर' शब्द का अभिप्राय है इंग्लिश लिट्रेचर है। इसका अभिप्राय संस्कृत या अरबी-साहित्य नहीं है। इसी प्रकार 'लर्निग नेटिव्ज ऑफ इण्डिया का अभिप्राय है अंग्रेजी भाषा साहित्य, पश्चिम का विज्ञान और पश्चिम के विद्वान। संस्कृत और अरबी साहित्य के विद्वान नहीं।'रिवाइवल एण्ड इंप्रूवमेंण्ट ऑफ लिट्रेचर' का अर्थ है, अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन का विकास और प्रसार न कि संस्कृत और अरबी साहित्य का विकास और प्रसार। मैकाले के इस अभिमत का परिणाम यह हुआ कि शिक्षण संस्थाओं में अध्यापन के लिये जो पाठ्यक्रम बना उसमें भारतीय ज्ञान, भारतीय भाषाएँ, और भारतीय दर्शन गायब हो गए तथा अंग्रेजी साहित्य, यूरोपीयन, विज्ञान और तत्व चिंतन पाठ्यक्रम में आ गए। साथ ही शिक्षा का माध्यम भी अंग्रेजी हो गया। लार्ड विलियम बैटिक ने 1835 में मैकाले की अनुशंसाओं को स्वीकार कर एक आदेश जारी किया जिसमें तीन बातें प्रमुखता से की गयी, एक भारतीय जनता में यूरोपीयन साहित्य और विज्ञान का प्रसार किया जाए। दो भारतीय साहित्य को छापने के लिए सरकार की ओर से कोई धनराशि नहीं दी जायेगी, तीन जो भी धनराशि सरकार के पास उपलब्ध है उसका उपयोग भारत की जनता को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से अंग्रेजी साहित्य और विज्ञान को पढ़ाने के लिए खर्च किया जायेगा। (शार्प सलेक्शन फ्रोम एजूकेशन रिकार्ड्स पार्ट 1 पृ. क्र. 130-131 उद्यृत तुलसीदास, भारत में अंग्रेजी क्या खोया, क्या पाया पृ. क्र. 67)

पूरे घटनाक्रम के परिणामों के संबंध में मुरली मनोहर जोशी का कथन है कि,'ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के जिस चार्टर के आधार पर विश्वविद्यालय और महाविद्यालय बनवाए गए। उनकी पाठ्यचर्या में स्पष्ट लिखा है कि गणित, रसायन विज्ञान, भौतिकी, दर्शनशास्त्र आदि विषय अंग्रेजी माध्यम से पढ़ाएँ जायेंगे। इन विषयों के पाठ्यक्रम में यूरोपीयन गणितज्ञों, वैज्ञानिकों, दर्शनशास्त्रियों आदि को ही रखा जायेगा। भारतीय गणितज्ञों, वैज्ञानिकों और दर्शन शास्त्रियों का उसमें कहीं जिक्र नहीं होगा। ऐसा करने से अपनी मूलधारा से अलग करना चाहते थे। भारत से काट देना चाहते थे। (मुरली

मनोहर जोशी) 'भारत में शिक्षा की संस्कृति और संस्कृति की शिक्षा 16 दिसम्बर, 2006 व्याख्यान भोपाल उद्घृत पुरवैया जून-जुलाई, 2007 पृ. सं. 9)

ऐसा हुआ भी शिक्षा के संबंध में अंग्रेजी सरकार द्वारा लिए गए निर्णय का परिणाम यह हुआ कि जिस संस्कृत भाषा में उपलब्ध ग्रंथों को 1814 में 'एक्सलेंट ट्रिटीज' कहा गया। वे सब ग्रंथ अब व्यर्थ के हो गए। आगे चलकर 1854 के बुड्ज डिस्पैच में कहा गया कि, 'जनता के सारे वर्गों में यूरोपियन विषयों की शिक्षा का ज्ञान कराया जाय तथा भारतीयों को यूरोपीयन ग्रंथों से परिचित कराया जाय।

भारत भाषाओं की स्थिति आश्चर्यजनक रूप से विचित्र हो गई। यहाँ तक कि संस्कृत साहित्य में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त करने के लिए लिखे जाने वाले शोध प्रबंध इंग्लिश भाषा में लिखे जाने लगे और उनके आधार पर उपाधियाँ दी जाने लगीं। यह तो ऐसा ही हुआ जैसे इंग्लिश साहित्य में पी.एच.डी. का शोध हिन्दी या संस्कृत भाषा में लिखा जाय। पर भारतीय शिक्षा में भारतीय भाषाओं की विडम्बना देखिए विषय संस्कृत साहित्य एवं भाषा का पर शोध का माध्यम इंग्लिश भाषा। संस्कृत विषय में एम.ए. की उपाधि अंग्रेजी माध्यम से प्राप्त की जा सकती थी।

कालान्तर में इसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण शिक्षा पश्चिम केन्द्रित हो गई, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत छात्रों के मस्तिष्क में यह धारणा जम गई कि जो भी वैज्ञानिक और दार्शनिक ज्ञान है। वह यूरोप में ही विकसित हुआ है, भारत में तो ज्ञान-विज्ञान कोई परम्परा रही ही नहीं। शिक्षा का माध्यम इंग्लिश होने का यह परिणाम हुआ कि छात्रों ने उन पुस्तकों पढ़ा जो अंग्रेजों ने अंग्रेजी में लिखी थी। भारतीय विचारक और उनकी पुस्तकों का अध्ययन होता ही नहीं था परिणामतः समाजविज्ञान, इतिहास, भूगोल सभी विषयों में जो अंग्रेजों ने लिखा हमने उसे ही पढ़ा और उसे ही सत्य मान लिया हमारी शिक्षा की भावभूमि ही बदल गई। हमारा इतिहास बोध भोंथरा हो गया। हमारा इतिहास वह हो गया जो जेम्स मिल्स ने लिखा। हम अपनी संस्कृति, सभ्यता, भूगोल, इतिहास और समाज को अंग्रेजी आँखें से देखने लगे और उनके लिखे पर विश्वास करने लगे।

हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, इंजीनियरिंग, ज्ञान और तत्वचिन्तन सब अध्ययन क्षेत्र से बाहर हो गए। हमारा अकादमिक वह हो गया जो अंग्रेजों ने या अंग्रेजों से प्रभावित विद्वानों ने हमें समझाया। हम अपने विद्वानों के कथन पर अविश्वास करने लगे। हमारा गौरव, हमारा आत्मसम्मान, हमारे आत्मविश्वास हमारे इतिहास पुरुषों का पौरुष तथा उनकी महानता सभी कुछ शिक्षा से गायब हो गयी।

इस प्रकार पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यक्रम से भारतीय ज्ञान परम्परा और भारतीय भाषाओं को अलग करने का जो सुनियोजित प्रयास 1792 में चार्ल्स ग्रांट ने प्रारम्भ किया उसने 1834 में अपनी पूर्णता को प्राप्त किया। इस प्रकार भारतीय मानस को उसकी वैचारिक और सांस्कृतिक चेतना से वंचित करने में यह प्रयास सफल रहा। ❑

(अध्यक्ष, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली)

इतिहास साक्षी है कि भारत का प्राचीन दर्शन, शिक्षा और संस्कृति का विश्वभर में अत्यन्त मंगलकारी प्रभाव रहा है। हमारी संस्कृति जिसे वैदिक संस्कृति भी कहा जाता है। विश्व विजयी रही है, क्योंकि उसने अति प्राचीन काल से ही अखिल मानव समाज को अपना माना और सकल चराचर सृष्टि के कल्याण की कामना की है। पाश्चात्य देशों के विद्वान और वैज्ञानिक भी अब यह स्वीकार करने लगे हैं कि सुख और शान्ति के लिये, भारत के मार्ग पर चले बिना अन्य कोई विकल्प नहीं है।

शिक्षा से आनन्दोत्कर्ष

❑ डॉ. नन्द सिंह नरूका

भारतीय संस्कृति व सभ्यता का इतिहास युगों और कल्पों में हैं। कहा जाता है कि जब शेष विश्व ने सभ्यता के दर्शन हेतु आँख खोली तो भारत को समृद्ध एवं उन्नत पाया। गुरुकुलों में न केवल शिक्षा दी जाती थी अपितु जीवन में उपयोगी सभी बातों को सिखाया जाता था। गुप्तकाल में भारत आये प्रसिद्ध चीनी यात्री फाह्यान ने भारतीय संस्कृति, सभ्यता व शिक्षा को सर्वाधिक श्रेष्ठ और समुन्नत पाया। यह इस बात को भी सिद्ध करता है कि भारतीय शिक्षा पद्धति भी समृद्ध एवं उन्नत रही है।

शिक्षा से मानव का समग्र विकास

प्राणी भगवत्कृपा तथा पुण्यपुंजों से मनुष्य योनि प्राप्त करता है। मानवयोनि के अतिरिक्त संसार की जितनी भी योनियाँ हैं, वे सब भोग योनियाँ हैं। केवल मनुष्य योनि ही ऐसी है, जिसमें जीव को अपने विवके-बुद्धि, के अनुसार शुभ-अशुभ कर्म करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है। हमारे यहाँ शिक्षा व विकास का चिन्तन समग्रता का रहा है। शरीर-मन-बुद्धि-आत्मा चारों का सन्तुलित विकास, इसी से सुख का निर्माण है। वैदिक साहित्य के अनुसार सुख की चार अवस्थायें हैं। शारीरिक सुख, मानसिक सुख, बौद्धिक सुख एवं आत्मिक सुख। भारत में सभी सुखों को प्राप्त करने की शिक्षा दी गई। आत्मिक सुख पर विशेष आग्रह रहा।

आत्मिक सुख- यह स्थायी सुख है, यह परम आनन्द एवं चिरन्तन है। बुद्धि और चित्तवृत्तियों से भी परे है। यह तर्क पर आधारित नहीं आन्तरिक अनुभव पर आधारित है। इसी सुख (मोक्ष) को प्राप्त करना ही मानव का जीवनोद्देश्य माना गया है। जहाँ समन्वय सामंजस्य और परस्पर पूरकता का भाव सम्पूर्ण चराचर जगत में व्याप्त हो जाता है, वहीं ऐसा आत्मिक सुख प्राप्त होता है। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के पुरुषार्थ चतुष्टय के अनुरूप सुखों की सभी अवस्थाओं का उत्तरोत्तर आधार अच्छा माना जाता है। अर्थ अथवा धन से शारीरिक और अंशत: मानसिक सुखों की प्राप्ति होती है। काम (इच्छा पूर्ति) द्वारा मानसिक तृप्ति होती है। मोक्ष साधन द्वारा बुद्धि और आत्मा दोनों की तृप्ति होती है। इन सभी का आधार धर्म है। इस प्रकार धर्म व्यष्टि को समष्टि, सृष्टि और परमेष्टि से जोड़ने का कार्य करता है और यही सर्वोच्च सुख माना गया है। भारतीय शिक्षा धर्म प्रधान रही है। शिक्षा इन्हीं सब बातों को ध्यान में रख कर प्रदान की जाती रही हैं।

मानव जीवन के सम्पूर्ण सुख की कल्पना केवल वैदिक साहित्य में ही है, जो भारतीय संस्कृति का अधिष्ठान है। अत: मानव जीवन एवं सम्पूर्ण सृष्टि के संदर्भ में वैदिक चिन्तन तथा उस पर आधारित शिक्षा ही वैश्विक भूमिका निभाने की क्षमता रखती है।

भारत में शिक्षा का इतिहास

भारतीय शिक्षा का इतिहास समृद्ध एवं उच्च रहा है, नालन्दा व तक्षशिला में विशाल विश्वविद्यालय स्थापित थे। भारतीय शिक्षा में समुत्कर्ष के साथ नि:श्रेयस की प्राप्ति भी सम्भव थी, इस शिक्षा को प्राप्त करने के लिए विदेशी भारत में आया करते थे। कालान्तर में राजाओं के व्यक्तिगत स्वार्थ तथा परकीय आक्रमण एवं उनके शासन से हमारी संस्कृति ही नहीं अपितु शिक्षा व्यवस्था भी पतनोन्मुखी हो गई। मुस्लिम शासकों के समय मदरसों में मजहबी शिक्षा दी जाने लगी। उर्दू भाषा का विकास हुआ, बोलचाल एवं न्यायिक व्यवस्था में उर्दू व अरबी शब्दों का प्रचलन बढ़ा। अंग्रेजों ने भी पाया कि भारतीय समाज में शिक्षा का बहुत अधिक आदर है। उन्होंने प्रारम्भ में जनता का प्यार पाने लिए कोलकाता, काशी आदि स्थानों में विद्यालय प्रारम्भ किये भारतीयों को मानसिक रूप से गुलाम बनाने के लिए बाद में थामस बौंबिगटन मैकाले की सोच के अनुरूप काले अंग्रेज (जो रूप व रंग से तो भारतीय परन्तु सोच विचार से अंग्रेज) पैदा करने की शिक्षा प्रारम्भ की गई।

मैकाले की शिक्षा के दोष

अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय की नवीन शिक्षा जो मात्र अक्षर ज्ञान, समाज विधान व राजनैतिक विधान का ज्ञान मात्र कराती थी जिसे शिक्षित युवा ने ज्ञान का पर्याय समझ लिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि पूर्वजों के इतिहास को वह अनावश्यक, धर्म व संस्कृति को पिछड़ापन तथा रीतिरिवाज व रहन सहन को दकियानूस समझने लगा। मर्यादा विहीन विचार, आचार तथा आहार-व्यवहार प्रगतिशीलता के द्योतक बन गये व व्यक्ति अपने आपको सर्वज्ञ तथा सबसे अधिक समझदार समझने लगा। दूसरों की बातों की उपेक्षा करना, उनकी खिल्ली उड़ाना व अपने ज्ञान को सर्वोत्तम सिद्ध करने का प्रयास करना उसका आचरण बन गया। इसी आचरण का परिणाम था कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को मूर्ख व अपने आपको बद्धिमान समझने लगा। इसी विचार ने व्यक्ति को व्यक्तिवादी व स्वार्थी भी बना डाला। स्वावलम्बी सामूहिक जीवन परावलम्बी व एकांकी जीवन में बदल गया।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय महापुरुषों द्वारा प्रयत्न

अंग्रेजों की इस चालाकी को समझ कर स्वामी श्रद्धानन्द जी ने 1902 में भारतीय पद्धति से ज्ञान के लिए गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय स्थापित किया। आर्य समाज ने भारतीय शिक्षा जो नैतिक शिक्षा व वैदिक चिन्तन पर आधारित थी, के अनेक विद्यालय प्रारम्भ किये, महामना मदन मोहन मालवीय जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की। कई स्थानों पर राष्ट्रीय विद्यालय भी प्रारम्भ हुए। ये सभी प्रयत्न भारतीयता को बचाये रखने के लिए महापुरुषों एवं जागरूक समाज ने किये। इन विद्यालयों का आदर्श रहा कि परोपकार, मितव्ययता, आडम्बर शून्यता (सादगी), संयम, सन्तुलित विकास से ही अच्छे व्यक्तियों का निर्माण संभव है। व्यक्तित्व

शरीर या वेशभूषा से नहीं आन्तरिक गुणों से बनता है। धूर्त अंग्रेजों ने रोजगार पाने के लिए उनके द्वारा स्थापित विद्यालयों से प्राप्त शिक्षा को ही मान्यता दी जिससे युवा उन विद्यालयों की ओर आकृष्ट हुए।

युवा हुआ दिग्भ्रमित

आधुनिक शिक्षा विज्ञान ने संसार का इस प्रकार से कायाकल्प कर दिया है कि अज्ञान के अन्धकार से निकला व्यक्ति उसे देखकर न केवल आश्चर्यचकित हो गया बल्कि वह अपने आपको व अपने पूर्वजों को अल्पज्ञ व हीन भी समझने लगा। लोगों को इस शिक्षा से रोजगार मिल रहा था अत: आधुनिक शिक्षा विज्ञान का चमत्कार उसे स्पष्ट सामने दिख रहा था। पाश्चात्य देश उसको अपनी कृति बताकर विकास का पर्याय समझ रहे हैं। हमारे समाज के नवशिक्षित व्यक्ति अपने धर्म, संस्कृति, इतिहास व विज्ञान से अनभिज्ञ हो गये, उनकी आँखें इस चकाचौंध को देखकर दिग्भ्रमित हो गई, आधुनिक भौतिक विज्ञान को उसने सर्वशक्तिमान समझा व उसकी ओर एक अज्ञात आकर्षण से इस प्रकार खिंचता चला गया कि अन्य विषयों पर विचार करना ही उसने आवश्यक नहीं समझा। आधुनिक मकान, आधुनिक साज-सज्जा, आधुनिक पहनावा, आधुनिक भाषा व बोली के प्रभाव से उसने अपनी मौलिकता व पहचान को हमेशा के लिए गंवा दिया।

अंग्रेजों के द्वारा दी गई पद्धति ही आज किसी न किसी रूप में चल रही है जो रोजगार व विकास को ही प्रधान मान कर चल रही है। हमारी संस्कृति पर आधारित शिक्षा जिसमें नैतिक मूल्यों की प्रधानता थी को उपेक्षित कर दिया गया है। परन्तु राष्ट्र संघ की मानव विकास समिति की रिपोर्ट जिसे राजनीतिक एवं आर्थिक विशेषज्ञों ने तैयार किया है, अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि सर्वाधिक विकसित देशों में ही सामाजिक व्यवस्थाएँ टूट रही है, कुटुम्ब ध्वस्त हो रहे हैं। अविवाहित कुमारियाँ माता बन रही हैं, और सब प्रकार के घृणित अपराधों और रोगों की वृद्धि हो रही है। जितना विकसित देश वहाँ उतनी ही अधिक सामाजिक अशांति व्याप्त है। पाश्चात्य देशों के भौतिकवादी दृष्टिकोण ने लोगों में गला काट स्पर्धा उत्पन्न की जिससे शोषण की प्रवृति यहाँ तक बढ़ी कि केवल प्रकृति का ही नहीं अपितु मानव ही मानव का शोषण करने लगा है। स्वतंत्रता, समानता के बावजूद बंधुता की भावना पैदा नहीं हो सकी। बंधुता कोई कानून बनाने से नहीं आ सकती, उसके लिये तो संस्कारों की आवश्यकता है, और ये संस्कार हमें प्राप्त होते हैं, भारत के प्राचीन दर्शन, शिक्षा और संस्कृति से।

भारत में शिक्षा का आधार रहा प्राचीन दर्शन

इतिहास साक्षी है कि भारत का प्राचीन दर्शन, शिक्षा और संस्कृति का विश्वभर में अत्यन्त मंगलकारी प्रभाव रहा है। हमारी संस्कृति जिसे वैदिक संस्कृति भी कहा जाता है। विश्व विजयी रही है, क्योंकि उसने अति प्राचीन काल से ही अखिल मानव समाज को अपना माना और सकल चराचर सृष्टि के कल्याण की कामना की है। पाश्चात्य देशों के विद्वान और वैज्ञानिक भी अब यह स्वीकार करने लगे हैं कि सुख और शान्ति के लिये, भारत के मार्ग पर चले बिना अन्य कोई विकल्प नहीं है।

भारतीय वैदिक चिन्तन जिसे मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिए आवश्यक माना जाने लगा है। 21वीं सदी में हमें भी उसके वैचारिक अधिष्ठान और वैश्विक भूमिका निभाने की उसकी क्षमता को समझना होगा। भारत में हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने हजारों वर्ष पूर्व केवल मानव के ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण सृष्टि के रहस्यों को समझा और प्रकृति में विद्यमान सभी मानवेतर प्राणियों के साथ पेड़-पौधों सहित चराचर सृष्टि में विविधताओं के बावजूद 'एकात्म तत्त्व' के दर्शन किये और चिरंतन तत्त्व के आधार पर ऐसे समाज जीवन की रचना की, जो सम्पूर्ण विश्व को वास्तविक सुख और शान्ति का मार्ग दिखाने में सक्षम हैं।

भावी दिशा

भारत में प्राचीन समय में दी जाने वाली मूल्य परक शिक्षा से व्यक्ति का चतुर्दिक विकास होता था। वह परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व व चराचर जगत के लिए उपयोगी होता था। आज की शिक्षा में बच्चे तनाव में रहते हैं, आत्महत्या कर रहे हैं, व्यभिचारी बन रहे हैं, परिवार में टूटन बढ़ा रहे हैं, हताश व निराश हैं। उनकी मानवता कहीं खो गई है। उसे पाने के लिए हमें अपनी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था पर लौटना होगा। हम अपनी प्राचीन शिक्षा को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कैसे उपादेय बना सकते हैं इसको दृष्टि में रखते हुए व्यवस्था करनी होगी जिससे सच्चे अर्थों में शिक्षा से आनन्दोत्कर्ष प्राप्त हो। ❑

(पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान कर्मचारी चयन बोर्ड, जयपुर)

यदि किसी राष्ट्र की भूमि छिन जाय, तो उसे शौर्य से पुनः अर्जित किया जा सकता है, यदि किसी व्यक्ति का धन व्यतीत हो जाय तो उसे अनवरत परिश्रम के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, यदि राज्य सत्ता चली जाय तो उसे पराक्रम से पुनः प्राप्त किया जा सकता है परन्तु जब राष्ट्र की चेतना, मान बिन्दुओं व स्वाभिमान पर आक्रमण हो तब उसे सिर्फ एक ही राष्ट्रीय उद्घोष 'वन्देमातरम्' से पुनः सँवारा व पुनर्स्थापित किया जा सकता है। इतिहास साक्षी है कि भारत माता का उद्घोष करते हुए न जाने कितने क्राँतिवीरों ने देश की अस्मिता व स्वाधीनता के लिए अपना बलिदान दिया परन्तु आज तथाकथित बुद्धिजीवी मातृभूमि के वन्दन शब्द पर अनावश्यक व अनुचित प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं यह उनकी संकीर्णता की ही अभिव्यक्ति है जो क्षमा योग्य नहीं है।

वन्देमातरम् : राष्ट्रवाद का मूल मंत्र

❑ **प्रो. मधुर मोहन रंगा**

यदि किसी राष्ट्र की भूमि छिन जाय, तो उसे शौर्य से पुनः अर्जित किया जा सकता है, यदि किसी व्यक्ति का धन व्यतीत हो जाय तो उसे अनवरत परिश्रम के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, यदि राज्य सत्ता चली जाय तो उसे पराक्रम से पुनः प्राप्त किया जा सकता है परन्तु जब राष्ट्र की चेतना, मान बिन्दुओं व स्वाभिमान पर आक्रमण हो तब उसे सिर्फ एक ही राष्ट्रीय उद्घोष 'वन्देमातरम्' से पुनः सँवारा व पुनर्स्थापित किया जा सकता है। इतिहास साक्षी है कि भारत माता का उद्घोष करते हुए न जाने कितने क्राँतिवीरों ने देश की अस्मिता व स्वाधीनता के लिए अपना बलिदान दिया परन्तु आज तथाकथित बुद्धिजीवी मातृभूमि के वन्दन शब्द पर अनावश्यक व अनुचित प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं यह उनकी संकीर्णता की ही अभिव्यक्ति है जो क्षमा योग्य नहीं है। प्रस्तुत आलेख में 'वन्देमातरम्' का स्वाधीनता संग्राम में योगदान व राष्ट्रवाद के उदय का संक्षिप्त का वर्णन करने का प्रयास किया गया है। वन्देमातरम् का अर्थ 'माँ तुम्हारी वन्दना' है, इन शब्दों में क्या जादू है कि भारतीयों के मन में देश भक्ति की लहर विद्युत की तरह दौड़ती है। याद करें उस कालखण्ड को जब विदेशी आक्रान्ताओं ने हमारे आस्था केन्द्रों पर आक्रमण किया, हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान पर प्रहार किया, हमारी राष्ट्रभक्ति को ललकारा, मातृभूमि का अपमान किया, ऐसे समय में देश को एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य किया इसी बीज मंत्र ने, पहली बार 7 अगस्त 1905 को वन्देमातरम् के नारे का राष्ट्रवाद के रूप में उद्घोष टाऊन हॉल कलकत्ता की मिटिंग में हुआ जिसमें स्वदेशी की शपथ ली गई व विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रस्ताव पारित किया। यह स्वदेशी आन्दोलन शीघ्र ही देश के अन्य भागों में फैलने लगा, पूना व मुम्बई में लोकमान्य तिलक, पंजाब में लाला लाजपत राय, श्री अजित सिंह व मद्रास में श्री चिदम्बरम पिल्लई के नेतृत्व में फैला।

इसी समय 19 जुलाई 1905 को कर्जन के बंगाल विभाजन की, घोषणा की इसकी क्रियान्वति 16 अक्टूबर 1905 में प्रारम्भ हुई जिसमें मुस्लिम बाहुल्य पूर्वी क्षेत्र को हिन्दू बाहुल्य पश्चिमी क्षेत्र से अलग करना था, यह जान बूझकर समरस स्नेह वातावरण को दूषित करने का प्रयास था इस निर्णय से राष्ट्र अपमानित व छला हुआ अनुभव कर रहा था अतः ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का निर्णय लेना पड़ा। अगस्त का वह भाग्यशाली दिन था

जब छात्रों के साथ सभी वर्ग के लोग वन्देमातरम् का नारा लगाकर राष्ट्रीयता की पहचान के साक्षी बने। तत्कालीन आलेखों से इसकी पुष्टि होती है (The Bengali 9 August 1905, Sanjeevani, 10 August 1905) इस प्रकार वन्देमातरम् एक सबल रणघोष बन गया, इसे राष्ट्र की वाणी व पहचान माना गया जिसमें स्वदेशी की भावना की अभिव्यक्ति थी। यही राष्ट्रीय गौरव का विषय है इसी एक शब्द ने सम्पूर्ण देश में ऊर्जा का संचार किया। उन दिनों अनेक अवसरों पर सभी सम्प्रदाय के लोग वन्देमातरम् मंत्र का उच्चारण करते थे।

परन्तु आज परिदृश्य बदला है इसका क्या कारण है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। जब देश की एकता, अखण्डता व स्वाधीनता के लिए सभी वर्ग एक साथ रहे व लक्ष्य की प्राप्ति की परन्तु आज के परिप्रेक्ष्य में यह अलगाव वादी सोच क्यों? हमारा राष्ट्रीय धर्म व कर्तव्य क्यों बदल गये ? यह देश के समग्र विकास में बाधक है, यह चिंतन योग्य विषय है। 'वन्देमातरम्' के साथ-साथ भारतीय स्वाधीनता इतिहास में 'वन्देमातरम्' पत्रकारिता का भी महत्त्व था जिसे अरविन्द ने 1905 में प्रारम्भ किया था। इस पत्रकारिता ने 'लेखनी तलवार से अधिक शक्तिशाली होती है' कथन को चरितार्थ किया। महर्षि अरविन्द के अनुसार 'वन्देमातरम्' पत्रकारिता के इतिहास में लोगों को क्रांति के लिए प्रेरित करने हेतु मानसिक प्रभाव की दृष्टि से अनुपम था। (श्री अरविन्दो ऑन हिमसेल्फ पृष्ठ 58) उनके अनुसार दो वर्षों की अल्प अवधि में इस पत्रकारिता ने देशवासियों की मन:स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन करने में सफल रहा। इसी कारण वे चिदंबरम्, बाल गंगाधर तिलक व विपिन चन्द पाल के आदर्शों को अपनाने के लिए कृतसंकल्प हो गये। वन्देमातरम् के नारों से देश जाग उठा, प्रखर

राष्ट्रवाद का उदय होने से नौकरशाही भयाक्रांत हो उठी व सभी प्रकार के दमन एवं बल प्रयोग के तरीके अपनाने लगे। 1908 में पारित प्रेस एक्ट ने राष्ट्रीयता व स्वाधीनता के विचार को लेकर होने वाली गतिविधि पर रोक लगा दी। इस एक्ट की आड़ में प्रेस के स्वामित्व पर प्रहार किया गया। **जुलाई 1909 में मदन लाल धींगरा ने राष्ट्र धर्म निभाते हुए अत्याचारी ब्रिटिश को यम लोक पहुँचा दिया इसी कारण उन्हें फाँसी की सजा दी गई। परन्तु अपने दण्ड से पूर्व उनके अंतिम शब्द थे 'ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि मैं पुनः इसी भूमि पर जन्म लूं और मातृभूमि के पावन कार्य के लिये पुनः जीवन समर्पित करूँ' फाँसी पर चढ़ते समय उनके अंतिम शब्द थे 'वन्देमातरम्'।**

जिस प्रकार वन्देमातरम् ने भारत में राष्ट्रीय एकता व राष्ट्रवाद की ज्योति को जगाकर सभी में राष्ट्रीयता, स्वाधीनता की अलख व आत्म गौरव जगाये रखा इसी प्रकार वर्ष 1909 में पेरिस में भारतीय युवाओं ने जिनेवा से एक पत्रिका 'वन्देमातरम्' का प्रकाशन प्रारम्भ किया, पत्र में लिखा 'अत्याचार व दमन' के विरुद्ध हमारे क्रांतिवीरों ने बंगाल में जो यशस्वी अभियान प्रारम्भ किया है वन्देमातरम् के माध्यम से उसे सम्पूर्ण शक्ति व दृढ़ता से आगे बढ़ाना है। इस प्रकार वन्देमातरम् ने भारत में ही नहीं विदेश में रहने वाले भारतीय क्रांतिकारियों ने स्वाधीनता के यज्ञ में आहूति का संकल्प लिया। 27 अक्टूबर 1922 मे गोपाल कृष्ण गोखले के दक्षिण अफ्रीका में केपटाउन पहुँचने पर उनका स्वागत 'वन्देमातरम्' शब्द से एक जुलूस ने किया। 15 अगस्त 1907 को जर्मनी (स्टटगार्ट) में आयोजित समाजवादी अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में मैडम भीखाबाई कामा ने अपने सम्बोधन का प्रारम्भ वन्देमातरम् से किया, ओजस्वी भाषण के साथ तिरंगा लहराया। 26 अगस्त 1907 को अदालत के अपमान के कारण श्री विपिन चन्द्र पाल को छ:माह की सजा हुई। अदालत से जब वे बाहर आये तब नागरिकों ने उनका स्वागत 'वन्देमातरम्' से कर वातावरण को राष्ट्रीयता से ओतप्रोत कर दिया। स्वाधीनता संग्राम के सभी आन्दोलन का प्रतीक वन्देमातरम् ही था। बंगाल विभाजन आदेश को भी 1911 में कर्जन द्वारा वापस लेना पड़ा यह प्रखर राष्ट्रवाद का ही परिणाम था।

'वन्देमातरम्' के कारण ही त्याग, सेवा, निष्काम, कर्म व राष्ट्रीयता के प्रति आदर का आत्मबोध होता है। परन्तु वर्तमान समय में पाश्चात्य सोच से प्रभावित तथाकथित बुद्धिजीवी इस महान 'गौरव ग्रंथ' व 'माँ तुम्हारी वन्दना' में भी साम्प्रदायिकता को तलाशने का प्रयास करते हैं। यह सस्ती व विकृत राजनीतिक सोच है। परन्तु जब सभी राष्ट्रीय सोच के व्यक्ति एकता सूत्र में बँध कर राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में सहयोगी होंगे, तब विकृत मानसिकता स्वत: ही पराजित हो जायेगी। अत: यह आवश्यक है कि सभी शिक्षण संस्थाओं में वन्देमातरम् का गान हो इसी में भारत व समष्टि का कल्याण निहित है। राष्ट्रवाद के प्रखर संदेश 'वन्देमातरम्' को जनजन तक पहुँचाने का संकल्प ही हमारी सच्ची राष्ट्र सेवा व राष्ट्र भक्ति के साथ राष्ट्र के प्रति सच्ची कृतज्ञता होगी, वन्देमातरम्। q

(विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विज्ञान विभाग संत गहिरा गुरु वि.वि. अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़)

स्वतंत्रता आंदोलन भारत के इतिहास में एक युगांतकारी घटना थी। अंग्रेजों की दुर्नीति और दमनचक्र के प्रतिरोध में भारतीयों में एक नई जागृति और राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई। इस दासता के विरुद्ध जन-जागरण और आत्म सम्मान के भाव ने भारतीयों के मन में मुक्ति की उत्कट प्रेरणा उत्पन्न की। पूरा देश भारत माता को दासता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए उद्वेलित हो उठा और इस मुक्ति संग्राम में सबसे बड़ी भूमिका स्वतंत्रता सेनानियों की पत्रकारिता की ही थी।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और पत्रकारिता

❑ डॉ. शिवशरण कौशिक

भारत के इतिहास में इसकी विपुल भौतिक सम्पन्नता तथा कला एवं संस्कृति, धर्म-दर्शन व सामाजिक संरचना ने अनेक विदेशी जाति-समूहों तथा आक्रामण राज-सत्ताओं को अपनी ओर आकृष्ट किया। यूनानी, ग्रीक (यवन), शक, कुषाण, हूण, अरबी, तुर्की (इस्लामिक राज्य), मुगल, अफगान, अंग्रेज, फ्रांसिसी, पुर्तगाली आदि शासक व्यापारिक तथा राज्य विस्तार के अपने उद्देश्य से भारत पर आक्रमण भी करते रहे और शासन तथा शोषण भी। 17वीं शताब्दी के आरंभ में अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में अपना व्यापार और राज्य विस्तार किया। यह वह समय था जब भारत में मराठों, राजपूतों, सिक्खों और कई छोटी-छोटी रियासतों के साथ कमजोर मुगल शासक बहादुर शाह ज़फ़र का दिल्ली पर शासन था, हैदराबाद में निजामशाही का शासन था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की साजिशपूर्ण नीतियों का संपूर्ण राष्ट्र में विरोध होने लगा था। जगह-जगह अनेक संगठनों ने विद्रोह का बिगुल फूँक दिया और सारा देश अंग्रेजी दासता से मुक्ति के लिए लालायित हो उठा।

स्वतंत्रता आंदोलन भारत के इतिहास में एक युगांतकारी घटना थी। अंग्रेजों की दुर्नीति और दमनचक्र के प्रतिरोध में भारतीयों में एक नई जागृति और राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई। इस दासता के विरुद्ध जन-जागरण और आत्म सम्मान के भाव ने भारतीयों के मन में मुक्ति की उत्कट प्रेरणा उत्पन्न की। पूरा देश भारत माता को दासता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए उद्वेलित हो उठा और इस मुक्ति संग्राम में सबसे बड़ी भूमिका स्वतंत्रता सेनानियों की पत्रकारिता की ही थी।

स्वतंत्रता आंदोलन में देश की विभिन्न भाषाओं में होने वाली पत्रकारिता के प्रमुख स्तंभ मूलत: स्वयं को जनता का प्रतिनिधि मानकर ही पत्रकारिता में आये थे। इनमें अधिकतर पत्रकार स्वतंत्रता सेनानी भी थे जो आगे चलकर राजनेता, कवि, लेखक, समाजसेवी, शिक्षक तथा कलाप्रेमी बने। पं. बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी, भारतेन्दु हरिश्चंद्र आदि प्रमुख पत्रकार इसके उल्लेखनीय उदाहरण हैं। आजादी के समर में 'भारत मित्र', 'अभ्युदय', 'प्रताप', 'नृसिंह', 'केशरी', 'रणभेरी', 'देशबंधु', 'विशाल भारत', 'जागरण' आदि ऐसे प्रमुख पत्र

थे जिनके शीर्षक से ही भारत के प्रति गौरव और मुक्ति-संग्राम के प्रति उद्दाम ललक जाग्रत होती थी। यह वह समय था जिसमें वे सभी पत्र राष्ट्रीय जागरण तथा राष्ट्रीय सामाजिक चेतना के नूतन संघर्ष का प्रबल प्रकाश भारतीय जनता में फैला रहे थे। उस काल के भारतीय नागरिक राष्ट्रादर्श के लिए जी और मर रहे थे। एक नया देश, नया समाज और नया इतिहास बनाने से बढ़कर कोई दूसरा उद्देश्य उनके सामने न था। ये सभी पत्रकार निर्भीक थे।

'विशाल भारत' सोद्देश्यता की नीति का पोषक था और इनका मूल उद्देश्य भारतीय जनता को शिक्षित, प्रशिक्षित करना था। यह पत्र निरंतर जनता को अंग्रेजों की कूटनीति, दुर्नीति की जानकारी भी देता था तो साथ ही भारत में शिक्षा के प्रति अंग्रेजों के कुटिल रवैये का भी खुलासा करता था। इस पत्र के 1928 के जुलाई अंक में रामानंद चट्टोपाध्याय ने 'स्वराज्य की योग्यता' शीर्षक से लिखा - ''यहाँ की किसी भी जाति को उन्नत करने का अंग्रेजों का कोई उद्देश्य नहीं है। अगर ऐसी सोद्देश्यता उनके भीतर होती तो अवनत जातियों के लिए शिक्षा का इंतजाम करके, उनमें बहुतों को पढ़ने-लिखने के काबिल बना सकते थे और इस तरह उनकी सब तरह की उन्नति की नींव डाल सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।''

निस्संदेह हिन्दी का पहला समाचार पत्र 'उदन्त मार्तंड' 30 मई, 1826 को कलकत्ता से प्रकाशित हुआ जिसके संपादक-संचालक पं. युगल किशोर सुकुल थे। यद्यपि ब्रिटिश शासकों द्वारा कई समाचार पत्रों को प्रतिबंधित कर उन पर दमनचक्र चलाया जाता था।

यह महत्त्वपूर्ण है कि स्वतंत्रता आंदोलन की भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता को विशेष रूप से हिंदी पत्रकारिता को स्वतंत्रता आंदोलन के संघर्ष से ही जोड़कर देखा जाता है जबकि इस समय की पत्र-पत्रिकाओं में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति जागरूकता के साथ कई प्रकार की विद्याओं का उल्लेख किया है जिनमें राजनीति, प्रजानीति, लोकयात्रा विधान तथा अर्थनीति आदि सामाजिक शिक्षा के चार अंगों पर भी विस्तार से लिखा जाता रहा है। समकालीन पत्रकारिता में राष्ट्रभक्ति के साथ ही भौतिक विद्या के प्रकृति विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, रसायन विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, भूगर्भ विभान, प्राणिशास्त्र, उद्भिज विज्ञान, खगोल विज्ञान, भूगोल विज्ञान तथा शिल्प विज्ञान पर भी गंभीर आलेख तथा शोध प्रकाशित होते रहे हैं। 1897 में प्रकाशित 'मारवाड़ी गजट' ऐसा ही शिक्षा निष्ठ समाचार पत्र था जिसमें लोक शिक्षा के माध्यम से ही लोक जागरण का महत्त्व प्रतिपादित किया गया।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की पत्रकारिता में शिक्षा के पक्ष को प्रबलता से संस्कार रूप में स्थापित करने में स्वामी विवेकानन्द की भी महती भूमिका रही। उनके अनेक संभाषणों तथा कथनों को प्रमुख पत्रों ने प्रकाशित किया। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत कहे जाने वाले राजा राममोहन राय तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती के समाज सुधार के प्रयासों को भी 'मतवाला' जैसे प्रसिद्ध समाचार पत्र ने प्रमुख स्थान दिया। विधवा विवाह, बाल विवाह, छुआछूत, जाति प्रथा आदि में सुधार के अनेक प्रयास हुए।

स्वतंत्रता सेनानियों की पत्रकारिता का स्वभाव और कार्यशैली-श्रमसाध्य तो थी ही, साथ ही वह अंग्रेजों की नीति की कुटिलता को स्पष्टता से दृश्यमान भी करा रही थी। इसी संदर्भ में 'नृसिंह' के संपादक व यशस्वी पत्रकार अंबिका प्रसाद वाजपेयी ने 'विशाल भारत' में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा कि ''''नृसिंह' निकालने पर मुझे मालूम हुआ कि अंग्रेजी पत्रों में प्रकाशित बातों के आधार पर किसी न किसी प्रकार पत्र तो तैयार किया जा सकता है, परन्तु जब तक किसी विषय पर दृढ़तापूर्वक मत न प्रकट किया जाए, तब तक पत्र में

जान नहीं आ सकती। और यह काम तब तक नहीं हो सकता, जब तक स्वतंत्रतापूर्वक विचार कर सामयिक विषयों पर कोई मत स्थिर न किया जाए और यह तब तक संभव नहीं है जब तक उन विषयों पर अपनी भाषाओं में पूर्वापर विचार करने की पात्रता न हो।''(1931)

विशाल भारत में ही प्रमुख पत्रकार लक्ष्मीश्वर सिंह ने तत्कालीन भारत में रचनात्मक लोक शिक्षण प्रणाली के महत्त्व को बार-बार रेखांकित किया। उन्होंने इन पत्रों के माध्यम से एक ऐसी बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया जिसमें बौद्धिक और शारीरिक श्रम करने वाले देशवासियों के बीच के भेद को मिटाना था। उनके अनुसार शिक्षा एक ऐसी समता उत्पन्न करने वाली हो जो सब प्रकार के श्रम को एक तल पर लाकर सब में आत्मसम्मान पैदा करे। यही शिक्षा व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए आवश्यक है।

पत्रकारिता जगत में कलकत्ता का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रशासनिक, वाणिज्यिक तथा शैक्षिक दृष्टि से उन दिनों कलकत्ता का विशेष महत्त्व था। यहीं से राजा राममोहन राय ने 'बंगदूत' समाचार पत्र निकाला तो वहीं पर हिन्दू कॉलेज तथा फोर्ट विलियम कॉलेज की भी स्थापना हुई।

'उदन्त मार्तण्ड' आर्थिक परेशानियों के कारण कुछ समय पश्चात ही बंद हो गया। किन्तु थोड़े समय बाद ही समाचार सुधावर्षण, अभ्युदय, शंखनाद, हलधर, सत्याग्रह समाचार, युद्धवीर, क्रांतिवीर, स्वदेशी, नया हिन्दुस्तान, कल्याण, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, बुन्देलखण्ड केसरी, मतवाला, सरस्वती, विप्लव, अलंकार, चाँद, हंस, प्रताप, सैनिक, क्रांति, बलिदान, वालिंटियर आदि जनोन्मुखी पत्रिकाओं ने धीरे-धीरे भारतीय जनमानस में राष्ट्र प्रेम की उत्कट भावना उत्पन्न कर दी। परिणाम

यह हुआ कि इन सब पत्रों को अंग्रेजों के दमन चक्र का शिकार होना पड़ा तथा अनेक प्रतिबंध झेलने पड़े। संपादकों, लेखकों को कारावास तक भुगतने पड़े। 'मतवाला' और 'प्रताप' के संपादन में अनेक क्रांतिकारी लेखों के कारण माखनलाल चतुर्वेदी को वर्षों जेल में रहना पड़ा जहाँ उन्होंने 'पुष्प की अभिलाषा' तथा 'पर्वत की अभिलाषा' जैसी राष्ट्रभक्ति की अमर कविताओं की रचना की। गणेश शंकर विद्यार्थी का नाम कौन नहीं जानता? स्वतंत्रता आंदोलन की पत्रकारिता के युगपुरुष विद्यार्थी जी ही थे। महात्मा गाँधी, नेताजी सुभाष, सरदार भगत सिंह, काका कालेलकर, सरोजिनी नायडू, आचार्य विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि महान् स्वतंत्रता सेनानी पत्रकारिता के माध्यम से ही आजादी के आंदोलन का सफल नेतृत्व कर सके।

हिन्दी पत्रकारिता के आरंभिक काल में अधिकतर पत्रिकाएँ अपरिमार्जित हिन्दी में होती थीं क्योंकि लगभग 1825 से 1870 का कालखण्ड ब्रजभाषा में साहित्य-रचना का काल था। इस काल के पत्र-पत्रिकाओं का संबंध सीधे जन-जागरण से ही था। किसी भी प्रकार के अन्याय का, शोषण का प्रतिकार करने का माध्यम ये पत्र-पत्रिकाएँ ही थीं। यहाँ कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण समाचार पत्र और उनके संपादकों का उल्लेख करना भी समीचीन होगा। जैसे दैनिक 'आज' (बनारस) जिसके संपादक बाबूराव विष्णु पराड़कर थे जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन तथा समाज सुधार के प्रबल समर्थन के साथ ही पत्रकारिता के उच्चादर्शों एवं मानदण्डों की स्थापना की। दिल्ली से उग्र राष्ट्रवादी पत्र 'वीर अर्जुन', आगरा से श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल का 'सैनिक', पंजाब से 'हिन्दी मिलाप', 'विश्व बंधु', बिहार से दैनिक 'आर्यावर्त' आदि पत्रों का भी भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में विशेष योगदान रहा। माधवराव सप्रे का 'कर्मवीर' बाद में माखन लाल चतुर्वेदी के कर्मठ-तेजस्वी व्यक्तित्व से सम्पृक्त होकर अद्वितीय शक्तिपुंज बन गया। इसके साथ ही हिन्दी मासिकों में सबसे विशिष्ट तथा स्मरणीय नाम 'सरस्वती' का है।

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में गुणात्मक दृष्टि से पत्र-पत्रिकाओं तथा उनके लेखकों-संपादकों का स्थान अग्रणी था जो आज की तकनीक की दृष्टि से अत्याधुनिक कही जाने वाली पीत-पत्रकारिता के लिए अनुकरणीय है। आज के व्यावसायिक युग में आदर्श पत्रकारिता अब पत्रकारों के लिए व समाज के लिए एक चुनौती है। ❑

(सह आचार्य, हिन्दी विभाग,
राजकीय कला महाविद्यालय, दौसा)

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और शिक्षा

❑ प्रो. प्रकाश चन्द्र अग्रवाल

भारत की शिक्षा प्रणाली का इतिहास बहुत गौरवमयी रहा है। सुनियोजित आश्रम व्यवस्था और ब्रह्मचर्याश्रम में सार्वभौमिक मूल्य आधारित सार्वजनीन शिक्षा व्यवस्था का प्रचलन था। परन्तु कलान्तर में कुछ विसंगतियों के चलते एवं आड़म्बर व कर्मकाण्ड के प्रभाव में इसमें परिवर्तन परिलक्षित हुए। विभिन्न आततायियों के आक्रमणों व राजनैतिक/शासकीय अस्थिरताओं के चलते इसमें परिवर्तन होते गए। अंग्रेजों द्वारा देश पर आधिपत्य के पहले तक देश में छोटी बड़ी सभी रियासतों में रोजगार मूलक शिक्षा का पीढ़ी दर पीढ़ी अनुगमन होता रहा एवं समस्त निवासी खुशहाल जीवन व्यतीत करते रहे। वैदिक, ब्राह्मणिक, बौद्ध-कालीन, जैन-कालीन, दास-कालीन एवं मुगलकालीन शिक्षा में समसामयिक परिवर्तन तथा परलौकिक शिक्षा से लौकिक व धार्मिक शिक्षा तक का सफर भारतीय परिवेश में सम्मिश्रित होकर भारतीय भाषाओं व शिक्षा शैली को बदलता रहा। कभी वैदिक शिक्षा में गुरुकुल पद्धति से लेकर, बौद्ध मठों में शिक्षा संचालन तो कभी सबके लिए शिक्षा से लेकर केवल पुरुष समाज तक केन्द्रित शिक्षा, कभी आध्यात्मिक व परलौकिक शिक्षा से लेकर लौकिक शिक्षा तो कभी मज़हब के विस्तार के लिए धार्मिक शिक्षा। कभी रोजगार मूलक व स्वकेन्द्रित शिक्षा तो कभी कला, सौन्दर्य, साहित्य से ओतप्रोत सर्वांगीण व सामाजिक सरोकारों से निहित शिक्षा के केन्द्रित होने के बावजूद भारतीयों में शिक्षा अर्जन, सामाजिक समरसता व समाज-उत्थान वाली तथा कौशल आधारित शिक्षा के चलते देश खुशहाल रहा।

अंग्रेजों के द्वारा भारतीय शिक्षा प्रणाली की उपेक्षा के पूर्व तक भारतीयों का शैक्षिक स्तर तथा उनका सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में योगदान सराहनीय रहा। हालाँकि अनेक रियासतों के कारण वहाँ के छोट-बड़े महाराजाओं द्वारा स्थानीय शिक्षा प्रणाली के फलस्वरूप शिक्षा में सार्वभौमीकरण व एकरूपता का नितान्त अभाव था। सभी रियासतें एक दूसरे की सीमाओं के अतिक्रमण व विस्तारवादी मानसिकता से लिप्त थी। मध्यकालीन भारत में अनेकों कुरीतियों व आडम्बरों के चलते आए पतन के कारण कई चिन्तकों व समाज सुधारकों ने भारतीय चेतना का पुनर्जागरण कर इसकी शिक्षा व्यवस्था व समाज व्यवस्था को अपना मार्गदर्शन दिया।

अंग्रेजों के द्वारा भारतीय शिक्षा प्रणाली की उपेक्षा के पूर्व तक भारतीयों का शैक्षिक स्तर तथा उनका सामाजिक आर्थिक व्यवस्था में योगदान सराहनीय रहा। हालाँकि अनेक रियासतों के कारण वहाँ के छोट-बड़े महाराजाओं द्वारा स्थानीय शिक्षा प्रणाली के फलस्वरूप शिक्षा में सार्वभौमीकरण व एकरूपता का नितान्त अभाव था। सभी रियासतें एक दूसरे की सीमाओं के अतिक्रमण व विस्तारवादी मानसिकता से लिप्त थी। मध्यकालीन भारत में अनेकों कुरीतियों व आडम्बरों के चलते आए पतन के कारण कई चिन्तकों व समाज सुधारकों ने भारतीय चेतना का पुनर्जागरण कर इसकी शिक्षा व्यवस्था व समाज व्यवस्था को अपना मार्गदर्शन दिया।

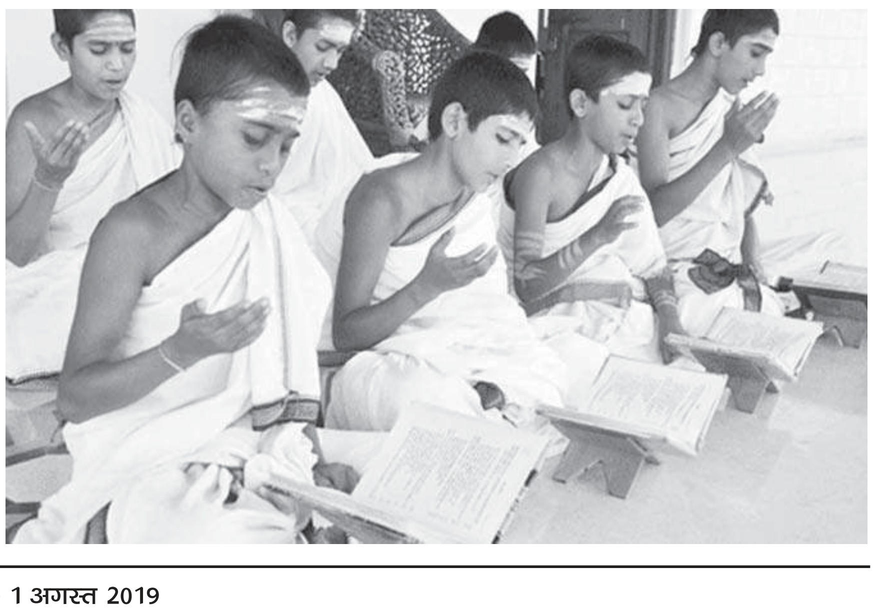

अंग्रेजों व ब्रिटिश सरकार ने देश के विभिन्न असंगठित रियासतों में बँटे होने का फायदा उठाया व भारत में अपना साम्राज्य स्थापित कर इसे अपना औपनिवेशिक राष्ट्र बना लिया। भारत का सुसंगठित सीमा क्षेत्र के रूप में विकास कर भारत राष्ट्र की स्थापना की और इसका भरपूर दोहन व शोषण किया। कहा जाता है कि मनुष्य प्रारंभ से ही अति महत्त्वाकांक्षी व लालसावादी रहा है। अंग्रेज भी इसका अपवाद नहीं थे। शासन व्यवस्था स्थापित करने के बाद उनका ध्यान केवल और केवल अपने लाभ पर केंद्रित हो गया। शासन को स्थायी विस्तृत व दीर्घकालीन बनाने के लिए उन्होंने भारतीय शिक्षा व्यवस्था, संस्कृति व भाषा और सामाजिक संगठन व्यवस्था पर चोट करना प्रारंभ किया व भारतीयों के आत्म सम्मान को छिन्न-भिन्न करने के लिए फूट डालो व राज करो का नीति में भाई को भाई से लड़ाना, लालच देकर सामाजिक मूल्यों के तिरोहन को बढ़ावा देकर मुख्य सेनानायकों व शासकों में भेद करवाना, भीतरघात को प्रोत्साहन देना, प्रलोभन देकर अपना उल्लू सीधा करने पर ध्यान केंद्रित किया। **मुट्ठीभर अंग्रेजों ने भारतीयों में से ही कुछ को अपना नौकर बनाकर व भारतीय संस्कृति, भाषा व शिक्षा को रूढ़ीवादी, अवैज्ञानिक पीछे धकेलने वाली तथा पाश्चात्य शैली को प्रगतिवादी, वैज्ञानिक व समृद्धि देने वाली के रूप में स्थापित करने का सुनियोजित कार्य किया। भारतीय जन मानस में हीन भावना भरने व पाश्चात्य दर्शन को ही जीवन प्रगति का कारक स्थापित करने की मंशा से भारतीयों पर अत्याचार किए। उनके शासन व व्यापार के सुचारु संचालन के लिए उन्हें अंग्रेज भक्त अंग्रेजी पढ़े-लिखे युवा वर्ग की आवश्यकता थी। ऐसा वर्ग पैदा करने के लिए उन्होंने देश में पाश्चात्य तथाकथित अभिजात्यवर्गीय शिक्षा का प्रचलन किया।** हण्टर आयोग, सार्जेन्ट आयोग आदि अनेक आयोगों व समितियों द्वारा भारत राष्ट्र में शिक्षा व्यवस्था को एकरूपता दी जाने की कोशिश की गई। यह सब उनके द्वारा अपनी महत्त्वाकांक्षा पूरी करने हेतु किया गया। परन्तु जब देश आजाद हुआ मात्र सोलह (16) प्रतिशत देशवासी शिक्षित थे। संस्थागत व आर्थिक ढाँचे के साथ-साथ शिक्षा व्यवस्था भी जर्जर अवस्था में थी व चरमरा रही थी। यह भी तब जब दादा भाई नौरोजी व गोपाल कृष्ण गोखले से लेकर महात्मा गाँधी के अथक प्रयासों द्वारा अंग्रजों को शिक्षा व्यवस्था पर सोचने, समुन्नत करने, विस्तार देने आदि के लिए मजबूर करने के बावजूद।

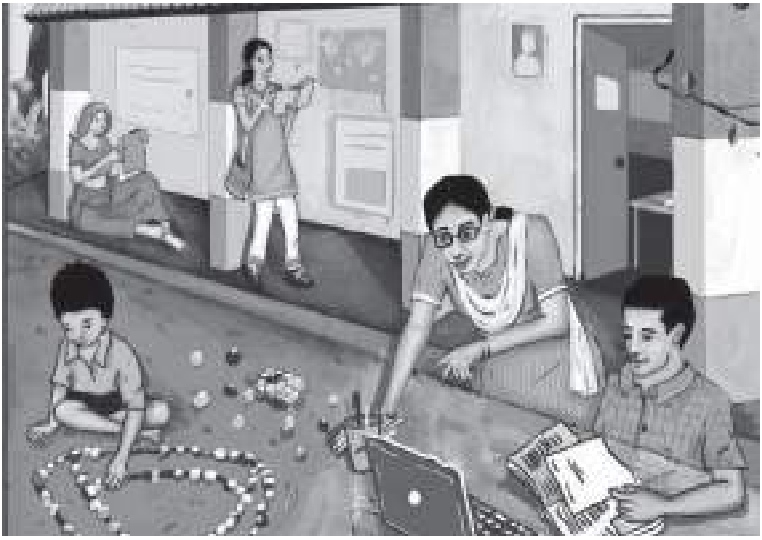

इन सब के सह उत्पाद के रूप में भारत देश पुनः एक राष्ट्र के रूप में उभरने लगा। मुगल सम्राट औरंगजेब के बाद हुए राजनैतिक विखण्डीकरण का अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना से भारत का राजनैतिक एकीकरण हुआ। परिवहन एवं संचार साधनों में रेल, डाक व तार आदि के विकास ने भी भारत में राष्ट्रवाद की जड़ को मजबूत किया।

जाने-अनजाने, ब्रिटिश सरकार की भारतीय संस्कृति व भाषा विरोधी इन नीतियों ने हमारे देश को एकता के सूत्र में पिरोने का काम किया। रेल, डाक व तार जैसे माध्यमों से देश की जनता एक दूसरे के सम्पर्क में आई व विचारों के आदान-प्रदान द्वारा जनजीवन में चेतना का प्रचार संभव हो सका। विश्व रंगमंच पर घटने वाली घटनाओं व अन्य देशों के स्वतंत्रता आन्दोलनों का प्रभाव हमारे स्वतंत्रता आन्दोलन पर भी पड़ा। अंग्रेजी भाषा की जानकारी का लाभ उठाकर हमारे देश के अनेक नवयुवक उच्च शिक्षा प्राप्त करने विदेशों में जाने लगे, वहाँ के लोगों से सम्पर्क में आकर उनका चिन्तन क्षितिज विस्तृत हुआ। अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों, भेदभाव की नीतियों आदि ने उनके मन मानस को झकझोरा व देश में लौटकर वे स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़े जिससे अन्य लोग भी आन्दोलन में प्रेरित व प्रभावित हुए। इन लोगों ने स्वतंत्रता आन्दोलन के अन्य प्रणेताओं के साथ मिलकर भारत के लिए आवश्यक शिक्षा व्यवस्था पर चिन्तन कर अनेक शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की जिसमें मातृभाषा के माध्यम से भारतीयता की शिक्षा तथा वर्धा योजना की बुनियादी शिक्षा जिसमें सैद्धान्तिक शिक्षण के स्थान

पर उद्योग आधारित शिक्षा व करके सीखने की शिक्षा पर जोर उल्लेखनीय है।

बड़ौदा नरेश द्वारा प्रथमिक शिक्षण को सब के लिए निशुल्क किए जाने तथा रमा देवी फुले द्वारा बालिकाओं की शिक्षा के लिए विद्यालय स्थापित किया जाना उल्लेखनीय है। इन प्रयासों में भेदभाव रहित व वर्ग रहित शिक्षण की व्यवस्था की गई। ऐसे अनेक प्रयासों से जन-जीवन में क्रांति की लहर दौड़ गई। विदेशी डिग्रियों और विदेशी विद्यालयों तथा महाविद्यालयों का बहिष्कार कर स्वदेशी शिक्षा (भारतीय भाषाओं के माध्यम से व हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु) शिक्षा पर जोर दिया गया। दूसरे की आँखों से देखे गए अपने सपने अपनी संपूर्णता को नकारते हैं। अंग्रेजों का दिवास्वप्न अंग्रेजी भक्त क्लर्क व्यवस्था, हमारे अस्तित्व को कठपूतली बनाना था परन्तु हमारे पूर्वज देशभक्तों ने अपने अस्तित्व हेतु संघर्ष कर स्वतंत्रता की ओर समाज को अभिमुख कर एक बड़ा स्वतंत्रता राष्ट्रीय आन्दोलन खड़ा कर दिया। अंग्रेजों ने भी अब शिक्षा के लिए देश में विद्यालय व वर्तमान के मेट्रो शहरों में कालेज स्तर की सुविधा मुहैया करवाना शुरू किया, मगर यह अभी भी नाकाफी था।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन भारतीय इतिहास में लम्बे समय तक चलने वाला एक प्रमुख राष्ट्रीय आन्दोलन रहा है। 1857 ई. का वर्ष भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का शुभारम्भ माना जाता है। विभिन्न समाचार पत्रों के प्रकाशन ने भारत में राजनीतिक जागरण का कार्य किया। दादा भाई नौरोजी ने धन निष्कासन के सिद्धान्त को समझाकर अंग्रेजों द्वारा किए जाने वाले आर्थिक शोषण से अवगत करवाया।

भारतीयों के मन में हीन भावना को दूर करने, कुछ देशी व विदेशी विद्वान लेखकों ने अपने लेखों व शोध के माध्यम से भारत की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर से सभी का परिचय करवाया और उनमें नया आत्म विश्वास जगाया। अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के प्रति हर क्षेत्र में यथा उद्योग, सेना आदि में भेदभाव वाली नीति व राष्ट्र हित के विरुद्ध लाए गए तमाम कानून तथा वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट, आर्म्स एक्ट, इंडियन सर्विस एक्ट इत्यादि ने भी राष्ट्रवादी संघर्ष को बार-बार ईंधन दिया।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में शिक्षा का बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। शिक्षा के अभाव में समान्य जन न अपने अधिकार जान पाते हैं, न उन्हें उपयोग कर पाते हैं तथा शोषण के शिकार होते हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान बहुत से छात्र युवक स्कूल, परिवार छोड़कर इसमें कूद पड़े थे। उस दौर की शिक्षा देश को आजाद कराने के लिए स्वाभाविक रूप से प्रेरणादायी आन्दोलनकारी रही क्योंकि दासता की बेड़ियों को तोड़ना ही इसका प्रमुख लक्ष्य हो गया था। राष्ट्रोन्मुखी संस्थाएँ, भारतीय समाज के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास के प्रयास में लगी थी। इनमें महात्मा गाँधी, बालगंगाधर तिलक, महर्षि अरविन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, बंकिम चन्द्र चटर्जी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय, सुब्रह्मण्यम भारती तथा प्रताप नारायण मिश्र जैसे महान व्यक्तित्व और योद्धा न सिर्फ ब्रिटिश सरकार की खिलाफत कर रहे थे अपितु राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के द्वारा देश की जनता को शिक्षित भी कर रहे थे। आज हमारा देश प्रगतिशील देश हैं जो पूरे विश्व में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। शिक्षा व्यवस्था ने युवाओं को सशक्त बनाया है जो देश की रीढ़ की हड्डी स्वरूप हैं।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाली विशाल सोच वाला हमारा राष्ट्र सर्व जनाय सर्व हिताय के सिद्धान्त व सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया ... की सोच से पुन: विश्व नेतृत्व कर सम्पूर्ण जीव-जगत को दिशा दे सकेगा।

निस्संदेह देश की स्वतंत्रता के बाद शिक्षा के क्षेत्र में हमने काफी प्रगति की है, परन्तु क्या हम शिक्षा से संबंधित अनसुलझे प्रश्नों का उत्तर देने में सफल हो पाए। क्या 72 वर्ष के बाद भी रोजगारपरक शिक्षा, मातृ-भाषा में शिक्षा, भारतीय सांस्कृतिक विरासत को बल देने की शिक्षा, भारत को पुन: विश्व-गुरु के स्तर के समकक्ष पुनर्स्थापित कर सकने वाली शिक्षा, परलौकिक, आलौकिक व आध्यात्मिक शिक्षा, सम्पूर्ण भारत वर्ष के बच्चों हेतु (सरकारी य गैर सरकारी विद्यालयी) निशुल्क शिक्षा, सैद्धान्तिक पक्ष वाली रटन्त शिक्षा के स्थान पर करके सीखने वाली व्यवहारिक शिक्षा, जीवन को सच्चे अर्थों में जीने की मूल्य-आधारित शिक्षा, सबके साथ मिलजुल कर सीखने, रहने व आगे बढ़ने की शिक्षा, अपने अस्तित्व को संवारकर सामाजिक योगदान व समाज व देश निर्माण की शिक्षा; हताशा व निराशा से निकालकर उत्साह भर आत्मगौरव भर देने वाली शिक्षा व्यवस्था लागू कर पाए? 1968 व 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन से बचे पहलुओं व नए आयामों को समेटे नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 (प्रारूप) में ऐसी कोशिश की जा रही है कि उपरोक्त प्रश्नों का भविष्य में उत्तर दिया जा सके। आइए हम सब मिलकर अपने अनुभवों एवं संपुष्ट विचारों से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 के माध्यम से राष्ट्रीय शैक्षिक स्तर को उपरोक्त अनसुलझे प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ बनाने में अपना संपूर्ण योगदान दें।

अशिक्षित को शिक्षा मिले, अज्ञानी को ज्ञान
शिक्षा से ही बन सकता है भारत देश महान ❑

(प्राचार्य, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर)

जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो

❑ श्रीमती भारती दशोरा

देश और समाज की धड़कन समाचार-पत्र, बेजुबाँ को बोलने एवं बहरे को सुनने की क्षमता प्रदान करता है। पत्रकारिता ने इसे जन-स्वर बना कर सर्व सुलभ बना दिया और जनमानस को अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान किया। भारत में पत्रकारिता के तत्त्व वैदिक काल, महाभारत, रामायण काल से ही बीज रूप में निहित थे। अन्तर मात्र इतना था कि उस काल में ये मौखिक रूप में थे। भाषा के विकास एवं छापेखाने के अविष्कार के साथ प्रिंट मीडिया को अपना आधार स्वरूप प्राप्त हुआ। पत्रकारिता वह विद्या है जिसके माध्यम से पत्रकार के कार्यों, कर्तव्यों और लक्ष्यों का विवेचन होता है। ज्ञान एवं विचारों को समीक्षात्मक टिप्पणियों के साथ शब्द एवं चित्र के माध्यम से जनजन तक पहुँचना ही पत्रकारिता है। यह समय के साथ समाज की दिग्दर्शिका और नियामिका है।

हेराल्ड बेंजामिन के अनुसार पत्रकारिता शिक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली माध्यम है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण अंग्रेजी शासन काल में महत्त्वपूर्ण भूमिका से मिलता है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय हिन्दी पत्रकारिता एक मिशन थी, इसका लक्ष्य राष्ट्रीय अस्मिता, एकता, अखंडता, स्वतन्त्रता एवं देश भक्ति के प्रति जनमानस को प्रेरित करना था। ब्रिटिश हुकूमत से भारत को आजाद करवाने के पवित्र कार्य में जहाँ एक ओर अहिंसावादी आन्दोलनकारी, क्रान्तिकारी, कवियों ने अपने प्राणों की परवाह न करते हुए सर्वस्व न्योछावर कर दिया। वहीं हिन्दी पत्रकारिता ने भी आजादी की अग्निशिखा को अनवरत प्रज्वलित रखने में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया। इस समय के अधिकांश पत्रकार स्वतन्त्रता संग्राम से जुड़े थे। जनमत सरंचना, शिक्षा जागरूकता की दिशा में पत्रकारों ने जिस निष्ठा से आजादी की लड़ाई के समय कार्य किया उनके इस निष्ठा भाव या देश के प्रति समर्पण दोनों को ही शब्दों मे बयान करना कठिन हैं।

भारत वर्ष के स्वतन्त्रता आन्दोलन की ध्वजवाहिका रही पत्रकारिता ने समाज में एक अच्छे मार्गदर्शक के रूप में कार्य कर पाठकों को स्फूर्ति प्रदान की। स्वतन्त्रता के महायज्ञ में पत्रकारिता के माध्यम से दी गई आहूतियाँ सतत स्मरणीय रहेगी। कहा जाता है कि पत्रकारिता जन भावनाओं की अभिव्यक्ति है। अकबर इलाहाबादी के शब्दों में -

खींचों न कमान, न तलवार निकालो।
जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।

हेराल्ड बेंजामिन के अनुसार पत्रकारिता शिक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली माध्यम है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण अंग्रेजी शासन काल में महत्त्वपूर्ण भूमिका से मिलता है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय हिन्दी पत्रकारिता एक मिशन थी, इसका लक्ष्य राष्ट्रीय अस्मिता, एकता, अखंडता, स्वतन्त्रता एवं देश भक्ति के प्रति जनमानस को प्रेरित करना था। ब्रिटिश हुकूमत से भारत को आजाद करवाने के पवित्र कार्य में जहाँ एक ओर अहिंसावादी आन्दोलनकारी, क्रान्तिकारी, कवियों ने अपने प्राणों की परवाह न करते हुए सर्वस्व न्योछावर कर दिया। वहीं हिन्दी पत्रकारिता ने भी आजादी की अग्निशिखा को अनवरत प्रज्वलित रखने में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया।

परतन्त्रता के समय में पत्रकारों ने अंग्रेजी सत्ता के फौलादी पंजों का मुकाबला अपने जोश पूर्ण लेखों व कविताओं के माध्यम से ही किया। बहुत से आर्थिक संकटों के बावजूद इस सशक्त माध्यम ने वैचारिक क्रान्ति उत्पन्न की और राष्ट्रीयता की ज्वाला को जगाये रखा। इन लेखकों में गणेश शंकर विद्यार्थी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ऐसा कहा जाता है कि अंग्रेज सरकार भी उनके लेखों से डरती थी। राष्ट्र कवि माखन लाल चुतर्वेदी कि पक्तियों **'मुझे तोड़ लेना वन माली उस पथ पर तुम देना फेंक मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक'** के माध्यम से जन-जन से स्वाधीनता हेतु प्राण दान करने की प्रबल पुकार की।

महादेवी के द्वारा कहे गये वाक्य ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में पत्रकारिता की भूमिका को और भी स्पष्ट कर दिया कि - **'पत्रकारों के पैरों के छालों से इतिहास लिखा जाता है।'** लेखकों, कवियों और पत्रकारों ने अपनी कलम के बल पर एक ऐसा माहौल तैयार किया, कि सम्पूर्ण देश मे अंग्रेजों के शोषण अन्याय एवं दमनकारी नीतियों के प्रति आक्रोश की भावना उत्पन्न हो गई। जब भी कोई लेख प्रकाशित होते तो ब्रिटिश सरकार का दमन-चक्र तेज हो जाता था। कानून एवं दमन का सहारा लेकर प्रकाशन बन्द करा देते थे। ऐसे प्रतिबन्धित काल में भूतिगत होकर, हस्तलिखित या साइक्लोस्टाइल पत्र प्रकाशित होते और सरकार के दमन का खुलकर विरोध किया जाता था। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसके प्रकाशन स्थल का पता सरकार कभी नहीं लगा पाई। आचार्य नरेन्द्र देव, बाबूराव, विष्णु पराड़कर आदि लोगों ने मुख्य रूप से कार्य कर देश में स्वतन्त्रता की ज्वाला को सक्रिय रखा। इन पत्रकारों के आदर्श तो महान थे परन्तु साधन सीमित थे। उन्हें न तो किसी प्रकार का संरक्षण प्राप्त होता था, न ही प्रोत्साहन। एक ही व्यक्ति लेखक, रिर्पोटर, प्रुफ रीडर, पैकर, प्रिन्टर सभी कार्य करता। वो समय ऐसा भी था कि लोग समाचार पत्र का दाम भी चुकाना नहीं चाहते थे ऐसे समय में लोगों की मनोवृत्ति में बदलाव अपनी लेखनी के माध्यम से किया गया लोगों को जागरूक कर, शिक्षित वर्ग को साथ जोड़ कर जन मानस के पटल पर आजादी के चित्र उकेरे गये। यही वो समय था जब से सूचना संचार क्रान्ति ने अपना प्रभुत्व स्थापित करना प्रारम्भ किया।

15 अगस्त 1867 को भारतेन्दु, हरिश्चन्द्र, ने नए युग की पत्रकारिता की शुरूआत की और काशी से 'कवि वचन सुधा' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया। अब तक ब्रिटिश सरकार कलम की तेजधार एवं क्रान्तिकारी सम्पादकों के तेवरों को अच्छी तरह समझ गई। सरकार समझ गई कि आने वाले समय में अखबार खतरा साबित हो सकते हैं। हिन्दी व क्षेत्रीय अखबारों पर नियन्त्रण बनाये रखने के लिये वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट बनाया गया। इसके तहत सम्पादकों पर भारी जुर्माना व जेल भेज देने की कार्यवाही ने जोर पकड़ा। **इस समय में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन काँटों की सेज से कम नहीं था। इसका स्पष्ट उदाहरण 'स्वराज' के सम्पादक पद हेतु छपे विज्ञापन से मिलता है कि 'चाहिये स्वराज के लिये एक संपादक, वेतन-दो सूखी रोटियाँ, एक गिलास ठंडा पानी और प्रत्येक सम्पादकीय के लिये दस साल जेल।'**

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वतन्त्रता आन्दोलन में पत्रकारिता ने सत्ता व जनता के बीच की सशक्त कड़ी के रूप में कार्य करते हुए सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया और जनसाधारण को इस संग्राम के लिये प्रेरित कर आजादी की अलख जगाने में सफलता प्राप्त की। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय जितनी भी पत्र-पत्रिकाएँ राष्ट्रीयता धारा में सम्मिलित हुई उन्होंने ब्रिटिश सरकार के समक्ष समर्पण नहीं बल्कि सामना किया। इसलिये पत्रकारिता को इस पुण्य कार्य से अलग करके नहीं देखा जा सकता है।

इनका योगदान सदैव स्वर्ण अक्षरों में चमकता रहेगा, समाचार पत्रों ने दमनकारी शासन के विरुद्ध जो साहस दिखलाया वह वर्तमान, भूत एवं भविष्य में आदर्श रूप में सदा स्थापित रहेगा और पीढ़ियाँ निश्चित रूप से इनकी ऋणी रहेंगी। ❑

(प्राध्यापक-भूगोल, निम्बार्क शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, उदयपुर)

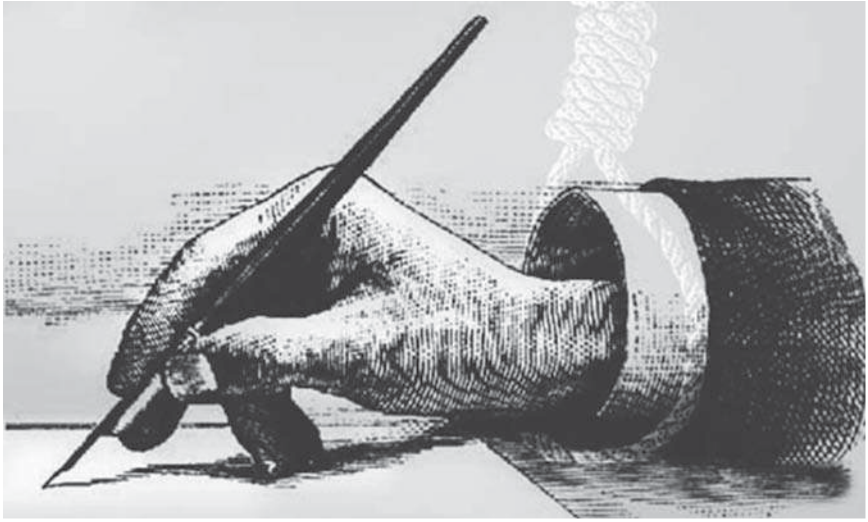

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में समाचार - पत्रों का योगदान

❑ श्रीमती अनीता मोदी

दादाभाई नौरोजी ने 'वॉयस ऑफ इण्डिया' के माध्यम से ब्रिटिश शासन की शोषणकारी नीतियों का पर्दाफाश किया। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने मराठा, केसरी समाचार-पत्र के माध्यम से देश के युवाओं में स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु जोश, उल्लास व उमंग का संचार किया। यही नहीं, लाला लाजपत राय (न्यू इण्डिया), अरविन्द घोष (वन्देमातरम्) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (बंगाली) व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (संवाद कौमुदी) आदि स्वतंत्रता सैनानियों ने भारत में स्वतंत्रता की जोत जगाने एवं अपने विचार जन-जन तक पहुँचाने हेतु समाचार-पत्रों का उपयोग किया।

किसी भी समाज या राष्ट्र की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रतिबिम्ब जनसंचार माध्यम होते हैं। जनसंचार के विभिन्न माध्यमों में समाचार-पत्र अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। समाचार-पत्रों की प्रभावी महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए ही इनको 'लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ' माना गया है।

भारत जैसे विकासशील देश में समाचार -पत्र व्यापक जनसंख्या तक विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित विचारों, समस्याओं व जन भावनाओं को संप्रेषित करने का सुगम एवं सस्ता माध्यम है। समाचार -पत्र मानव के दृष्टिकोण एवं उनके आचार, विचार, व्यवहार को प्रभावित करने एवं उनको परिवर्तित करने के सशक्त माध्यम हैं।

विश्व के विभिन्न भागों में हुई सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक क्रांतियों में समाचार पत्रों की भूमिका सराहनीय व महत्त्वपूर्ण साबित हुई है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भी भारतीय समाचार-पत्रों का योगदान अभूतपूर्व व अविस्मरणीय रहा है। हमारे देश के विभिन्न स्वतंत्रता सेनानियों एवं समाज-सुधारकों ने जन जागरण एवं जन-भावना को उद्वेलित करने हेतु समाचार-पत्रों का उपयोग वृहद्- स्तर पर किया। नि:संदेह रूप से, समाचार-पत्र देश विदेश में विचारों के आदान-प्रदान के आधार पर स्वतंत्रता-संग्राम की अलख जगाने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए।

भारत में प्रथम छापाखाना कलकता के पास श्रीरामपुर में ब्रिटिश मिशनरियों द्वारा स्थापित किया गया। प्रथम समाचार-पत्र 'इण्डिया गजट' का प्रकाशन 1774 में सरकार द्वारा किया गया। हिन्दी भाषा में पहला समाचार-पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' था जिसने 1826 में साम्राज्यवादी नीतियों व शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर भारतीय जनता को आगाह करने का प्रयास किया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के साप्ताहिक समाचार पत्र 'सोम प्रकाश एवं हरिश्चन्द्र मुखर्जी' के द्वारा प्रकाशित 'हिन्दू पेट्रियट' पत्रों में निरन्तर रूप से राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत लेख प्रकाशित होते थे। 1877 में केवल

बंबई प्रेसीडेन्सी में 62 समाचार पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया था, इन समाचार पत्रों ने राष्ट्रीय प्रेम व भावना का प्रचार प्रसार करने में महती भूमिका का निर्वहन किया।

भारत के स्वाधीनता संघर्ष में राजा राममोहन राय के समाचार पत्रों का योगदान भी उल्लेखनीय रहा है। इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए भारत के क्रांतिकारी नेता विपिन चन्द्र पाल ने कहा कि 'राजा साहब प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने भारत में स्वंतत्रता का संदेश प्रसारित किया।' राजा राममोहन राय ने तीन पत्रिकाओं 'संवाद कौमुदी, मिरास-उल-अखबार तथा ब्रह्ममेनिकल मैगजीन' के माध्यम से अखिल भारतीय स्तर पर देश भक्ति की भावना का संचार किया। इसी देशभक्ति-भावना के बदौलत देशभक्तों ने स्वाधीनता प्राप्ति के लिये हँसते-हँसते अपने प्राणों की कुर्बानी दी। इसी भांति, केशवचन्द्र सेन ने 'इण्डियन मिरर' नामक एक पाक्षिक पत्र के माध्यम से राष्ट्रीय भावना का प्रचार करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। दादाभाई नौरोजी ने 'वॉयस ऑफ इण्डिया' के माध्यम से ब्रिटिश शासन की शोषणकारी नीतियों का पर्दाफाश किया। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने मराठा, केसरी समाचार-पत्र के माध्यम से देश के युवाओं में स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु जोश, उल्लास व उमंग का संचार किया। यही नहीं, लाला लाजपत राय (न्यू इण्डिया), अरविन्द घोष (वन्देमातरम्) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (बंगाली) व भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (संवाद कौमुदी) आदि स्वतंत्रता सैनानियों ने भारत में स्वतंत्रता की जोत जगाने एवं अपने विचार जन-जन तक पहुँचाने हेतु समाचार-पत्रों का उपयोग किया। इसी भांति, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी 'यंग इण्डिया' एवं 'हरिजन' समाचार पत्रों के माध्यम से ब्रिटिश शासन की शोषणकारी व दमनकारी नीतियों, कूटनीतियों को उजागर करके सम्पूर्ण देश में स्वतंत्रता की लहर उत्पन्न करने में सफल हुए।

विडम्बना है कि उस जमाने में भी कुछ समाचार पत्र 'मद्रास मेल', 'टाइम्स ऑफ इण्डिया', 'स्टेट्समैन' आदि थे जिन्होंने ब्रिटिश हुकुमत का साथ दिया था। उन समाचार पत्रों का जवाब देने के लिये 1886 मे अमृत बाजार पत्रिका का प्रकाशन राष्ट्र भक्त शिशिर कुमार घोष व मोती लाल घोष द्वारा किया गया।

राजस्थान के जनमानस में भी राष्ट्रीयता के बीज अंकुरित करने में समाचार-पत्रों की महती भूमिका रही। राष्ट्रीयता के विकास-विस्तार में समाचार-पत्रों के योगदान को दृष्टिगत रखते हुए राजनीति विचारकों एवं समाज सुधारकों ने समाचार पत्रों के प्रकाशन की व्यवस्था मुख्य तौर पर अजमेर में की। अजमेर से देश हितैषी, राजस्थान केसरी, परोपकार, जगहितकारक, राजस्थान समाचार, राजस्थान टाइम्स व राजस्थान गजट आदि समाचार-पत्र प्रकाशित होने लगे। इन समाचार-पत्रों में ब्रिटिश सरकार की छल-कपट पर आधारित दोषपूर्ण शासन प्रणाली, ब्रिटिश साम्राज्य के निर्मम अत्याचारों व नरेशों की निष्क्रियता आदि की आलोचना की गई। जिसकी वजह से भारतीय जनता में ब्रिटिश शासन व राजा-महाराजाओं के अत्याचारों के प्रति घृणा, द्वेष व नफरत की भावनाएँ पनपने लगी और जनमानस में ब्रिटिश शासन व्यवस्था को परिवर्तित करने की भावना प्रबल हो गई। श्री जयनारायण व्यास ने 1936 में अखिल भारतीय देशी परिषद् के महामंत्री पद के लिए निर्वाचित होने के पश्चात् 'अखण्ड भारत' नामक समाचार पत्र का सम्पादन प्रारम्भ किया किन्तु आर्थिक कारणों की वजह से उसको बंद करना पड़ा। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि बीकानेर नरेश महाराव गंगासिंह के द्वारा गुमनाम आर्थिक सहायता के अनुरोध को भी व्यास जी ने अस्वीकार कर दिया। व्यास जी ने 'राजस्थान हैराल्ड के माध्यम से राष्ट्रीयता का बीज अंकुरित करने व प्रस्फुटित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

इन समाचार पत्रों को अपना कर्तव्य निभाने में अनेक कठिनाइयों के दौर से गुजरना पड़ा। समाचार-पत्रों की इस बहुआयामी भूमिका को देखते हुए ब्रिटिश शासन ने प्रेस पर कठोर प्रतिबंध लगाये तथा उनके संचालकों को अराजक घोषित करने की निर्मम कार्यवाही भी की। यही नहीं, देश में समाचार - पत्रों की देश भक्ति भावना जागृत करने, युवा पीढ़ी के विचारों को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान को दृष्टिगत रखत हुए ब्रिटिश सरकार ने 1878 मे वर्नाक्यूलर प्रेस अधिनियम पारित करके समाचार-पत्रों पर नियंत्रणों की लगाम कस दी। इस अधिनियम का काफी विरोध हुआ व कड़ी निन्दा की गई एवं अन्ततः इसे निरस्त करना पड़ा।

इन सबके उपरान्त भी समाचार-पत्रों द्वारा उत्पन्न किये गये जन उभार, जन-भावनाओं ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। सटीक ही कहा गया है कि कलम की ताकत तलवार से अधिक होती है। कलम की अपरिमित शक्ति के कारण ही हम आज स्वतंत्र वातावरण में सांस ले रहे हैं, स्वतंत्र नीतियों का अनुकरण कर रहे हैं, स्वतंत्र आकाश में विचरण कर रहे हैं, देश का स्वतंत्र अस्तित्व हैं, देश स्वतंत्र विचारों व दृष्टिकोण से लैस हैं। ❑

(सह आचार्य, अर्थशास्त्र,
राजकीय (पी.जी.) कॉलेज, खेतडी, राजस्थान)

ब्रह्म समाज और आर्य समाज का शैक्षिक योगदान

शिक्षा संस्कारवान बनाती है, यह सर्व विदित भी है, और सर्वथा सत्य भी। वस्तुतः शिक्षा ही व्यक्ति के जीवन में चेतना को जगाती है। जिससे वह रूढ़िवादिता से निकलकर गतिशील और ऊर्जावान बनता है। भारत में शिक्षा का जो वर्तमान स्वरूप है, तथा शिक्षा ने भारत में जो विकास किया है उसके पीछे एक लंबा इतिहास रहा है। कई समाज सुधारकों के योगदान से भारत में शिक्षा ने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त किया है। हम शिक्षा में ब्रह्म समाज और आर्य समाज के योगदान की चर्चा कर रहे हैं।

❑ श्रीमती दीप्ति चतुर्वेदी

शिक्षा संस्कारवान बनाती है, यह सर्व विदित भी है, और सर्वथा सत्य भी। वस्तुतः शिक्षा ही व्यक्ति के जीवन में चेतना को जगाती है। जिससे वह रूढ़िवादिता से निकलकर गतिशील और ऊर्जावान बनता है। भारत में शिक्षा का जो वर्तमान स्वरूप है, तथा शिक्षा ने भारत में जो विकास किया है उसके पीछे एक लंबा इतिहास रहा है। कई समाज सुधारकों के योगदान से भारत में शिक्षा ने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त किया है। हम शिक्षा में ब्रह्म समाज और आर्य समाज के योगदान की चर्चा कर रहे हैं।

शिक्षा के विकास में ब्रह्म समाज का योगदान

ब्रह्म समाज की स्थापना राजा राम मोहन राय द्वारा 1828 में की गई। शिक्षा के क्षेत्र में राजा राममोहन राय के नेतृत्व में ब्रह्म समाज ने पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के महत्त्व को समझा और शिक्षा के लिए पाश्चात्य पद्धति का पूर्ण समर्थन किया। ब्रह्मसमाज ने विभिन्न स्थानों पर स्कूल और शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की, 'राजा राममोहन राय' पाश्चात्य उदारवादी प्रजातांत्रिक संस्कृति के समर्थक थे।

मुगल काल के अंतराल में जो शिक्षण संस्थाएँ अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर थीं। राजा राममोहन राय के समय में अपना गौरव खो चुकी थीं और निरंतर अवनति की ओर अग्रसर हो रही थीं। उच्च शिक्षण संस्थाओं में अरबी-फारसी और संस्कृत के माध्यम से जो उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थी। वह भी परंपरागत रूढ़ियों के ढाँचे में बंधी हुई थी, और छात्रों को कट्टरपंथी संकुचित और सीमाओं में बाँधे रखती थी। यह शिक्षा विद्यार्थियों के समय अनुकूल वास्तविक विकास में बाधक थी। राजा राममोहन राय तात्कालिक प्रचलित शिक्षा पद्धति की दयनीय स्थिति व दोषों से परिचित थे। वे महान शिक्षा शास्त्री थे और भारतीय शिक्षा और साहित्य के प्रति पर्याप्त निष्ठा रखते थे फिर भी शिक्षा के संदर्भ में उनके विचार क्रांतिकारी थे।

राजा राममोहन राय ने अनुभव किया कि यदि देश को प्रगति के पथ पर ले जाना है, तो एक ऐसा जनमत तैयार करना होगा जो प्रगतिशील विचारों को समझे और उसका विस्तार करे इसके लिए उन्होंने शिक्षा व्यवस्था की प्रचलित पद्धति को बदलने के प्रयास किए। विद्यालयों में गणित, इतिहास, भूगोल, भौतिक शास्त्र, जीव शास्त्र, बिल्कुल भी नहीं पढ़ाया जाता था। कुछ लोग विज्ञान को पढ़ने पढ़ाने को ही पाप समझते थे। राजा राममोहन राय का विश्वास था कि पश्चिमी शिक्षा तथा विज्ञान के बिना भारत संसार से पीछे रह जाएगा। इसीलिए उन्होंने भारत में अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी विज्ञान को जारी रखने के प्रयास किए और उन्हें इस क्षेत्र में सफलता भी मिली। यद्यपि राजा राममोहन राय पाश्चात्य जगत के स्वतंत्रता पूर्ण विचारों के लिए अंग्रेजी के ज्ञान को आवश्यक मानते थे। परंतु उन्होंने भारतीयों को प्राचीन धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन की सलाह भी दी।

आधुनिकता की चाह में राजा राममोहन राय अपनी मातृभूमि की गरिमा को कभी नहीं भूले। उनके कॉलेज में विज्ञान और अंग्रेजी के अतिरिक्त बंगाली और संस्कृत भाषा भी पढ़ाई जाती थी। राजा राममोहन राय ने बंगाल में बंगला को बौद्धिक संपर्क का माध्यम बनाने के लिए सदैव उत्सुकता दिखाई। उन्होंने एक बंगला व्याकरण की रचना भी की। राजा राममोहन राय ने कोलकाता में वेदांत कॉलेज के साथ ही हिंदू कॉलेज और इंग्लिश स्कूल भी खोले। उनके द्वारा स्थापित हिंदू कॉलेज ने भारत के पुनर्जागरण में सराहनीय योगदान दिया। राजा राममोहन राय स्त्रियों की शिक्षा के भी समर्थक थे। ब्रह्म समाज में युवतियाँ भी शिक्षा प्राप्त करती थीं। वे स्त्रियों को समान अधिकार दिलाना चाहते थे।

आधुनिकता वाद के प्रवर्तक राजा राममोहन राय ने पश्चिमी शिक्षा के मूल्य और

महत्त्व को समझा उन्होंने सरकार से अनुरोध किया कि भारत को और अधिक उदार और ज्ञानवर्धक शिक्षा प्रणाली दें, जिसमें अंकगणित, प्राकृतिक दर्शन, रसायन शास्त्र, शरीर विज्ञान और अन्य उपयोगी विज्ञानों की शिक्षा हो। उन्होंने स्वयं अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना की तथा नई और उदार शिक्षा का मार्ग प्रशस्त किया। राजा राममोहन राय ने पश्चिमी शिक्षा के लिए अच्छे अध्यापकों को प्राप्त करने के लिए मिशनरियों से भी बातचीत की। राजा राममोहन राय ने घोषणा की कि शिक्षा की प्राचीन पद्धति को जारी रखने का तात्पर्य अंधविश्वास और अंधकार की कालजयी प्रामाणिकता को जारी रखना है। उनके अनुसार एक उदारवादी पाश्चात्य शिक्षा ही हमें अज्ञानता के अंधकार से निकाल सकती है। और भारतीयों को देश के प्रशासन में भाग दिला सकती।

शिक्षा के विकास में आर्य समाज का योगदान

19वीं शताब्दी में पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली में भारतीयों की सभ्यता और संस्कृति को हीन बनाने में व्यापक रूप से सहयोग दिया। पाश्चात्य शिक्षा व संस्कृति के निकट संपर्क में रहकर भारतीय अपने धर्म संस्कृति को हीन भावना से देखने लगे थे। जिस प्राचीन दार्शनिक आधार शिला पर भारतीय समाज के जीवन रूपी भव्य भवन को स्थापित किया गया था, उसे लोग निरर्थक मानने लगे और नवीन पाश्चात्य जीवन उनका मार्गदर्शक बन गया। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने अंग्रेजी शिक्षा के स्कूलों पर प्रभाव का अवलोकन किया तथा उसे भारतीय समाज के पराभव का प्रमुख कारण स्वीकार किया। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली की और नैतिक और धार्मिक भावनाओं के प्रसार को अवरुद्ध करने तथा भारतीयों को भारतीय संस्कृति पर आधारित नैतिकता व धार्मिकता युक्त शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से उन्होंने आर्य समाज की 1875 में मुंबई में स्थापना की। दयानंद सरस्वती चाहते थे कि राष्ट्रीय शिक्षा की विचारधारा भारतीयों को प्रदान की जाए इसी विचारधारा के अनुसार उन्होंने कई शिक्षण संस्थाएँ प्रारंभ कीं, जो शुरू में असफल रही परंतु कालांतर में उन्हें सफलता मिली। महर्षि दयानंद की विचारधारा को साकार करने के लिए आर्य समाज ने राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार करके देशवासियों को राष्ट्रीय भावना से अवगत कराया।

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती एक समाज सुधारक, साधु, संन्यासी और योगी थे, न कि शिक्षा शास्त्री। परंतु वे संस्कृत साहित्य के अद्वितीय विद्वान थे। भारतीय दर्शन के पांडित्य पूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण होने के कारण उनका शिक्षा संबंधी ज्ञान अत्यंत मौलिक था। उन्होंने अपने शिक्षा संबंधी विचारों को अपने ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में अभिव्यक्त किया। शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी दयानंद सरस्वती प्राचीन वैदिक परंपरा के पोषक थे, अत: उन्होंने वैदिक पाठशालाओं की स्थापना के प्रयास किए। आर्य समाज द्वारा स्थापित गुरुकुलों ने वैदिक शिक्षा पद्धति का प्रसार किया। इस गुरुकुल पद्धति ने प्राचीन भारतीय शिक्षा के आदर्शों का प्रसार किया तथा विद्यार्थियों में ब्रह्मचर्य, सादा जीवन और उच्च विचार तथा शिक्षकों और विद्यार्थियों में पिता-पुत्र तुल्य संबंध आदि गुणों का विकास किया। गुरुकुल प्रणाली ने प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा आधुनिक विज्ञान का समन्वय किया। विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, देशभक्ति की भावनाओं का विकास आत्मनिर्भरता, कठिन परिश्रम, सहयोगी जीवन, आध्यात्मिक जागृति, समाजसेवा, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों आदि गुणों का विकास किया। गुरुकुलों का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान भेदभाव रहित शिक्षा प्रणाली है।

आर्य समाज वस्तुतः शिक्षा, समाज सुधार और राष्ट्रीयता का आंदोलन था। स्वामी दयानंद सरस्वती एक संघर्षशील समाज सुधारक और विचारक विद्वान थे। शिक्षा के प्रसार और वृद्धि से, आर्य समाज ने भारत में क्रांति ला दी। आर्य समाज ने ही राष्ट्रभाषा हिंदी को मान्यता देने के लिए स्वभाषा और जाति के स्वाभिमान को जगाया। उन्होंने 19वीं शताब्दी में हिंदू धर्म में व्याप्त रूढ़ियों अंधविश्वासों का खंडन कर वैदिक धर्म की स्थापना की। 19वीं शताब्दी में भारत में संस्कृत का अध्ययन अध्यापन नाम मात्र को होता था, आर्य समाज ने देशभर में जगह-जगह हजारों गुरुकुल खोलकर आर्ष व्याकरण, पाणिनी की अष्टाध्यायी, महर्षि पतंजलि के महाभाष्य और महर्षि यास्क के निरुक्त पर आधारित व्याकरण का अध्ययन-अध्यापन कराया। जिससे संस्कृत और वैदिक साहित्य के अपूर्व विद्वानों ने जन्म लिया।**आर्य समाज द्वारा देश भर में डीएवी कॉलेजों की भी स्थापना की गई। अभिवादन रूप में जिस 'नमस्ते' शब्द का प्रचलन है, जो वर्तमान में भारतीयों की पहचान है इसका प्रचलन भी आर्य समाज द्वारा ही किया गया।**

इस प्रकार स्वामी दयानंद सरस्वती ने पाश्चात्य शिक्षा के दुष्प्रभाव से देशवासियों की रक्षा के लिए भारतीय संस्कृति पर आधारित शिक्षा प्रणाली को अपनाने पर बल दिया उनकी विचारधारा देशवासियों को धर्म एवं नैतिकता प्रदान करने वाली तथा राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण बनाने वाली थी। ❑

(सहायक आचार्य -राजनीति विज्ञान, राजकीय बांगड स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पाली)

स्वतंत्रता पूर्व शिक्षा का स्वरूप एवं परिणाम

❑ बजरंग प्रसाद मजेजी

भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था बहुत सम्पन्न थी। शिक्षा संस्थाओं पर किसी प्रकार का राजनीतिक दबाव नहीं था। वे स्वतंत्र एवं स्वायत थीं। आचार्य निर्भय थे। बालकों के चरित्र निर्माण कार्य इन संस्थाओं में किया जाता था। प्राचीन भारतीय शिक्षा आदर्श शिक्षा थी। तत्कालीन शिक्षा प्रणाली द्वारा बालक बुद्धिमान तथा विद्यावान तो होते ही थे, साथ-साथ तेजस्वी एवं चरित्रवान भी होते थे। शिक्षा पद्धति में श्रवण, मनन, ग्रहण करने के साथ शंका समाधान, तर्क वितर्क, प्रयोग, ज्ञानार्जन के प्रमुख अंग माने जाते थे। आचार्य शिष्यों के प्रति व्यक्तिगत ध्यान देते थे। सभी वर्णों के लोग शिक्षा ग्रहण करते थे। 5वीं शताब्दी में चीनी यात्री फाह्यान ने और सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग भारत आये थे। उन्होंने भारत के अनेकों शिक्षा केन्द्रों का अवलोकन कर इसकी पुष्टि की तथा लिखा कि स्त्रियों के लिए भी शिक्षा के द्वार खुले हुए थे। वैदिक काल में गुरुकुलों, आश्रमों में शिक्षा दी जाती थी। जीवनोपयोगी सभी विषयों के साथ शास्त्रविद्या, वैदिक साहित्य का ज्ञान दिया जाता था।

मध्ययुगीन शिक्षा व्यवस्था

मध्ययुग में भारत पर मुसलमान आक्रमणकारियों ने यहाँ के लोगों की राष्ट्रीय भावना नष्ट करने का प्रयास किया। भारत के श्रद्धा और अस्मिता केन्द्रों पर हमले किये गए। सांस्कृतिक केन्द्रों को नष्ट करने के प्रयास किये गये। शिक्षा केन्द्रों पर आधिपत्य कर शिक्षा व्यवस्था में हस्तक्षेप किया। नालन्दा (बिहार), तक्षशिला (पंजाब), विक्रमशिला, बल्लभी, ओदंतपुरी (अवध) नदिया (बंगाल) जगदाता (बंगाल), अमरावती (महाराष्ट्र) सारनाथ, वाराणसी, कांची (मद्रास) जयेन्द्र विहार (काश्मीर) आदि शिक्षा केन्द्रों को नष्ट किया गया। धर्म ग्रन्थों को जलाया गया। मठों और आश्रमों का नामोनिशान मिटा दिया गया। शिक्षा के लिए मकतब और मदरसे खोले गये। इनका उद्देश्य केवल इस्लाम का प्रचार करना था। मकतबों में प्रवेश चार वर्ष चार महिने चार दिन के बालक को 'बिस्मिल्लाह' संस्कार किया जाता था तथा इस्लामी शिक्षा दी जाती थी। मुगल शासन काल में स्त्रियों को भी शिक्षा दी जाती थी। लेकिन उनके लिए अलग मकतब होते थे। इस काल में कुछ विदुषी- रजिया सुल्तान, गुलबदन, सुलताना खालिया, नूरजहाँ, मुमताजमहल, जहाँआरा, जेबुन्निसा आदि विख्यात हुई हैं।

भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था बहुत सम्पन्न थी। शिक्षा संस्थाओं पर किसी प्रकार का राजनीतिक दबाव नहीं था। वे स्वतंत्र एवं स्वायत थीं। आचार्य निर्भय थे। बालकों के चरित्र निर्माण कार्य इन संस्थाओं में किया जाता था। प्राचीन भारतीय शिक्षा आदर्श शिक्षा थी। तत्कालीन शिक्षा प्रणाली द्वारा बालक बुद्धिमान तथा विद्यावान तो होते ही थे, साथ-साथ तेजस्वी एवं चरित्रवान भी होते थे। शिक्षा पद्धति में श्रवण, मनन, ग्रहण करने के साथ शंका समाधान, तर्क वितर्क, प्रयोग, ज्ञानार्जन के प्रमुख अंग माने जाते थे। आचार्य शिष्यों के प्रति व्यक्तिगत ध्यान देते थे। सभी वर्णों के लोग शिक्षा ग्रहण करते थे।

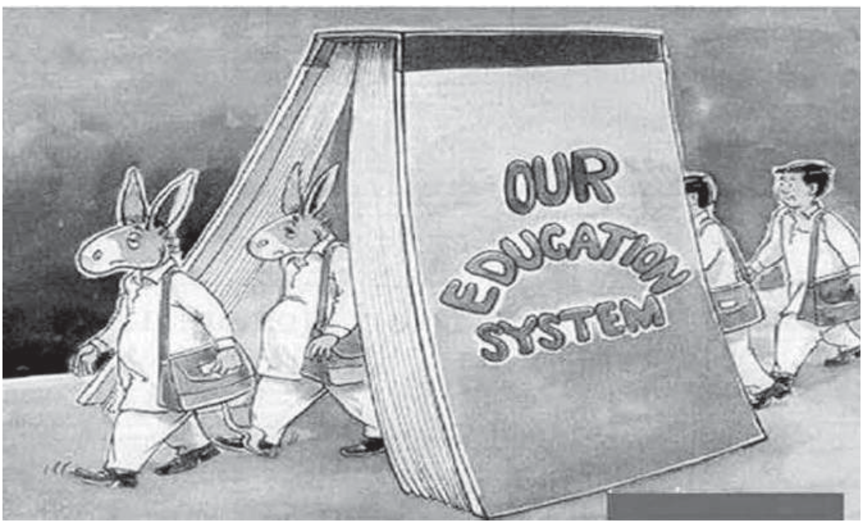

महिलाओं ने उर्दू, अरबी, फारसी में शिक्षा प्राप्त की थी। मुगलकाल में उच्च शिक्षा मदरसों में दी जाती थी ये प्रायः नगरों में होते थे। दिल्ली, आगरा, जयपुर, अजमेर, लखनऊ, जौनपुर, रायपुर, देवबन्द, फिरोजाबाद, जालंधर, अहमदनगर, मालवा, हैदराबाद, बीजापुर, गोलकुण्डा, गुलबर्गी, मुर्शिदाबाद में थे। मुगलकाल में शिक्षा केन्द्रों के नष्ट करने के बावजूद हर गाँव में पाठशालाएँ थी अनौपचारिक शिक्षा पद्धति से भी शिक्षण होता था। जातिगत परम्परागत व्यवसाय विरासत में अगली पीढ़ी को दिया जाता था।

ब्रिटिश पूर्व भारतीय शिक्षा

ई.सं. 1600 में ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना हुई। सन् 1765 में हिन्दुस्तान में अंग्रेजों का शासन प्रारम्भ हुआ। **ईस्ट इंडिया कम्पनी ने हिन्दुस्तान के कर्मचारियों के लिए अधिनियम तैयार किया। इसके अन्तर्गत शिक्षा व्यवस्था का उत्तरदायित्त्व उन्होंने स्वीकार किया। यह कार्य उन्होंने ईसाई मिशनरियों को दिया। उनका असली उद्देश्य भारत के लोगों को मात्र साक्षर बनाना, अंग्रेजी पढ़ाकर नौकर बनाना और उनका राष्ट्रीयत्त्व खत्म करना हेतु था। इस सम्बन्ध में अर्ब ऑफ रोनाल्डसे ने निम्न शब्दों में कहा कि ''इस शिक्षा के परिणाम स्वरूप प्राचीन भारतीय ज्ञान लुप्त हुआ। प्राचीन संस्कृति परम्पराओं को नकार कर प्राचीन वैदिक धर्म को तिरस्कृत किया गया।** हिन्दुस्तान का पारम्परिक जीवन अंधविश्वासों का पोषण करने वाला है, ऐसा कहकर जनता को गुमराह करना प्रारम्भ किया गया।'' ब्रिटिशों और ईसाई मिशनिरयों द्वारा किये गये गलत प्रचार और तथाकथित जनहित के ओढ़े मुखौटों से अच्छे-अच्छे लोग धोखा खा गये। हिन्दुस्तान में ईसाई बनाने की नीति के अन्तर्गत 1813 में ब्रिटिश हाऊस ऑफ कामन्स में 'इंडिया चार्ल्स बिल' लाया गया। विलियम विल्बर फोर्स ने 28 जून तथा 18 जुलाई 1813 को चर्चा कर भारत में ईसाई धर्म प्रचार का विस्तृत कार्य विवरण प्रस्तुत किया। इसमें भारत की परम्पराओं को विकृत मानसिकता बताते हुए सती प्रथा, बहु पत्नी तथा बलिदान के संबंध में भ्रामक आँकड़े बढ़ा-चढ़ा कर, हिन्दुओं की उपासना पद्धति के बारे में अनुचित घटिया बातें प्रस्तुत की। भारतीय संस्कृति की निन्दा कर, भारतीय परम्पराएँ किस तरह भ्रम मूलक, अज्ञान मूलक और विक्षिप्त हैं- इसे लेकर लेखन किया गया।

ब्रिटिश की शिक्षा संबंधी नीति

ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद गवर्नर माउंट स्टुअर्ट एल फिंस्टन ने 1820-23 में देशी शिक्षा संबंधी जानकारी प्राप्त की और लिखा है कि 'हमारे सम्पूर्ण राज्य में ऐसा कोई छोटा बड़ा देहात नहीं है, जहाँ पाठशाला न हो। बड़े देहातों में तो एक से अधिक पाठशालाएँ हैं।' उन्हीं दिनों 1822 में मद्रास प्रेसीडेंसी के गवर्नर सर टॉमस मुनरो ने प्रत्येक जिला कलेक्टर से देशी शिक्षा प्रणाली के बारे में सम्पूर्ण जानकारी एकत्र की, जिसमें उनके 20 जिलों (वर्तमान उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडू) में उडिया, कन्नड़, मलयालम, तेलगु, तमिल भाषा में शिक्षण होता था। हिन्दुस्तान में प्रचलित शिक्षा को सुदृढ़ एवं गुणवत्ता वृद्धि के प्रयास किये जायें अथवा पाश्चात्य विद्या का प्रचार किया जाए इस संबंध में मतभेद रहा। इसी बीच 10 जून 1834 को लार्ड मैकाले गवर्नर जनरल की कौंसिल का कानूनन सदस्य बनकर भारत आये। वह ईसाईकरण के पक्ष में था। उसकी राय थी कि भारत पर ब्रिटिशों का साम्राज्य स्थापित हो। उसने 1834 में लार्ड विलियम बैंटिंग को शिक्षा नीति के संबंध में टिप्पणी प्रस्तुत की वह 'मैकालेज मिनिटस' के नाम से प्रसिद्ध है। इसे स्वीकार किया गया। इसके अनुसार ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य यूरोपीय साहित्य और विज्ञान से हिन्दुस्तान की जनता को परिचय करवा कर उसका प्रचार करे। इस पर व्यय ईस्ट इंडिया

कम्पनी वहन करेगी। मैकाले शिक्षा मसौदे पर सन् 1835-38 में चर्च से निष्कासित पादरी विलियम एडम के माध्यम से सर्वेक्षण कराया गया, जिसको अंतिम रूप देकर क्रियान्वयन किया गया। ब्रिटिश संसद में 1833-1853 के चार्टर एक्टों पर विचार करते समय भारत के लिए विस्तृत शिक्षा नीति 'मैकाले शिक्षा नीति' को लागू किया। इसका प्रमुख उद्देश्य अंग्रेजी शिक्षा देकर नौकरी देना था। इस शिक्षा नीति का उद्देश्य था कि भारतीय जनता जो कि धर्म परायण और परम्परावादी है उनमें विभेद कर स्वभाषा, स्वधर्म, स्वदेश के प्रति निंदक बनाने का कार्य किया जाये। मैकाले ने अपने पिता को लिखे पत्र (12 अक्टूबर 1836) में लिखा कि - जो शिक्षाक्रम मैंने शुरू किया है वह आगे वैसे ही चलता रहा तो अगले 30 वर्षों में बंगाल में एक भी हिन्दू बचेगा नहीं, सभी ईसाई बन जायेंगे। यदि कुछ बचेंगे तो वे केवल नाम मात्र के हिन्दू बचेंगे। उनका वेदों और धर्म पर विश्वास नहीं रहेगा। मैकाले ने यहाँ के प्रचलित शिक्षा केन्द्रों को बन्द करने, परम्परागत शिक्षण प्रक्रिया को नष्ट करने की नीति बनाई। मैकाले की शिक्षा नीति के मुख्य तीन उद्देश्य थे- भारतीयों का पश्चिमीकरण करना, उन्हें उनकी सांस्कृतिक परम्पराओं से तोड़ना, राष्ट्रीय भावना का दमन करना।

ब्रिटिश पूर्व भारतीय शिक्षा केन्द्र की स्थिति

महात्मा गाँधी ने कहा था कि हिन्दुस्तान की शिक्षा परम्परा का 'रमणीय वृक्ष' ब्रिटिश शासन ने नष्ट कर दिया। सन् 1820-22 तक ईसाई मिशनरी विल्यिम एडम ने 25 लेख प्रकाशित किये। पी.डब्ल्यू. लिटनर ने भी अनौपचारिक सर्वेक्षण की जानकारी दी है जिसमें बंगाल, बिहार में एक लाख पाठशालाएँ अस्तित्व में बताई। जी.एल. प्रेन्डरगस्ट नामक वरिष्ठ अधिकारी ने कहा है कि - 'हमारे सम्पूर्ण राज्य में ऐसा कोई छोटा या बड़ा देहात नहीं है जहाँ एक भी पाठशाला न हो। सर टॉमस मुनरो ने 1826 में विस्तृत टिप्पणी में बताया कि उसके शासन क्षेत्र में 12498 पाठशालाएँ थी, जिसमें 1,88,650 छात्र उस समय पढ़ते थे। इसके अतिरिक्त घरों में पढ़ने वालों की संख्या 5 गुना थी। विलियम एडम ने बंगाल और बिहार में एक लाख से अधिक पाठशाला का अनुमान लगाया। उच्च शिक्षा व्यवस्था भी प्रचलित थी। बंगाल के प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र नदिया कॉलेज में 1,100 विद्यार्थी तथा 150 अध्यापक थे। मद्रास प्रेसीडेंसी में 1101 महाविद्यालयों में 5431 विद्यार्थी। राजमहेन्द्री में 279 महाविद्यालय चल रहे थे जिनमें दूर-दूर से छात्र पढ़ने आते थे। त्रिचनापल्ली में 173 नैल्लोर में 137 तंजीर में 109 महाविद्यालयों में 5431 विद्यार्थी पढ़ते थे। बम्बई प्रेसीडेंसी के अहमदनगर में 16, पूना में 222 उच्च शिक्षा विद्यालय थे।'

ब्रिटिशर्स की शिक्षा नीति के परिणाम

ब्रिटिश शासन और उनकी शिक्षा नीति का हिन्दुस्तान के सामाजिक जीवन पर बहुत अहितकारी परिणाम हुआ। भारत की जनता सदैव गुलाम बनी रहे, ऐसा प्रयास किया गया। उनकी शैक्षणिक प्रक्रिया से यहाँ के शिक्षित लोगों पर असर हुआ। वे अपने समाज से अलग होने लगे। संक्षेप में ब्रिटिश शिक्षा नीति के निम्न परिणाम हुए -

- यहाँ की समाज रचना में जाति का स्थान तथा आपसी संबंधों में स्तरीय ऊँच-नीच के भावों को ध्यान में रखकर विभिन्न जाति-समाजों में दुश्मनी पैदा का प्रयास किया।
- सामाजिक भावना का लोप हुआ। नव शिक्षितों में अपने समाज बन्धुओं के प्रति सामाजिक भावना का लोप हुआ। उनके सुख दुख से सरोकार रखना कम हुआ। हिन्दुस्तान अपना देश है, यह भावना कम होने लगी।
- नव शिक्षितों को नौकरी दी गई, अन्य बेरोजगार हो गए।
- परम्परागत कृषि क्षेत्र की उपेक्षा हो गई। लोग नौकरी की ओर आकृष्ट होने लगे। माना जाने लगा- श्रेष्ठ नौकरी, मध्यम व्यापार, कनिष्ट कार्य कृषि।
- धर्म पर आस्था कम होने लगी, मूर्ति भंजन की प्रक्रिया शुरू हुई। मानवीय व्यवहार में नैतिकता का लोप हुआ। यहाँ के देशवासी हमारे भाई हैं यह भावना कम होने लगी, इसका लाभ अंग्रेजों ने उठाया।
- हिन्दुस्तान के इतिहास को बेहद गलत और झूठी जानकारी देने वाला बताया और इतिहास का पश्चिमीकरण किया गया। हिन्दुस्तान के विरोध में इतिहास लिखा जाने लगा।
- सामाजिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। जातियों में गुटों का निर्माण हुआ। जीवन श्रद्धाहीन तथा मूल्य विहीन हुआ। भारत की प्राचीन परम्पराओं के प्रति अनादर की भावना पैदा होने लगी।
- प्राच्य विद्या के ब्रिटिश अध्येताओं ने हिन्दुओं के पुराणों, दिव्य कथाओं, वेदों, धार्मिक आख्यानों, देवी देवताओं का उपहास करना प्रारंभ कर दिया।
- अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र स्थापित कर, वेतनभोगी शिक्षकों की नियुक्ति की गई। शिक्षक कर्मचारी बन गए। पाठ्यपुस्तकों में तथ्यात्मक परिवर्तन किया गया।❑

(शिक्षाविद् व स्वतन्त्र लेखक)

केशव विद्यापीठ समिति

जामडोली, जयपुर, राज. सम्पर्क सूत्र : 0141-26806344

email id- kvpsoffice1982@gmail.com website : keshavvidyapeet.com

27 वर्षों से शिक्षा- सेवा के माध्यम से शाश्वत जीवन मूल्यों के द्वारा व्यक्ति निर्माण हेतु समर्पित संस्थान केशव विद्यापीठ की स्थापना राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आद्य सरसंघचालक डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार की पुण्य स्मृति में उनकी जन्मशती के अवसर पर जयपुर से 10 किमी दूर जामडोली में की गई। हमारा लक्ष्य शिक्षा के माध्यम से शाश्वत मूल्यों की स्थापना कर युवा पीढ़ी को आत्मनिर्भर बनाना एवं समाज राष्ट्र कार्य हेतु प्रेरित करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभिन्न संस्थानों का संचालन हो रहा है। केन्द्रीय समिति के मार्गदर्शन में विभिन्न संस्थानों की प्रबंध समितियाँ अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु प्रयासरत हैं।

केशव विद्यापीठ समिति, जामडोली, जयपुर, कार्यकारिणी समिति (2018-2021)

संरक्षक	श्री रामलक्ष्मण गुप्ता	अध्यक्ष	प्रो. जे.पी. सिंघल
सचिव	श्री ओ.पी. गुप्ता	उपाध्यक्ष	श्री घनश्याम लाल राव
कोषाध्यक्ष	श्री एस.एल. अग्रवाल (सी.ए.)	स. सचिव	श्री अमरनाथ चंगोत्रा
सदस्य	श्री ओमप्रकाश बैरवा, श्री नीरज कुमावत, श्री नरेश सौंखिया		
सहवरित सदस्य	श्री राम मोहन गर्ग, श्री अशोक डीडवानिया, श्री प्रदीप सिंह चौहान		
पदेन सदस्य	श्री शिव प्रसाद, श्री भरतराम कुम्हार, श्री रामेश्वर खण्डेलवाल, श्री सुरेश कुमार वधवा		
स्थाई आमंत्रित	श्री दुर्गादास जी, श्री निम्बाराम जी, श्री शैलेन्द्र जी, श्री प्रकाश चंद जी एवं केशव विद्यापीठ समिति द्वारा संचालित विभिन्न संस्थाओं के अध्यक्ष, मंत्री, विश्वविद्यालय, प्रतिनिधि, जिला शिक्षा अधिकारी, जयपुर।		

श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय (सी.टी.ई.) 2681530

श्री अग्रसेन शिक्षण प्रशिक्षण विद्यालय 2680666

अध्यक्ष : श्री रामकरण शर्मा — श्रेष्ठ शिक्षक निर्माण एवं शोध कार्य में देश का प्रमुख संस्थान — मंत्री : श्री सूर्यनारायण सैनी

देवीदत्त डालमिया शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय 2680076

अध्यक्ष : श्री सुरेश बंसल — संस्कार युक्त शारीरिक शिक्षा हेतु देश का श्रेष्ठ संस्थान — मंत्री : श्री ओमप्रकाश गुप्ता

ब्रह्मचारी श्री रामानुजाचार्य कन्या उच्च माध्यमिक विद्यालय 2680455

अध्यक्ष : श्रीमती आशा गोलचा — प्रवेशिका से 12 तक विज्ञान, वाणिज्य एवं कला संकाय का श्रेष्ठ कन्या विद्यालय — मंत्री : डॉ. नाथू लाल सुमन

दामोदर दास डालमिया उच्च माध्यमिक विद्यालय 2682330

अध्यक्ष : श्री सुरेश उपाध्याय — प्रवेशिका से 12 तक विज्ञान, वाणिज्य एवं कला संकालय का श्रेष्ठ छात्र विद्यालय — मंत्री : श्री ओम प्राकश शमा

शंकर लाल धानुका उच्च माध्यमिक आदर्श विद्या मंदिर 2680932

अध्यक्ष : श्री बाबूलाल गुप्ता — कक्षा 6 से 12 तक विज्ञान, वाणिज्य, कला संकाय का पूर्ण आवासीय विद्यालय जहाँ गुरुकुल पद्धति पर आधारित आधुनिक शिक्षा एवं संस्कारयुक्त स्वस्थ वातावरण द्वारा बालक का सम्पूर्ण विकास किया जाता है। ज्ञान, कौशल, शारीरिक दक्षता, भाषा, कला केरियर मार्गदर्शन द्वारा बालक को विश्वस्तरीय स्पर्धा के योग्य बनाया जाता है। प्रतियोगी परीक्षा हेतु तैयारी की व्यवस्था है। — मंत्री : श्री नन्द सिंह नरूका

Krishna Global School 2680344

अध्यक्ष : श्री सुनील सिंघल — Play Group to Class VIII-An English Medium Co- Education School — मंत्री : श्री अमित झालानी

भगवानलाल रामलाल रावत इण्डोस्विस चैरिटेबल ट्रस्ट अस्पताल 2680209

अध्यक्ष : वैद्य रामवतार शर्मा — नर-सेवा-नारायण सेवा के भाव से सेवारत — मंत्री : श्री गिरीश चतुर्वेदी

SMT.
Estd. 2003
RAMKUMARI GROUP OF INSTITUTIONS
(Managed By : Prof. S. Karan Shiksha Samiti Trust)
Mukundgarh Mandi, Teh-Nawalgarh, Dist. Jhunjhunu (Raj.) 333705 PH.: 01594-252024, 252034, 252044, 9610124041
GIRLS SCHOOL
(Faculty of Science, Commerce, Arts & Ag. Science)
English & Hindi Medium
कक्षा 6 से 12 तक बालिका शिक्षा की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था
GIRLS COLLEGE
ENGLISH & HINDI MEDIUM
Bus facility Available in 30 K.M. Radius for School & College Students
Courses Offered : B.Sc. B.Com. B.A.
M.Sc. : Chemistry, Botany, Zoology, Physics, Maths
M.A. : Geography, English, Home Sci., Hindi, History, Pol. Science, Urdu
छात्राओं के लिए पूर्णतया सुरक्षित एवं अनुशासित वातावरण
Unique institution For Girls Education
RAMKUMARI COLLEGE OF PHARMACY
(Approved by : AICTE, PCI New Delhi & Affiliated to RUHS Jaipur)
D. PHARMA
Limited Seats
Placement Facility
Eligibility: 10+2 (PCM/PCB)
9461903908, 9782445848
SMT. RAMKUMARI COLLEGE OF YOGA & NATUROPHATY
(Affiliated By : Rajasthan Ayurved University, Jodhpur)
नेचुरोपेथी एण्ड योगा
में डॉक्टर बनने का सुनहरा अवसर
BNYS
Bachelor of Naturopathy & Yoga Science
NATUROPATHY & YOGA DOCTOR COURSE
Duration: 5½ Years
Eligibility: 10+2 (PCB)
AHDP
2 वर्षीय पशुपालन डिप्लोमा
Eligibility: 10+2 (PCB/AG. Sc)
SMT. RAMKUMARI VETERINARY COLLEGE
PROF. S. KARAN INSTITUTE OF VETERINARY
DEPARTMENT OF EDUCATION
B.Ed.
M.Ed.
SHIKSHA SHASTRI
D.El. Ed. (BSTC)
B.A. B.Ed./B.Sc. B.Ed.
(4 Year Integrated Course)
Quality Education की कर्मस्थली...... जो आपके सपनों को साकार करने हेतु कटिबद्ध है ! प्रतिबद्ध है ! वचनबद्ध है !

Mahala
Group of Institutions
A Group of Excellent Institutions, Where perfection is Tradition
School Education
(C.B.S.E)
Class - Nur to XII
(Stream - Science & Commerce)
Separate Hostel Facility
for BOYS & GIRLS
DEGREE COURSES
(EDUCATION)
* B.Ed. , M.Ed (2 Years)
* B.Ed.-M.Ed.
* B.A B.Ed.-B.Sc. B.Ed.
* Shastri-Shiksha Shastri
* Shiksha Shastri
* D.El.Ed (2 Years)
Pharmacy Course
D.Phama
(Diploma in Pharmacy)
Duration- 2 Yr.
Eligibility - 12 (PCM/PCB)
VETERINARY COURSE
A.H.D.P
(Animal Husbandry Diploma Program)
पशुधन सहायक पाठ्यक्रम
समय - 2 वर्ष
N.I.O.S
OPEN SCHOOLING
10/12 वी फेल विद्यार्थियों व
कामकाजी लोगो की अपूर्ण शिक्षा
को पूर्ण करने का सुनहरा अवसर।
I.T.I
ELECTRICIAN
(2 Years)
AYURVEDA COURSES
BNYS (Bachelor of Naturopathy & Yogic Sciences)
B.Sc. Nursing Ayurveda
DAN&P (Diploma in Ayush Nursing & Pharmacy)
SEPRATE HOSTEL FACILITY FOR BOYS & GIRLS FOR ALL COURSES
Khatushyamji Road, Reengus, Sikar (Raj.) - 332404
Ph : 7665002931, 7665002932, Email - ssreengus@gmail.com

औपनिवेशिक काल की शिक्षा में प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय भी नहीं किया गया क्योंकि अंग्रेजों ने केवल साम्राज्यवादी नीति का ही अनुसरण किया जिसके कारण शिक्षा के उद्देश्य के स्पष्ट न होने के साथ-साथ शिक्षा की विधियाँ भी दोषपूर्ण थी। शिक्षा विभाग की अवहेलना भी औपनिवेशिक काल में निरन्तर होती रही जिससे शिक्षा का विकास सही गति व रूप में नहीं हो सका।

औपनिवेशिक भारत की शिक्षा व्यवस्था

❑ डॉ. सुमनबाला

शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति तथा सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के लिए अनिवार्य है। इसकी महत्ता को भारतवंशियों ने बहुत पहले से समझ लिया था। इसी के फलस्वरूप भारत के सुदूर अतीत में भी शिक्षा की सुन्दर और सुव्यवस्थित प्रणाली विकसित की गई। भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली ने विशाल वैदिक साहित्य में समाहित ज्ञान को सुरक्षित रखा एवं ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उस समय के विचारकों एवं विद्वानों द्वारा शिक्षा व्यवस्था से यह देश आज भी यश और गौरव से उन्नत और गौरवान्वित है। वेदों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिससे ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में संगठित रूप से गुरु द्वारा शिक्षा दी जाती थी। वैदिक युग में संघ, परिषद्, चरण, मठ, गुरुकुल एवं आश्रम स्थापित हो गए थे। पाँचवीं-छठी शताब्दी में सुसंगठित शिक्षा-संस्थाओं का विकास बौद्ध विद्वानों द्वारा किया गया। बौद्ध युग में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का निर्माण हुआ और बौद्ध विहारों में भी उस समय शिक्षण-कार्य होता था। विभिन्न विशिष्ट स्थानों पर विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रबन्ध था और शिक्षा के ऐसे केन्द्र पाँच थे- राजधानियाँ, तीर्थ -स्थान, बौद्ध-विहार, मन्दिर और अग्रहार ग्राम। जिस समय हिन्दू और बौद्ध शिक्षा अपने चरम उत्कर्ष पर थी, भारत पर यवनों के आक्रमण हुए। प्रारम्भिक आक्रमणकारियों ने भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली, परन्तु मुहम्मद गौरी ने पाठशालाओं की विध्वंस करके मकतबों तथा मदरसों का निर्माण किया। उसी काल में विक्रमशिला के विश्वविद्यालय को नष्ट कर दिया गया और तब से लेकर अकबर के शासन-काल तक मुस्लिम शासकों की शिक्षा की कोई व्यवस्थित प्रणाली विकसित नहीं हो पाई थी।

प्राचीन शिक्षा -पद्धति अस्त-व्यस्त हो गई, मकतब और मदरसे खुल गए जिनमें कुरान का अध्ययन किया जाने लगा, संस्कृत का स्थान अरबी और फ़ारसी ने लेना आरम्भ कर दिया। प्राय: प्रत्येक मस्जिद के साथ एक मकतब या प्रारम्भिक विद्यालय होता था, जहाँ नि:शुल्क शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा में इन मकतबों में लिखना, पढ़ना, गणित, कुरान , प्रसिद्ध धर्मोपदेशकों की जीवन- गाथाएँ तथा ऐतिहासिक कहानियाँ पढ़ाई जाती थी। मदरसे उच्च शिक्षण संस्थाएँ थी, जिनमें व्याकरण, साहित्य, अरबी, रेखागणित, अर्थशास्त्र, इतिहास और मुस्लिम धर्म की शिक्षा दी जाती थी। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् होने वाले आक्रमणों के फलस्वरूप मुस्लिम शिक्षण संस्थाओं को राजकोष से मिलने वाली आर्थिक सहायता बन्द होने से ये संस्थाएँ बन्द हो गई और शिक्षा का पतन होने लगा। उस काल में हिन्दुओं की शिक्षा संस्थाएँ जो नागरिकों और ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यार्थियों के हितार्थ

कार्य कर रही थी उत्तरोत्तर अवनति को प्राप्त हो रही थी, फिर भी भारतीय कला की कृतियाँ उस काल में पश्चिमी देशों की मंडियों में सुविख्यात थी और 17वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पुर्तगालियों, अंग्रेजों, फ्रांसीसियों और डचों ने व्यापार करने के उद्देश्य से भारत से सम्बन्ध स्थापित किए और उनमें परस्पर संघर्ष प्रारम्भ हो गया, जिसमें अंग्रेज विजयी हुए। अंग्रेजों ने भारत में आधुनिक शिक्षा –व्यवस्था का सूत्रपात किया। प्रारम्भ में ईस्ट इंडिया कम्पनी का उद्देश्य व्यापार और धर्म प्रचार करना था। 1715 ईस्वी में सेन्ट और मेंरीज चेरिटी स्कूल यूरोपीय बच्चों की शिक्षा के लिए स्थापित किये गये और 1717 में भारतीय बालकों के लिए ऐंग्लो–वर्नाक्यूलर स्कूलों का निर्माण हुआ। इसके पश्चात् सण्डे स्कूल और दान – आश्रित विद्यालय स्थापित हुए। जब 1765 के बाद कम्पनी को राजनीतिक शक्ति प्राप्त हुई तब उसकी शिक्षा –नीति में परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ।

1780 में कलकत्ता में मदरसा और 1791 में बनारस में संस्कृत कॉलेज का निर्माण करके कम्पनी ने मुसलमानों और हिंदुओं को प्रसन्न करने का प्रयास किया। कम्पनी के युवा कर्मचारियों को शिक्षा देने के लिए 1800ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज खोला गया। अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने के लिए कलकत्ते में सह–शिक्षा के लिए विद्यालय खोले गए। 1813 के आज्ञा–पत्र के अनुसार मिशनरियों को भारत में धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता दे दी गई और एक लाख रुपये की धनराशि व्यय की अनुमति दी गई, परन्तु इससे प्रारम्भिक शिक्षा दी जाए या उच्च वर्गों को उच्च शिक्षा, प्राच्य ज्ञान अथवा पाश्चात्य ज्ञान, शिक्षा का उत्तरदायित्व सरकार पर हो या अन्य व्यक्तियों पर, शिक्षा का माध्यम संस्कृत, अरबी एवं फ़ारसी या अंग्रेजी हो इत्यादि विवाद के विषय उठ खड़े हुए। 1833 के आज्ञा–पत्र के अनुसार शिक्षा के लिए 10 लाख रुपये की धनराशि निश्चित हुई और मैकाले ने गवर्नर जनरल की कौंसिल के एक क़ानूनी सदस्य का पद ग्रहण किया जिसने शिक्षा के इतिहास में एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ किया। जिस समय प्राच्य –पाश्चात्य शिक्षा – विवाद चल रहा था, उसी समय मैकाले 1834 में भारत आया और लोक –शिक्षा समिति का प्रधान नियुक्त किया गया। 1835 के अपने विवरण–पत्र में उसने प्राच्य साहित्य की निन्दा की और अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा का समर्थन किया और अंग्रेजी के पक्ष में उसने अनेक तर्क दिए। मैकाले के सभी प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया और शिक्षा –नीति की घोषणा की जिसके अनुसार ब्रिटिश सरकार का मुख्य उद्देश्य भारतीयों में अंग्रेजी माध्यम द्वारा यूरोपीय साहित्य व विचार का प्रचार करना था।

मैकाले अंग्रेजी शिक्षा द्वारा एक ऐसा वर्ग उत्पन्न करना चाहता था जो रक्त और वर्ण में भारतीय हो, परन्तु पसन्द, विचार, आचरण एवं बुद्धि से अंग्रेज हो। प्राच्य विद्यालय बन्द तो नहीं किए गए परन्तु प्राच्य शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों का प्रकाशन बन्द कर दिया गया। मैकाले ने प्राच्य शिक्षा और साहित्य की प्रगति पर अंकुश लगा दिया। इससे मैकाले की अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के बलपूर्वक समर्थन से एक अच्छी बात यह हुई कि भारतीयों में राजनीतिक जागरण, चेतना एवं विचारधाराएँ प्रस्फुटित हुई। प्राच्य–पाश्चात्य विवाद के चलते एडम ने प्राच्य शिक्षा प्रसार की योजना प्रस्तुत की जिसमें उसने देशी भाषाओं में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के सहयोग से पाठ्यपुस्तकों का मुद्रण, प्रकाशन एवं वितरण शिक्षकों की शिक्षा के नॉर्मल स्कूल निर्माण, शिक्षा कार्य का निरीक्षण प्रत्येक ग्रामीण विद्यालय को व्यय चलाने के लिए भूमिदान आदि के सुझाव दिए जिसे 1839 में अस्वीकृत कर दिया गया। इसके पश्चात् निस्यंदन सिद्धान्त आया जिसका अर्थ था कि शिक्षा समाज के उच्च वर्ग को दी जाए और इस वर्ग से छन–छनकर शिक्षा का प्रवाह जन साधारण तक पहुँचे। ऑकलैण्ड ने इसे स्वीकार कर सरकारी नीति के रूप में घोषित किया। इस सिद्धान्त को अपनाकर सरकार ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना चाहती थी जो उच्च पदों पर कार्य कर सकें और राजभक्त होकर ब्रिटिश साम्राज्य के स्तम्भ बने। 1848 में सरकार ने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए देशी भाषाओं और उच्च शिक्षा के लिए अंग्रेजी को माध्यम बनाने का निर्णय लिया।

1853 में कम्पनी के आज्ञापत्र का नवीनीकरण किया गया तथा संसदीय समिति ने भारत की शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दिए जिसके आधार पर वुड का घोषणा –पत्र जारी किया गया। वुड के घोषणा पत्र की सिफारिशों में शिक्षा का उद्देश्य भारतीयों की बौद्धिक एवं चारित्रिक उन्नति करना तथा राज्य के लिए शिक्षित व्यक्ति तैयार करना था। वुड घोषणा पत्र से शिक्षा पूर्णत: राज्य के अधीन हो गई, माध्यमिक व उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने से देशी भाषाओं की अवनति हुई, शिक्षा को कर्म से अलग कर भारतीय धर्म पद्धति पर कुठाराघात हुआ, अध्यात्मवाद के महत्त्व की कमी, शिक्षा का उद्देश्य पाश्चात्य ज्ञान का प्रसार होने से भारतीय प्राच्य साहित्य का महत्त्व कम होना, शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों का नष्ट होना और शिक्षा केवल नौकरी प्राप्ति के साधन मात्र के रूप में स्थापित होना, देसी विद्यालय, आश्रम, गुरुकुल व्यवस्थाओं का ह्रास होना, शिक्षा के लचीलेपन की समाप्ति, व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं द्वारा अंग्रेजों के हितों का साधन, अंग्रेजी विद्यालयों पर अधिकांश धन का व्यय, शिक्षा में विषयवस्तु के समझने की बजाए रटन्त प्रणाली का आरम्भ, परीक्षाओं का स्थान सर्वोपरि होना व शिक्षा के क्षेत्र में ईसाई धर्म के पक्ष में होने के साथ–साथ शिक्षा का ढ़ाँचा पूर्णत: विदेशी हो गया। प्राचीन भारतीय स्वायत्त शिक्षा की व्यवस्था सरकार पर निर्भरता और पराधीनता की ओर अग्रसर होते हुए अपना महत्त्व खोने लगी।

1857 के स्वतन्त्रता समर के बाद कम्पनी के शासन का अन्त हो गया और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने भारत के शासन की बागडोर सँभाली। 1858 में रेलेन बरा के आदेश–पत्र में वुड के घोषणा पत्र की सभी सिफारिशों के विरुद्ध प्रस्ताव किये गए, क्योंकि घोषणा पत्र में प्रतिपादित शिक्षा नीति को विद्रोह का एक कारण माना गया था। 1859 में स्टेनले के आदेश –पत्र में वुड को शिक्षा–नीति का समर्थन किया गया और सरकार से प्राथमिक शिक्षा

का भार अपने ऊपर लेने के लिए कहा गया। 1858 के बाद सरकारी कर्मचारियों के लिए सख्त नियम बना कर सरकार ने धार्मिक तटस्थता की नीति घोषित की, परन्तु फिर भी जहाँ प्राथमिक शिक्षा की प्रगति सन्तोषजनक नहीं थी वहीं माध्यमिक शिक्षा में माध्यम के रूप में मातृभाषाओं की उपेक्षा, प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव पुस्तकीय ज्ञान पर बल और औद्योगिक शिक्षा का अभाव जैसे दोष थे। व्यावसायिक शिक्षा की योजना सरकार ने केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए बनाई थी। विश्वविद्यालय शिक्षा के अन्तर्गत स्त्रियों, मुसलमानों की शिक्षा पर सरकार द्वारा विशेष ध्यान दिया परन्तु पिछड़ी जातियों, आदिवासियों और पहाड़ी जातियों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

1882 में भारतीय शिक्षा आयोग (हंटर कमीशन) की नियुक्ति भारतीय शिक्षा के मूल्यांकन हेतु की गई जिसने शिक्षा के सभी अंगों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। प्राथमिक शिक्षा के लिए सुझाव दिया गया कि इसे जनसामान्य के व्यावहारिक जीवन के लिए लाभप्रद बनाया जाए, शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएं हों, प्रशिक्षित अध्यापकों की व्यवस्था की जाए, प्राथमिक शिक्षा का कार्य स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया जाए और स्थानीय कोष केवल इसी पर व्यय किया जाए। **देसी विद्यालयों में प्रवेश के लिए छात्रों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होना, निर्धन विद्यार्थियों हेतु छात्रवृत्तियाँ और इन विद्यालयों का प्रबन्ध स्थानीय संस्थाओं को सौंपा जाना चाहिए जैसे सुझाव आयोग ने दिए। इस आयोग के सुझावों के फलस्वरूप भारतीय शिक्षा की एक निश्चित नीति का आरम्भ हुआ और देश में प्राथमिक विद्यालयों का जाल बिछ गया। समाज के सभी वर्गों की शिक्षा का विकास हुआ, परन्तु समाज का दो स्पष्ट वर्गों में विभाजन, निरर्थक पुस्तकीय ज्ञान और आर्थिक व औद्योगिक विकास का अभाव जैसे दोष भी रहे।**

19वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में देश के नागरिकों में स्वतन्त्रता के विचारों और राष्ट्रीय भावनाओं को भरना आरम्भ हो गया था और इस कार्य को करने वाले सुयोग्य एवं त्यागी समाज सुधारकों ने राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की। ऐसे समय में लार्ड कर्जन भारत आया जो पाश्चात्य सभ्यता का पुजारी और भारतीय राष्ट्रीयता का प्रबल विरोधी था। 1901 में शिमला शिक्षा सम्मेलन में एक भी भारतीय को नहीं बुलाया और इसकी कार्यवाही को बिल्कुल गुप्त रखा गया। 1902 में भारतीय विश्वविद्यालयों की जाँच और उनमें सुधार करने हेतु भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की नियुक्ति की गई जिसने विश्वविद्यालय शिक्षण का कार्य करने अध्यापकों की नियुक्ति करने, सीनेट में प्राध्यापकों को उचित प्रतिनिधित्व दिए जाने और मान्यता प्राप्त कॉलेजों के निरीक्षण का सुझाव दिया। 1904 में भारतीय विश्वविद्यालय परीक्षा लेने के अतिरिक्त शिक्षण -कार्य भी करने लगे। कर्जन ने कृषि, कला, और नैतिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया उसने पुरातत्व विभाग का निर्माण और केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की स्थापना की। छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देकर प्रौद्योगिक शिक्षा का अध्ययन करने के लिए विदेशों में भी भेजा। कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण परिस्थिति पहले से अधिक गम्भीर हो गई थी। भारतीयों के प्रति उसके उद्दण्ड एवं अन्यायपूर्ण व्यवहार ने इनकी साम्राज्यवादी नीति का भंडाफोड़ करना प्रारम्भ किया। अंग्रेजों की अर्थनीति, शोषण की नीति, संसाधन दोहन और भारतीय जनता की शासन द्वारा रक्षा न कर पाने के कारण राष्ट्रवाद का आन्दोलन अपने चरम पर था। इसी समय लार्ड कर्जन की बंगाल विभाजन की घोषणा ने भारतीयों को एकजुट कर स्वराज्य प्राप्ति, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग के साथ राष्ट्रीय शिक्षा की माँग बीसवीं सदी के प्रथम दशक में जोर पकड़ने लगी जिसमें भारतीय शिक्षा का राष्ट्रीयकरण और स्वदेशीकरण की माँग प्रबल होती गई। गाँधीजी ने भारतीय शिक्षा के विदेशी स्वरूप की कटु आलोचना की। राष्ट्रीय शिक्षा को छः सिद्धान्तों पर आधारित बनाए जाने पर बल दिया गया जिसमें शिक्षा पर भारतीय स्वदेश प्रेम की शिक्षा, दास्य अनुकरण का अन्त, पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञानों का अध्ययन, अंग्रेजी के प्रभुत्व का अन्त एवं व्यावसायिक शिक्षा पर बल सम्मिलित थे जिसके फलस्वरूप जामिया मिलिया इस्लामिया, बिहार विद्यापीठ, काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ आदि का निर्माण और राष्ट्रीय स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना हुई। 1916 से 1921 के मध्य भारत में 7 नये विश्वविद्यालय, माध्यमिक शिक्षा हेतु अनेक विद्यालय जिनमें व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था भी की गई। प्राथमिक विद्यालय खुलने के साथ 1906 के अधिनियम द्वारा सम्पूर्ण बड़ौदा राज्य के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य की गई। गोखले जी ने 16 मार्च को केन्द्रीय सभा में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया, पर वह पास न हो सका। 1919 के अधिनियम के अनुसार भारत में द्वैध शासन प्रणाली की व्यवस्था प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात की गई जिसमें शिक्षा विभाग को भारतीय मन्त्रियों की अध्यक्षता में हस्तान्तरित कर दिया गया।

1927 में हर्टांग समिति की नियुक्ति की गई जिसने भारतीय शिक्षा के सभी अंगों का अध्ययन कर सुझाव दिए। इस ख्याल में नए विद्यालयों का निर्माण और पुराने विश्व-विद्यालयों का पुनर्गठन किया गया। अधिकांश माध्यमिक स्कूलों में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएँ थीं। शिक्षकों की दशा में सुधार के साथ पाठ्यक्रम में औद्योगिक एवं व्यापारिक विषयों को स्थान दिया गया। समिति ने प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति पर जोर दिया और शिक्षा में होने वाले अपव्यय तथा अवरोधन को आवश्यक रूप से रोकने का सुझाव दिया। व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत चिकित्सा शिक्षा के कॉलेज खोले गये। क़ानून की शिक्षा, इंजीनियरिंग, पशु-चिकित्सा, वन -विज्ञान, वाणिज्य, कृषि और तकनीकी तथा औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था भी की गई। इस काल में स्त्रियों की शिक्षा का अपूर्व प्रसार हुआ जिसमें शारदा एक्ट और गाँधी जी द्वारा शिक्षा पर योगदान महत्त्वपूर्ण है। प्रौढ़ शिक्षा इस काल (1921-1937) की प्रमुख विशेषता रही। राष्ट्रीय शिक्षा के लिए कुछ कर्मठ भारतीयों ने विशिष्ट शिक्षा संस्थाएँ स्थापित की, जिसमें विश्व भारती, गुरुकुल

विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया, इस्लामिया इत्यादि प्रमुख थे।

1935 में 'भारत सरकार अधिनियम' बनाया गया जो 1937 में प्रचलित किया गया जिसमें द्वैध शासन समाप्त कर दिया और प्रान्तीय प्रशासन के सम्पूर्ण क्षेत्रों में उत्तरदायी शासन की स्थापना की। प्रान्तों ने संरक्षित एवं हस्तान्तरित विषयों का भेद समाप्त कर, मन्त्रिमण्डल बनाकर शिक्षा की प्रगति में योगदान दिया। केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा की ओर ध्यान दिया और 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड', 'केन्द्रीय शिक्षा सचिवालय' केन्द्रीय शिक्षा सूचना कार्यालय' तथा 'विश्वविद्यालय' अनुदान समिति का गठन किया गया। 1937 में एक्ट व वुड रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसमें सामान्य शिक्षा एवं उसके संगठन के सम्बन्ध में वुड द्वारा अनेक अच्छे सुझाव दिए गए। प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए अधिनियम पारित किये गये। व्यावसायिक शिक्षा के तहत पूर्व के समान क़ानून, चिकित्सा शास्त्र, वाणिज्य , कला, कृषि, तकनीकी और इंजीनियरिंग की शिक्षा चलती रही। शिक्षित स्त्रियाँ दफ्तरों आदि में नौकरी करने लगी जिस कारण स्त्री शिक्षा का प्रवाह तीव्र हो गया।

1939 से 1947 के मध्य जब राष्ट्रीय नेताओं ने विभिन्न प्रान्तों में उत्तरदायी शासन का सूत्र सम्भाला तो उन्होंने सार्वजनिक कल्याण के कार्यक्रम में प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करके जन-शिक्षा -प्रसार कार्य को सर्वोच्च स्थान दिया और तीन नयी योजनाएँ जिसमें विद्या मन्दिर -योजना, वांलटरी स्कूलों की योजना और बेसिक शिक्षा की योजना आरम्भ की गई। 1947 तक पूरे प्रान्त में 6684 ऐसे विद्यालयों का संचालन किया जा रहा था। गाँधीजी की बेसिक शिक्षा योजना का उद्देश्य बच्चों का सर्वांगीण विकास (शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक) करना था जो 7 वर्ष की आयु से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए अनिवार्य है। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा और सम्पूर्ण शिक्षा का सम्बन्ध किसी आधारभूत शिला से होता है। जाकिर हुसैन समिति ने इस योजना के लिए पाठ्यक्रम तैयार किया जिसमें शिक्षा के साथ मातृभाषा, हिन्दुस्तानी, गणित, सामाजिक, सामान्य विज्ञान और कला सम्मिलित किए गए। इसमें अध्यापन कार्य, क्रियाओं एवं अनुभवों के माध्यम से किया जाता था। इस बेसिक शिक्षा की मुख्य विशेषताएँ इसका निशुल्क एवं अनिवार्य, शिक्षण का केन्द्र बालक, पाठ्यक्रम के विषयों में समन्वय तथा अन्तर्सम्बन्ध, जीवन से सम्बन्धित स्वतन्त्रता, उत्पादन पर बल, हस्तकार्य के लिए आदर तथा नागरिकता, अहिंसा और सहकारी समुदाय के आदर्श थे। यह योजना विशेष रूप से ग्रामों के लिए थी जिसमें उत्पादकता सिद्धान्त पर अधिक बल दिया गया। इसमें उद्योगों के प्रयोग की निरर्थकता थी, धार्मिक शिक्षा का अभाव एवं विभिन्न विषयों के लिए समय विभाजन त्रुटिपूर्ण था। कई प्रान्तों में यह योजना क्रियान्वित की गई, परन्तु बाद में इसमें अवरोध आ गया। खेर समिति ने बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव दिये जिन्हें 'सार्जेण्ट– शिक्षा योजना' क्रियान्वित किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् सभी युद्धग्रस्त देशों ने पुनर्निर्माण की योजनाएँ बनाना प्रारम्भ किया। भारत में भी 'वायसराय की प्रबन्धकारिणी कौंसिल की पुनर्निर्माण समिति' ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा-सलाहकार सर जोन सार्जेन्ट द्वारा भारत में युद्धोत्तर शिक्षा - विकास पर एक स्मृतिपत्र तैयार करने का आदेश दिया। सार्जेन्ट ने 1944 में अपनी रिर्पोट 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' को सौंपी जिसे बोर्ड ने स्वीकृति प्रदान की। इस रिपोर्ट को 'भारत में युद्धोत्तर शिक्षा-विकास योजना' अथवा 'केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट' अथवा 'सार्जेन्ट योजना' के नाम से जाना जाता है और इसके भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के निर्माण के दृष्टिकोण से महत्त्व प्रदान किया जाता रहा है। इस योजना में पूर्व -प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयी शिक्षा तक, शिक्षा की समस्याओं, उसके संगठन, उसे प्रमुख दोषों और उन्हें दूर करने के उपायों एवं शिक्षा की भावी रूप-रेखा का वर्णन किया गया है। यह योजना भारतीय शिक्षा के इतिहास में राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात करती है। यह अत्यन्त व्यापक है और इसकी धारणाएँ अत्यन्त निर्भीक कही जा सकती है। यह भारतीय शिक्षा-प्रणाली (तत्कालीन) के दोषों पर भी प्रकाश डालती है तो शिक्षकों की दशा सुधार एवं सभी विद्यार्थियों को शिक्षा का समान अवसर देती है, परन्तु इस योजना में मौलिक लेख नहीं है। यह प्राप्त किए जाने वाले आदर्श को तो प्रस्तुत करती है परन्तु केवल रूपरेखा ही प्रस्तुत करती है। यह योजना अराष्ट्रीय , विलम्बकारी , काल्पनिक और खर्चीली कही जा सकती है।

औपनिवेशिक शासन-काल में शिक्षा को देखा जाए तो भारतीय नेताओं एवं शिक्षाविदों के मत के अनुसार अंग्रेजी शिक्षा पद्धति भारत के लिए सर्वथा अनुपयुक्त, अहितकर एवं अन्तरराष्ट्रीय थी। इसके विपरीत भारत के अंग्रेज शासकों के अनुसार इस काल की शिक्षा इस देश के शिक्षा के इतिहास में बेजोड़ है। गहनता से देखने पर जहाँ इस शिक्षा ने पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान से सम्पर्क बनाना, भारतीय समाज में परिवर्तन, वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देना, लोकप्रिय राजनीतिक संस्थाओं का विकास के साथ-साथ शिक्षा प्रसार के नवीन साधनों पर बल दिया और भारतीय पुनर्जागरण का कारण बनी, वही अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली देश के वातावरण के प्रतिकूल थी जिससे भारत की राष्ट्रीय विशेषताओं का विनाश हुआ। इस शिक्षा के उद्देश्य अत्यन्त संकीर्ण और ध्येय निकृष्ट थे। अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के दुष्परिणाम आज भी भारतीय समाज को भुगतने पड़ रहे हैं। **भारत में धर्म हीनता एवं नैतिक गिरावट का कारण इस शिक्षा से आरम्भ हुआ। इस समय में शिक्षा का प्रसार भी अत्यन्त मन्द गति से हुआ। औपनिवेशिक काल की शिक्षा में प्राच्य तथा पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय भी नहीं किया गया क्योंकि अंग्रेजों ने केवल साम्राज्यवादी नीति का ही अनुसरण किया जिसके कारण शिक्षा के उद्देश्य के स्पष्ट न होने के साथ-साथ शिक्षा की विधियाँ भी दोषपूर्ण थी। शिक्षा विभाग की अवहेलना भी औपनिवेशिक काल में निरन्तर होती रही जिससे शिक्षा का विकास सही गति व रूप में नहीं हो सका।** q

(व्याख्याता, हरिभाऊ उपाध्याय महिला शिक्षक महाविद्यालय, हटूण्डी, अजमेर)

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और आर्य समाज

शिक्षा एक ऐसा तत्त्व है जो व्यक्ति को प्रकृति और संस्कृति दोनों से जोड़ता है। भारत में शिक्षा को संस्कृति के रूप में स्वीकार किया गया है। प्राचीनकाल से ही शिक्षा संस्कृति की वाहक रही है, संस्कृति मानव, समाज, राज्य व राष्ट्र के सम्बन्धों को परिलक्षित करती है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति में समर्पण की भावना, उसके उत्तरदायित्व, राष्ट्र व जनता के प्रति कर्तव्य का गहन बोध होता है, त्याग, निःस्वार्थ सेवाभाव व परमात्मा में आस्था रखने वाला व्यक्ति ही समाज और राष्ट्र का उत्थान कर सकता है। शिक्षा एक व्यक्तिगत सद्गुण के साथ-साथ सामाजिक सद्गुण और राष्ट्रीय सद्गुण है। समाज के मूल्यों को आत्मसात करते हुए एक अच्छे सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। शिक्षा के माध्यम से मानव का मानस परिवर्तन किया जा सकता है।

❑ **डॉ. राधाकृष्ण**

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। चीनी विचारक माओत्से-तुंग ने अपनी पुस्तक 'ऑन कॉन्ट्राडिक्शन' में लिखा है- 'कुछ समय बाद प्रत्येक अवस्था में अन्तर्विरोध पैदा हो जाते हैं।' भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन इसी प्रकार की प्रवृति थी। मानस परिवर्तन, समाज परिवर्तन और व्यवस्था परिवर्तन मानव की प्रकृति के अनुसार होते हैं। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में भी मानस परिवर्तन, समाज परिवर्तन और व्यवस्था परिवर्तन दिखाई देता है। कोई भी परिवर्तन निर्वात में नहीं होता है। शिक्षा, शिक्षा व्यवस्था तत्कालीन प्रबुद्ध जन, विचारकों के बिना परिवर्तन सम्भव नहीं हो सकता। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन भी अपनी तत्कालीन परिस्थितियों का परिणाम था। किसी भी देश के परिवर्तन में उस देश की शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा के चार आयाम माने जाते हैं- अध्यात्म, धर्म, संस्कृति एवं तत्वज्ञान। भारतीय ज्ञान धारा का मूल अधिष्ठान आध्यात्मिकता है, अध्यात्म जब नियम व व्यवस्था में रूपान्तरित होता है तब वह धर्म का रूप धारण करता है और जब व्यवहार में उतरता है तो वह संस्कृति बन जाता है।

शिक्षा एक ऐसा तत्त्व है जो व्यक्ति को प्रकृति और संस्कृति दोनों से जोड़ता है। भारत में शिक्षा को संस्कृति के रूप में स्वीकार किया गया है। प्राचीनकाल से ही शिक्षा संस्कृति की वाहक रही है, संस्कृति मानव, समाज, राज्य व राष्ट्र के सम्बन्धों को परिलक्षित करती है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति में समर्पण की भावना, उसके उत्तरदायित्व, राष्ट्र व जनता के प्रति कर्तव्य का गहन बोध होता है, त्याग, निःस्वार्थ सेवाभाव व परमात्मा में आस्था रखने वाला व्यक्ति ही समाज और राष्ट्र का उत्थान कर सकता है। शिक्षा एक व्यक्तिगत सद्गुण के साथ-साथ सामाजिक सद्गुण और राष्ट्रीय सद्गुण है। समाज के मूल्यों को आत्मसात करते हुए एक अच्छे सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। शिक्षा के माध्यम से मानव का मानस परिवर्तन किया जा सकता है।

स्वतंत्रता आंदोलन जन-जागरण, जनमानस की जागरूकता, जनमानस में पराधीनता के अहसास का परिणाम था। जनमानस में जागरूकता का काम सामाजिक-सांस्कृतिक व धार्मिक भक्ति आंदोलन ने किया, जिससे जनमानस में सामाजिक-सांस्कृतिक एकरूपता, जागरूकता और देश-प्रेम की भावना जागृत हुई।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में शिक्षा, शिक्षा व्यवस्था एवं तत्कालीन विचारकों की महती भूमिका है। प्राचीन भारत में उत्कृष्ट एवं समुन्नत शिक्षा व्यवस्था थी। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था राष्ट्र गौरव व व्यक्ति में सामाजिकता, राष्ट्र प्रेम का उत्साह प्रवाहित करने वाली थी। प्राचीन शिक्षा मानव के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास पर आधारित थी। सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था का आधार धर्म था। शिक्षा के माध्यम से अर्थोपार्जन धर्म के अनुसार होना चाहिए। इसी की निरन्तरता में सामाजिक-सांस्कृतिक, धार्मिक प्रचारकों, उपदेशकों का भी भारतीय जनमानस में स्वतंत्रता का अलख जगाने की प्रभावशाली भूमिका रही है। राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, ईश्वर चन्द विद्यासागर, बंकिमचन्द चटर्जी, प्रताप नारायण मिश्र, बालगंगाधर तिलक, अरविन्द घोष, महात्मा गांधी जैसे महान विचारकों ने अपने विचारों का प्रचार-प्रसार कर भारतीय जनमानस को शिक्षित किया। इन सबका उद्देश्य परतन्त्रता से मुक्ति का महान उद्देश्य था ।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक ही सीमित नहीं था, वह भारत की आत्मा (सांस्कृतिक, सामाजिक विरासत) को मुक्ति प्रदान करने का आन्दोलन था। इस पुनीत कार्य में अनेक विचारकों राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, ईश्वर चन्द विद्यासागर, बंकिमचन्द चटर्जी, प्रताप नारायण मिश्र, बालगंगाधर तिलक, अरविन्द घोष, महात्मा गांधी आदि ने अपने-अपने तरीके से सहभागिता की। किसी ने संस्था बनाकर और किसी ने संगठन बनाकर अपने विचारों को जनमानस में प्रचार-प्रसार किया। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन सफल हुआ। इसमें राजा राममोहनराय ने ब्रह्म समाज और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सन् 1875 में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज के माध्यम से स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारतीय चिन्तन में भारतीय संस्कृति के गौरव और भारतीय अस्मिता का शंखनाद करके भारतीय राष्ट्रवाद को वैचारिक आधार प्रदान किया। उन्होंने वेदों की ओर लौटने का आह्वान कर भारतीय जनमानस में भारतीयता के प्रति गौरव के भाव का संचार किया। उन्होंने सामाजिक जीवन में विद्यमान कुरीतियों, अन्धविश्वासों और विघटनकारी प्रवृत्तियों का विरोध कर भारतीय समाज को जागरूक बनाने और उसे एकता के सूत्र में बाँधने में निर्णायक भूमिका निभाई।

भारतीय जनता पर विदेशी आधिपत्य का प्रभाव राजनीतिक पराधीनता तक ही सीमित नहीं रहा। विदेशी आधिपत्य के कारण भारतीय जनमानस धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक सभी तरह के आत्महीनता और पराधीनता के भावों से ग्रस्त था।

आर्य समाज के माध्यम से स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक ज्ञान और वैदिक मूल्यों की सर्वोच्चता और उत्कृष्टता का उद्घोष कर भारतीयों में अपने गौरवशाली अतीत और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के प्रति जागृत किया। दयानन्द सरस्वती के अनुसार भारत की पराधीनता का मुख्य कारण भारतीय जनता वेदों में प्रतिपादित जीवन मूल्य व जीवन पद्धति की उपेक्षा व अनदेखी करना। इस विदेशी अधिपत्य के कारण पारस्परिक फूट, धार्मिक भेदभाव, जीवन में शुद्धता का अभाव, शिक्षा की कमी, इन्द्रिय परायणता, असत्य तथा अन्य बुरी आदतें, वेदाध्ययन की अवहेलना तथा अन्य कुरीतियाँ है। उनके अनुसार भारत के लोग चारित्रिक पतन के मार्ग पर चल पड़े, परिणामस्वरूप विदेशी सत्ता ने भारत पर आधिपत्य कर लिया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों को धर्म का स्त्रोत स्वीकार करके निर्भीकतापूर्वक घोषित किया कि हिन्दू धर्म में विद्यमान विकृतियाँ, मूल वैदिक धर्म के विपरीत है। वेदों के आधार पर हिन्दू धार्मिक विश्वासों और जीवन पद्धति के विवेक सम्मत व्याख्या कर दयानन्द ने केवल हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया अपितु ईसाईयत और इस्लाम धर्म की अनेक दुर्बलताओं पर प्रहार किया। उन्होंने भारतीयों में अपने धर्म, संस्कृति और जीवन मूल्य, जीवन पद्धति के प्रति गौरव के भाव का संचार करके भारतीयों को आत्महीनता से मुक्त किया तथा उनमें आत्मविश्वास उत्पन्न किया।

आर्य समाज ने भारतीयों को आचरण की ऐसी पद्धति अपनाने का परामर्श दिया जिससे कि विदेशियों के शासन की समाप्ति हो सके तथा भारतीय अपने विषय के निर्धारण में स्वयं समर्थ हो सके। स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजाराम मोहनराय जैसे लोगों के इस मत से सहमत नहीं थे कि ब्रिटिश सम्पर्क भारत के लिए वरदान सिद्ध हुआ। आर्य समाज के अनुसार ब्रिटिश शासन भारत के लिए किसी भी दृष्टि से कल्याणकारी नहीं है।

भारतीय समाज में विद्यमान विघटनकारी प्रवृत्तियों का उन्मूलन कर सामाजिक एकता स्थापित करनी चाहिए जिससे राष्ट्र निर्माण के कार्य में सहयोग मिल सके। स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के माध्यम से निर्भीक और चरित्रवान नागरिक बनाना चाहते थे। आर्य समाज ने भारतीय जनमानस में गौरवशाली अतीत का भान कराते हुए राष्ट्रवाद की भावना से ओतप्रोत कर भारतमाता के मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। ❑

(सह. आचार्य राजकीय शाकम्भर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सांभरलेक)

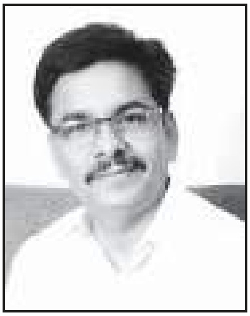

राष्ट्रीय एकता में संस्कृत का योगदान

❑ डॉ. ओम प्रकाश पारीक

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य राष्ट्रीय चेतना से आप्लावित है। राष्ट्रीय चेतना का मूल है ''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी''। भारत में अनेक बाह्य भेद दिखाई देते है संस्कृत भाषा एवं साहित्य विभिन्न भेदों के साथ राष्ट्र को सर्वोपरि रखते हुये साम्य अवस्था में इन्हें अपने में समाहित किये हुये हैं। साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता तथा भाषावाद इत्यादि से लेकर अपने मस्तिष्क में वैषम्य रखने वाले लोगों के लिये संस्कृत भाषा वैषम्य का निराकरण करती हुई एकरूपता का स्मरण करवाती रहती है और पूरे राष्ट्र को एक शृंखला मे बाँधती है। जैसे कि विष्णु पुराण में कहा गया है –

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।।

अर्थात् समुद्र से उत्तर की ओर, हिमालय पर्वत से दक्षिण की ओर जो भू-भाग फैला है, उस राष्ट्र का नाम भारत है और वहाँ जो लोग निवास करते हैं वे भारतीय हैं जो कि प्रारम्भ से प्रचलित भारतीय परम्पराओं, रीति-रिवाजों, उत्सवों, मेलों, धार्मिक कार्यक्रमों, तीर्थों, सामाजिक कार्यक्रमों, यहाँ के खेलों, यहाँ की कृषि, यहाँ के विकास के साधनों के साथ भौतिक जीवन जीने के साथ अपनी आध्यात्मिक उन्नति में तत्पर रहे हैं तथा उन्होंने अपने जीवन को सार्थक बनाया है।

राष्ट्रीय भावना राष्ट्र शब्द में ही समाहित दिखायी देती है। ''राति'' शब्द का अर्थ है 'देन' अर्थात् राष्ट्र के लोग अपनी-अपनी देन जिस राष्ट्र माता के चरणों में अर्पित करते हैं वह राष्ट्र हैं। यदि वे अपने प्रेम को राष्ट्र माता के लिये अर्पित नहीं करते हैं तो वे अराष्ट्रीय हैं। एक राष्ट्र में रहने वाले राष्ट्र प्रेम के भाव से भरे हुये लोगों के द्वारा वहाँ भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामरिक, ऐतिहासिक पूर्णताओं के साथ अपने आपको आत्मसात् करना राष्ट्रीय भावना है।

राष्ट्रीय भावना से भरे हुये लोगों में पूर्ण रूप से राष्ट्र सेवा व्रत ही होता है। उनमें सम्मान, वित्त, स्वार्थ इत्यादि की कामना न होकर सबके

राष्ट्रीय भावना राष्ट्र शब्द में ही समाहित दिखायी देती है। ''राति'' शब्द का अर्थ है 'देन' अर्थात् राष्ट्र के लोग अपनी-अपनी देन जिस राष्ट्र माता के चरणों में अर्पित करते हैं वह राष्ट्र हैं। यदि वे अपने प्रेम को राष्ट्र माता के लिये अर्पित नहीं करते हैं तो वे अराष्ट्रीय हैं। एक राष्ट्र में रहने वाले राष्ट्र प्रेम के भाव से भरे हुये लोगों के द्वारा वहाँ भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामरिक, ऐतिहासिक पूर्णताओं के साथ अपने आपको आत्मसात् करना राष्ट्रीय भावना है। राष्ट्रीय भावना से भरे हुये लोगों में पूर्ण रूप से राष्ट्र सेवा व्रत ही होता है। उनमें सम्मान, वित्त, स्वार्थ इत्यादि की कामना न होकर सबके प्रति 'सखा' की भावना होती है।

प्रति 'सखा' की भावना होती है -

न सम्मान कामो न वा वित्तलोभो
न च स्वार्थमोहो न शक्त्युन्मदो वा।
मनस्यस्तु वो राष्ट्रसेवा व्रतानां
सखायः कदाचित् कुतश्चित् कथञ्चित्।।

संस्कृत भाषा में राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय एकता के स्वर भरे हुये हैं। वेदों में राष्ट्रभूमि के प्रति मातृत्व की भावना प्राप्त होती है जैसे माता अपने दूध, रक्त, माँस से बच्चे की देह को बनाती है और पुष्ट करती है वैसे ही मातृभूमि अपने अन्न, पानी, वनस्पति के द्वारा अपने रहने वाले प्राणियों के जीवन को धारण करती है इसलिये वो एक दिव्य देवी है जो सभी तरह से अपनी सन्तानों को परिवर्धित करती है। जैसा कि अथर्ववेद में कहा है -

तन्नो वातो मयो भुव्वातु भेषजं
तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः।
तासु नो द्येह्यभि न पवस्व
माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः
उपहूता पृथिवी मातोप
मां पृथिवी माता ह्वयताम्।।

हमारा राष्ट्र-प्रेम पूरे राष्ट्र को एकता के सूत्र में आबद्ध करता है और राष्ट्र को विभिन्न आपदाओं से रक्षा के लिये प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको कृत संकल्पित करता है। जैसा कि अथर्ववेद के इस मंत्र में सूर्य, अग्नि, मित्र, वरुण देवों से प्रार्थना की गई है कि वे सभी ओर से राष्ट्र की रक्षा करें। हमारे राष्ट्र के जो भी शत्रु हैं, उन्हें नष्ट कर दें। इस प्रकार सुरक्षित राष्ट्र में ही उत्तम ज्ञान, शास्त्र एवं वाणी प्रवर्धित होती है और इससे राष्ट्र सत्यनिष्ठ होता है एवं अग्रगण्य बनाता है -

परित्वा धात् सविता देवो
अग्निर्वर्चसा मित्रा वरुणावभित्वा।
सर्वा अरातीरवक्रामन्ने हि
इदं राष्ट्र मकरः सुनृतावत्।।

राष्ट्र भावना से भावित जन सर्वदा मन-वचन और कर्म से प्रयत्नशील रहते हैं कि उनका राष्ट्र सब राष्ट्रों में उत्तम हो। अथर्ववेद में इस भाव को प्रकट करता हुआ यह मंत्र द्रष्टव्य है -

सा नो भूमिस्त्विषिं बलं
राष्ट्रे दधातु उत्तमे।

ऐसे उन्नत राष्ट्र में रहते हुये ऋषि यहाँ के राष्ट्रीय व्यक्ति की कीर्ति में सर्वदैव वृद्धि की कामना करता है -

प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन्
कीर्तिवृद्धिं ददातु मे।

राष्ट्र की चिन्ता राष्ट्रीय जनों को करते रहना चाहिये किन्तु शासकों का धर्म है कि वो सर्वदैव राष्ट्र चेतना से प्रेरित रहें। इसलिये राष्ट्र में शासक सर्वदैव प्रजाहित के लिये लगा रहे एवं विद्वान् अपने ज्ञान द्वारा उस राष्ट्र को प्रकाशित करता रहे।

महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तम् के सप्तम अंक में भरत वाक्य में इस बात का उल्लेख किया है -

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः।
सरस्वती श्रुति महती महीयताम्।।

महाकवि भास की भी इस भारत राष्ट्र के प्रति एकत्व की भावना निम्न श्लोक से परिपुष्ट हो रही है -

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद् विन्ध्यकुण्डलां
महीमेकात्पत्राकां राजसिंहः प्रशास्तु नः।।

महाकवि कालिदास वृक्षों, प्राणियों, तीर्थों इत्यादि सभी बातों को सम्मिलित कर राष्ट्र-चिन्तन में तत्पर है। जैसे रघुवंश के निम्न श्लोक में कवि उद्गार प्रकट करते हैं जिन आश्रमों के वृक्षों का आलवाल बनाकर पुत्रवत् स्नेह किया जाता है, जो छाया देकर आपकी थकावट दूर करते हैं, उनके ऊपर आँधी आदि उपद्रवों का प्रकोप नहीं है -

आधारबन्धप्रमुखैः प्रयत्नैः
संवर्धितानां सुतनिर्विशेषम्।
कच्चिन्न वाय्वादिरूपप्लवो वः
श्रमच्छिदामाश्रमपादपानाम्।।

इसी प्रकार के हरिण शावक सकुशल है जिन्हें ऋषि गोद में बिठाकर प्रेम से खिलाते हैं, जिनके नाभि नाल मुनियों की गोद में गिरते हैं और जिनको ऋषिगण पुत्र स्नेह से यज्ञ क्रिया के लिये एकत्र किये कुशादि पर बैठने से नहीं रोकते हैं -

क्रियानिमित्तेष्वपि वत्सलत्वाद-
भग्नकामां मुनिभिः कुशेषु।
तदङ्कशय्याच्युतनाभिनाला
कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः।।

इसी प्रकार जिनसे आप ऋषिगण सन्ध्या-वन्दन तर्पण करते हैं एवं जिनके बालुकामय तट पर राजा भाग रूपी षष्ठांश को जानकर छोड़ते हैं ऐसे कल्याणकारी तीर्थ जल उपद्रवों से रहित तो है। इस प्रकार का चिन्तन राष्ट्रीय पर्यावरण चिन्तन है जिसकी चेतना प्रत्येक व्यक्ति में होनी चाहिये।

निर्वर्त्त्यते यैर्नियमाभिषेको
येभ्यो निपाञ्जलयः पितृणाम्।
तान्युञ्छषष्ठाङ्कितसैकतानि
शिवानि वस्तीर्थ जलानि कच्चित्।।

महाकवि कालिदास के कुमारसंभव के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में भारत राष्ट्र के उदात्त स्वरूप का वर्णन किया है–

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा,
हिमालयो नाम नगाधिराजः,
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य,
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।

अर्थात् भारत के उत्तरी भाग में देवता सदृश पूजनीय हिमालय नाम का एक बड़ा भारी पर्वत है जो पूर्व और पश्चिम तक फैला हुआ है, उसे देखकर ऐसा लगता है कि मानो वह पृथ्वी को नापने का मापदण्ड हो। यह विस्तृत भारतीय राष्ट्र की पहचान है। संस्कृत का कवि मातृभूमि के प्रति अनुराग रखता हुआ जब काव्य में विषय वर्णित करता है तो वह राष्ट्रप्रेम पात्रों के माध्यम से अभिव्यंजित होता है। नैषधीयचरितम् में श्रीहर्ष दमयन्ती के मुख से मातृभूमि के प्रति अगाध प्रेम को अभिव्यंजित करते हैं, वहाँ दमयंती कहती है कि आर्यों में श्रेष्ठ, आश्रमों में गृहस्थाश्रम के समान, इलावृत्तादि वर्षों के मध्य जिस भारत वर्ष की स्तुति करते हैं, उस भारत वर्ष में मैं दमयन्ती अपने पति नल की शुश्रुषा द्वारा सुख की तरंगों में मिश्रित धर्म का पालन करना चाहती हूँ।

वर्षेषु यद्भारतमार्यधुर्याः
स्तुवन्ति गार्हस्थ्यमिवाश्रमेषु।
तत्रास्मि पत्युर्वरिवस्ययाहं
शर्मोर्मिकिर्मीरितधर्मलिप्सुः।।

महाकवि माघ ने अपने शिशुपालवध नामक काव्य में भारत वर्ष का वर्णन करते हुये अपनी राष्ट्रीय भावना को प्रकट किया है जो कि पाठकों, सहृदयों, राष्ट्रीय जनों के हृदय में स्थित राष्ट्र के प्रेमांकुर को परिवर्धित कर रहा है। माघ ने लिखा है कि आकाश

स्पर्शी विकसित पुष्पों वाले चम्पकों के समान पिंगल स्वर्णमयी तटों को धारण करते हुये इसलिये सुमेरु पर्वत के मध्य भाग की शोभा को प्राप्त इस रैवतक पर्वत से भारत वर्ष इलावृत्त (सुमेरु पर्वत के चारों ओर भाग में स्थित देवभूमि विशेष) के समान सुशोभित होता है।

व्योमस्पृशः प्रथयता कलधौतभित्री
रुन्निद्रपुष्पचणचम्पकपिंगभासः।
सौमेरवीमधिगतेन नितम्बशोभामेतेन
भारतमिलावृतवद् विभाति।।

संस्कृत भाषा एवं साहित्य राष्ट्रीय चेतना से आप्लावित है जो कि भारतीय राष्ट्र को सभी प्रकार से समृद्ध एवं सुरक्षित रखने की प्रेरणा देता है। अथर्ववेद के मंत्र में बताया गया है कि हे परमात्मन्! सभी शत्रुओं को अपने बल से दबा दो, भावी शत्रुओं को नष्ट करो। इस राष्ट्र को समृद्धि से पूर्ण करो। सभी देव इसका अनुमोदन करें।

प्रान्यान् सप्तनान सहसा सहाय,
प्रायजातान जातवेदो नुदाव।
इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभाग्य,
विश्व एनमनुमदन्तु देवाः।।

यजुर्वेद में राष्ट्र के स्वरूप को व्यक्त करते हुये, राष्ट्र के लिये समृद्धि की कामना करते हुये परमात्मा से प्रार्थना की गयी है। इस सम्पूर्ण स्वरूप में राष्ट्र-प्रेम की भावना अभिव्यक्त होती है। ऋषि कहता है कि हमारे राष्ट्र में ब्रह्म तेज सम्पन्न ब्राह्मण उत्पन्न होवें, शासक वर्ग, शूरवीर, शत्रुसंहारक तथा महारथी होवें। धेनु दूध देने वाली होवें, बैल भार ढोने वाले होवें, अश्व शीघ्रगामी होवें, स्त्रियाँ सर्वांग सुन्दर व नेतृत्व गुण सम्पन्न हों, रथ में बैठे योद्धा विष्णु अर्थात् जीतने की इच्छा वाले हों, यजमान का पुत्र युवा हो तथा सभा में कुशल हो, वीर हो, समय-समय में मेघ हमारे लिये वर्षा करें, वनस्पतियाँ फलवती होकर पकें, राष्ट्र में योग अर्थात् अप्राप्त की प्राप्ति एवं क्षेम अर्थात् प्राप्त की रक्षा प्राप्त होवे।

आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषत्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाड्वानाशुः सप्तिः पुरन्ध्रिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो पर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पञ्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।

वेदों से लेकर सम्पूर्ण सुविस्तृत संस्कृत काव्य साहित्य में राष्ट्रीय चेतना एवं राष्ट्रीय प्रेम की भावना कवि की अभिप्रेत विषयवस्तु रही है जो कि आधुनिक काल में भारत राष्ट्र में राष्ट्रीय एकता के स्वरों को परिवर्धित कर गुंजायमान करती है। आज के युग में भी राष्ट्रीय एकता के लिये संस्कृत भाषा एवं साहित्य समृद्ध रूप से हमें प्रेरित करता है। ❑

(सह-आचार्य, संस्कृत, राज. महा., आहोर, जालोर)

स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान शिक्षा व्यवस्था

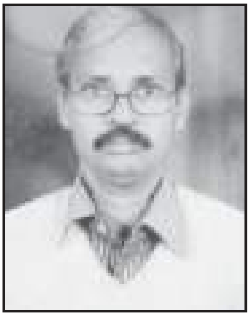

❑ **डॉ. राकेश कुमार शर्मा**

भारत माता की दासता की बेड़ियों को काटने में देश के लाखों लोगों के योगदान को भुला पाना संभव नहीं है, न ही उन अनाम उत्सर्ग करने वाले देश प्रेमियों का नाम गिना पाना ही संभव है। ऐसे में प्रश्न उठता है कि उन राष्ट्र प्रेमियों को प्राणोत्सर्ग की प्रेरणा आखिर कहाँ से मिलती रही? एक के बाद एक भारत माता के श्री चरणों में अपने प्राणों की आहुति देते रहे और प्राणोत्सर्ग का यही क्रम अनवरत चलता रहा। आजादी का आंदोलन निरंतर चलता रहा अंग्रेजी शासन के विरुद्ध व्यापारी के रूप में आने वाली ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रभुत्व जैसे-जैसे बढ़ा और कंपनी की आड़ में अंग्रेजी विक्टोरिया राज की स्थापना हुई, वैसे ही विरोध भी प्रारंभ हुआ। ऐसा नहीं था कि अंग्रेजों को बिना लड़े। भारत में साम्राज्य स्थापना का अवसर प्राप्त हो गया। उन्हें निरंतर प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। इतिहास इस बात का साक्षी है। यही प्रतिरोध 1857 तक आते-आते मुखर और प्रबल स्वरूप में देखने को मिला। भले ही आंदोलन विफल रहा हो लेकिन अंग्रेजी शासन को इस बात को सोचने के लिए बाध्य होना पड़ा कि अब भारत में लम्बे समय तक शासन कर पाना संभव नहीं होगा। स्वतंत्रता आंदोलन कहीं मुखर रहा तो कहीं यह आंदोलन भूमिगत रह कर चलाया जाता रहा।

स्वतंत्रता आंदोलन को आगे बढ़ाने में व्यक्ति परिवार, सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंन्द सरस्वती ने अपने सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से जन चेतना को यह कहते हुए झकझोर दिया कि स्वशासन विदेशी शासन से सैकड़ों गुणा बेहतर होता है।

इन्होंने वैदिक शिक्षा पर बल दिया। गुरु कुल व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के साथ ही एंग्लो वैदिक संस्थाओं की स्थापना भी आर्य समाज के माध्यम से हो सकी। भारत की स्वाधीनता के लिए चलाए गए प्रथम आंदोलन के साथ ही राष्ट्र भाषा हिन्दी के लिए भी राष्ट्रीय स्तर पर प्रयत्न किए जाने लगे थे। हिन्दी भाषा को बढ़ावा दिए जाने के प्रयत्न यह कहकर तत्कालीन साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा किए गए-**निज भाषा उन्नति और सब उन्नति को मूल।** उनका यह कहना अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी भाषा एवं अंग्रेजी राज का विरोध करना ही रहा है। हिन्दी भाषा शिक्षण के माध्यम से शिक्षण संस्थाओं एवं साहित्यकारों ने राष्ट्रीय भाव बोध को समाज तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन किया।

डी. एवी कॉलेज, लाहौर और गुरुकुल कांगड़ी जैसे शिक्षण संस्थान हो या फिर काशी

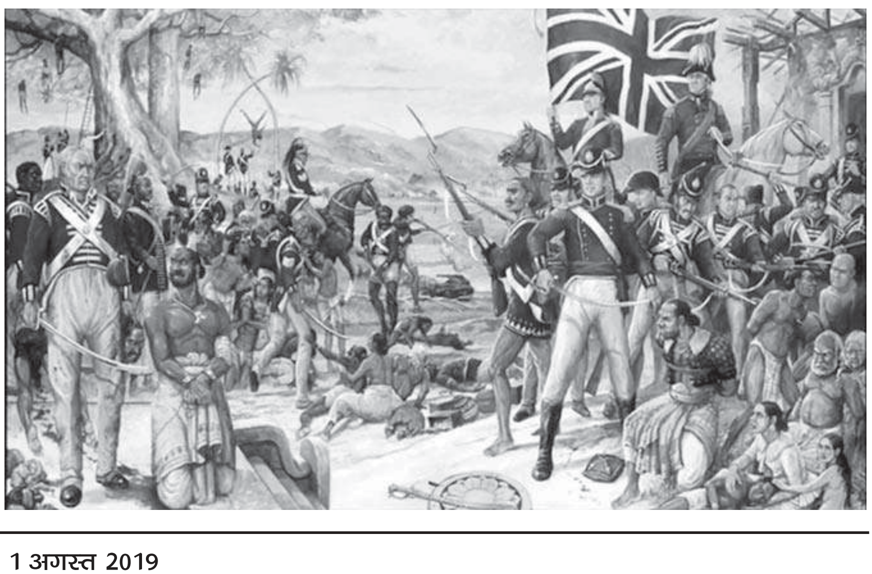

अंग्रेजों की स्वतंत्रता के काल खंड में जीवन मूल्य परक शिक्षा को बनाए रखने के उद्देश्य से अनेक महत्वपूर्ण उच्च कोटि के संस्थान स्थापित हुए जिनमें स्वामी श्रद्धानंद जी द्वारा 1902 में स्थापित गुरुकुल कांगड़ी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और रामकृष्ण द्वारा स्थापित विद्यालय है। रामकृष्ण के प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानंद ने तो शिक्षा का उद्देश्य ही चरित्र निर्माण बताया है। परतंत्रता के इसी कालखंड में पांडिचेरी में महर्षि अरविन्द ने अपने आश्रम में और रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने विश्व भारती में शिक्षा की भारतीय व्यापक दृष्टि को बनाए रखा।

हिन्दू विश्वविद्यालय, शांति निकेतन, बरेली कॉलेज जहाँ निरंतर अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने की योजनाएं बनती रही और योद्धा प्राणोत्सर्ग के लिए प्रेरित होते रहे।

अंग्रेजों ने भारत में धर्मान्तरण व ईसाईयत को बढ़ावा देने के उद्देश्य से हिन्दी भाषा को बढ़ावा दिया ताकि यहाँ के जनमानस की भाषा को ईसाईयत के प्रचार प्रसार का माध्यम बनाया जा सके लेकिन उनकी यह चाल उल्टी पड़ी और भारतीयों में आत्म गौरव का भाव भरने में हिन्दी सफल रही इसका श्रेय भी तत्कालीन शिक्षण संस्थाओं को दिया जा सकता है, जिन्होंने अपने विद्यार्थियों को हिन्दी का अनिवार्य शिक्षण कराया।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था का आधार वैदिक काल से ही धर्म एवं नैतिक जीवन मूल्यों का संरक्षण रहा है। गुरु शिष्य के गहरे सात्विक संबंध, सामूहिक जीवन बोध इसका मार्ग रहा। इसी पद्धति से कृष्ण-सुदामा, अर्जुन-अश्वत्थामा एक साथ अध्ययन कर सके। कौटिल्य ने चन्द्रगुप्त, विद्यारण्य ने हरिहर व बुक्का राय, और रामानन्द ने अपने बारह शिष्य पूरित तैयार किए। ''अमीरी-गरीबी, ऊँच-नीच, जाति-पाँति प्रगति में बाध्य नहीं बने। सनातन काल से अनवरत चली आ रही भारतीय ऋषि मनीषियों की परम्परागत अनुभव सिद्ध शिक्षण पद्धति से जीवन मूल्यों के प्रतिमान स्थापित किए उन्हीं प्रतिमानों पर चलकर स्वतंत्रता आंदोलन की बलि वेदी पर प्राणोत्सर्ग के लिए युवा पीढ़ी अग्रसर हो सकी। मानव जीवन के पुरुषार्थ चतुष्ट्य, धर्म के दस लक्षण तथा संस्कारों की योजना जीवन मूल्यों की शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग स्वीकार किया गया। इसी मूल्य आधारित शिक्षा ने भारत और विश्वभर में सभ्यता और संस्कृति'' के स्तर पर, मार्गदर्शन का कार्य किया।

मध्यकालीन भारत में बाह्य आक्रांताओं, लुटेरों और घुसपैठियों ने राजनीतिक आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से देश को नुकसान पहुंचाया, परन्तु भारतीय

शिक्षण तंत्र पाठशाला गुरु कुल, विद्वान और तीर्थस्थलों की वृहद् शृंखला ने मूल्यपरक शिक्षा एवं सदाचार के माध्यम से विश्व में अपना स्थान अक्षुण्ण बनाए रखा। यही नहीं तत्कालीन संतों, भक्तों और गुरुओं ने अपनी वाणी और उपदेशों में शिक्षा में जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा को सदैव सर्वोच्च स्थान प्रदान किया।

इसी मूल्यपरक भारतीय शिक्षण व्यवस्था पर क्रूर-प्रहार सर्वप्रथम ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्मिकों, ब्रिटिश प्रशासकों और ईसाई पादरियों एवं मिशनरियों तथा इतिहासकारों द्वारा एक साथ किया गया। भारत में ईसाईयत औपनिवेशिकरण के प्रयास में सबसे बड़ी बाधा उन्हें यहाँ का शिक्षण तंत्र लगा। उनकी कुटिल चालों से 19वीं शताब्दी तक भारतीय शिक्षा तंत्र में मैकाले ने बहुत बदलाव कर दिया।

अंग्रेजों की स्वतंत्रता के काल खंड में जीवन मूल्य परक शिक्षा को बनाए रखने के उद्देश्य से अनेक महत्वपूर्ण उच्च कोटि के संस्थान स्थापित हुए जिनमें स्वामी श्रद्धानंद द्वारा 1902 में स्थापित गुरु कुल कांगड़ी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और रामकृष्ण द्वारा स्थापित विद्यालय है। रामकृष्ण के प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानंद ने तो शिक्षा का उद्देश्य ही चरित्र निर्माण बताया है।

परतंत्रता के इसी कालखंड में पांडिचेरी में महर्षि अरविन्द ने अपने आश्रम में और रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने विश्व भारती में शिक्षा की भारतीय व्यापक दृष्टि को बनाए रखा। **इसी व्यापक दृष्टिकोण का उल्लेख 'भारत बोध' नामक दिल्ली में आयोजित कार्यक्रम में भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने कहा ''भारतीय सभ्यता'' मानवीय मूल्यों का पाठ पढ़ाती है। इसलिए भारत की बौद्धिक विरासत को स्थापित करना एक महत्वपूर्ण प्रयास है। सभी के प्रति सहिष्णुता, दया और मातृभूमि से प्रेम ही भारतीय सभ्यता के वास्तविक मूल्य हैं।** भारत की यही विशेषता है कि यहाँ सैंकड़ों भाषाएं और सभी मत-पंथ एक व्यवस्था के अंदर रहते हैं।'' उन्हीं के शब्दों में भारत का विचार सनातन ज्ञान की हमारी महान परम्परा से प्रवाहित होता आया है। हमारी सभ्यता के मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं। उन्होंने कहा कि भारतीय सभ्यता हमें 'सर्वे भवन्तु सुखिन: का संदेश देती है।

मेरी व्यक्तिगत मान्यता है कि शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत विद्यार्थियों को जीवन मूल्यों से जोड़कर ही राष्ट्र को पुन: विश्व गुरु के पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकेगा और इसका दायित्व शिक्षण से जुड़े शिक्षकों को ही उठाना होगा। ❑

(सह आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, दौसा)

भारतेन्दु युगीन काव्य हमारी जातीय चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति का काव्य है। भारतेन्दु मंडल के कवियों ने जनकल्याण, देशभक्ति, समाज सुधार, संस्कृति, गौरक्षा, बाल विवाह, विधवा विवाह से लेकर आर्थिक शोषण तक हर छोटे-बड़े विषय पर लेखनी चलाई। अंग्रेजी शोषण चक्र के खिलाफ कवियों ने सामूहिक अभियान छोड़ा। 'भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा' पुस्तक में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं - 'उन्होंने वे विषय दिए जिन पर ग्रामगीत लिखा जाना आवश्यक समझते थे। बालविवाह से हानि, जन्मपत्री मिलाने की अशास्त्रता, बालकों की शिक्षा, अंग्रेजी फैशन से शराब की आदत, भ्रूण-हत्या, फूट और बैर, बहुजातित्व और बहुभक्तित्व, जन्मभूमि, 'इससे स्नेह' इसके सुधारने की आवश्यकता का वर्णन, नशा, अदालत, स्वदेशी- हिन्दोस्तान की वस्तु हिन्दोस्तानियों को व्यवहार करना- इसकी आवश्यकता, इसके गुण, इसके न होने से हानि का वर्णन आदि।

भारतेन्दु मण्डल का योगदान

❑ प्रियंका कुमारी गर्ग

हमारे प्राचीन वाङ्मय में विद्या के लिए कहा गया है- 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या वही जो मुक्ति दिलाये। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की संपूर्ण बुनियाद हमारे स्वतंत्रता सेनानियों की उस शिक्षा में छिपी थी जिसने उन्हें अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति की उत्कट प्रेरणा दी, जो अंग्रेज व्यापार करने के लिए भारत में दाखिल हुए, वे ही भारत के शासक बन गए। 1857 का सामूहिक प्रयास भी असफल हो गया। परन्तु एक चिंगारी शेष रह गई। अंग्रेजी सरकार यह समझ चुकी थी कि भारतीयों को इस प्रकार दबाये रखा नहीं जा सकता। अंग्रेजों ने अपने लाभ के लिए अंग्रेजी शिक्षा, रेल, संचार साधन आदि का प्रचार प्रारंभ किया जो भविष्य में भारतीयों के लिए लाभदायक सिद्ध हुए। यही वह समय था जब यूरोप पुनर्जागरण की स्थिति से उबरा था। यूरोपीय साहित्य के पठन-पाठन से भारतीयों को पता चला कि वो कितने बड़े अज्ञान के संसार में जी रहे थे।

स्वतंत्रता आंदोलन के प्रारंभ में पत्र-पत्रिकाओं ने महती भूमिका निभाई। हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु मंडल के सभी प्रमुख कवि एवं लेखक पत्रकार थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वयं 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 'बालाबोधिनी' के संपादक थे।

पं. बालकृष्ण भट्ट प्रयाग से 'हिन्दी प्रदीप' का संपादन कर रहे थे। बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', मिर्जापुर से 'आनंद कादंबिनी' और 'नागरी नीरद' निकाल रहे थे। पं. प्रतापनारायण मिश्र कानपुर से 'ब्राह्मण' पत्रिका का संपादन कर रहे थे। दिल्ली से लाला श्री निवासदास 'सदादर्श' पत्रिका का संपादन कर रहे थे। इसी तरह भारतबंधु, भारतमित्र, सदाचार मार्तण्ड, भारत सुदशा प्रवर्तक, आर्यदर्पण जैसी अनेक पत्रिकाएँ, ज्ञानवर्धक लेख, कविता-कहानी, नाटक आदि द्वारा समाज का मार्ग प्रशस्त कर रही थी। यह वह समय था जब समाचार पत्र और साहित्यिक पत्रिकाएँ तत्कालीन परिस्थितियों का गहन विश्लेषण करते हुए समाज के सामान्य जन को उसका मर्म समझा रही थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के

योगदान के विषय में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं, 'भाषा का निखरा हुआ सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ। इससे भी बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और वे उसे शिक्षित जनता के साहचर्य में ले आये। नयी शिक्षा के प्रभाव से लोगों की विचारधारा बदल चुकी थी। उनके मन में देशहित, समाजहित आदि की नयी उमंगे उत्पन्न हो रही थी। काल की गति के साथ-साथ उनके भाव और विचार तो बहुत आगे बढ़ गए थे, पर साहित्य पीछे ही पड़ा था। भक्ति, शृंगारादि की पुराने ढंग की कविताएँ ही होती चली आ रही थीं। बीच-बीच में कुछ शिक्षा संबंधित पुस्तकें अवश्य निकल जाती थीं, पर देशकाल के अनुकूल साहित्य निर्माण का कोई विस्तृत प्रयत्न तब तक नहीं हुआ था। बंग देश में नए ढंग के नाटकों और उपन्यासों का सूत्रपात हो चुका था जिनमें देश और समाज की नयी रुचि और भावना का प्रतिबिंब आने लगा था। पर हिन्दी साहित्य अपने पुराने रास्ते पर ही पड़ा था। भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जीवन के साथ फिर लगा दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद पड़ रहा था उसे उन्होंने दूर किया।'

भारतेन्दु युगीन काव्य हमारी जातीय चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति का काव्य है। भारतेन्दु मंडल के कवियों ने जनकल्याण, देशभक्ति, समाज सुधार, संस्कृति, गौरक्षा, बाल विवाह, विधवा विवाह से लेकर आर्थिक शोषण तक हर छोटे-बड़े विषय पर लेखनी चलाई। अंग्रेजी शोषण चक्र के खिलाफ कवियों ने सामूहिक अभियान छोड़ा। 'भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परंपरा' पुस्तक में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं – 'उन्होंने वे विषय दिए जिन पर ग्रामगीत लिखा जाना आवश्यक समझते थे। बालविवाह से हानि, जन्मपत्री मिलाने की अशास्त्रता, बालकों की शिक्षा, अंग्रेजी फैशन से शराब की आदत, भ्रूण-हत्या, फूट और बैर, बहुजातित्व और बहुभक्तित्व, जन्मभूमि, 'इससे स्नेह' इसके सुधारने की आवश्यकता का वर्णन, नशा, अदालत, स्वदेशी- हिन्दोस्तान की वस्तु हिन्दोस्तानियों को व्यवहार करना- इसकी आवश्यकता, इसके गुण, इसके न होने से हानि का वर्णन आदि। इस विषय सूची से ही पता चलेगा कि भारतेन्दु देश के राजनीतिक आंदोलन की बहुत सी बातें पहले ही सोच चुके थे। समाज सुधार से लेकर स्वदेशी आंदोलन तक उनकी दृष्टि गई थी।' भारतेन्दु मंडल के कवियों ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद की प्रवृति की जमकर आलोचना की। इसके लिए उन्होंने खुसरो की तरह पहेलियाँ सुझाई तो मुकरियों को साहित्यिक गरिमा प्रदान की। बच्चन सिंह ने आलोचना पत्रिका के अंक-79 में लिखा – 'भारतेन्दु के गीतों, छंदों, मुकरियों आदि में अंग्रेजों की औपनिवेशिक अर्थनीति, छद्म व्यवस्था आदि का पर्दाफाश किया गया है। इन्हें हिन्दी की प्रारंभिक राजनीतिक कविताएँ कहा जा सकता है।'

अंग्रेजी जाति की विशेषता के संबंध में –

'भीतर-भीतर सब रस चूसें, हंसि-हंसि के तन मन धन मूसें।
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज।।'

अंग्रेजी भाषा और संस्कृति पर टिप्पणी दर्शनीय है– **'सब गुरुजन को बुरों बतावें। अपनी खिचड़ी अलग पकावें। भीतर तत्त्व न झूठो तेजी। क्यों सखि सज्न नहीं अंगरेजी।'** पढ़े लिखे बेरोजगारों का दर्द उस समय भी कम न था–

'तीनु बुलाए तेरह आवें। निज विपत्ता रोई सुनावें।।
आँखों फूठे भरा न पेट, क्यों सखि सज्जन नहिं ग्रेजुएट।।'

अंग्रेज कुटीर उद्योग धंधों को बंद कर कच्चा माल लेकर जा रहे थे और उसे ही परिष्कृत कर हमें बेच रहे थे। इस तरह आर्थिक शोषण की दोहरी मार भारत को झेलनी पड़ रही थी।

कल के कल बल छलन सो छले इते के लोग।
नित-नित धन सों घटत हैं बाढ़त हैं दुःख सोग।।
मारकीन मलमल बिना चलत कछू नहिं काम।
परदेसी जुलहान कै मानहु भये गुलाम।।
वस्त्र काँच कागज कलम चित्र खिलौने आदि।
आवत सब परदेस सों नितहि जहाजन लादि।।
इत की रुई सींग अरु चरमहि तित लै जाय।
ताहि स्वच्छ करि वस्तु बहु भेजत इतहि बनाय।।
तिनहि को हम पाइकै साजत नित आमोद।
तिन बिन छिन तृन सकल सुख, स्वाद बिनोद प्रमोद।।
कछु तो बेतन में गयो कछु राजकर माहि।
बाकी सब व्यौहार में गौरह्यो कछु नाहि।।
निरधन दिन-दिन होत है भारत भुव सब भांति।
ताहि बचाई न कोउ सकत निज भुज बुधि बल कांति।।

साम्राज्यवाद की समझ सामान्य जनता को इसी प्रकार की कविताओं के माध्यम से भारतेन्दु मण्डल के कवि दे रहे थे। इसी प्रकार पं. प्रताप नारायण मिश्र ने 'युवराज कुमार स्वागतंते' नामक

कविता में रहस्योद्घाटन किया कि किस प्रकार जनकल्याण के नाम पर जनता से टैक्स लिया जाता है पर वह लौटकर लंदन से आता नहीं। प्रिंस वेल्स के स्वागत गीत के माध्यम से सामान्य जन के दर्द की सच्ची तस्वीर उकेरी है–

'यह कर केवल हेतु यहै जो हयाँकर सब धन।
टिक्कस व्यापारादि पंथ ह्वे पहुँचत लन्दन।।
फिर हवो तै यहि ओर कबहुँ कैसेहु नहिं आवत।
बस याही ते दुख दारिद्र दुरदसा सताबत।।'

भारतेन्दु चूंकि उस युग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, वे प्रारंभ से ही समझ चुके थे कि अंग्रेज भारत की रीढ, हिन्दी भाषा पर प्रहार करना चाहते हैं अत: उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार पर जोर दिया। वे स्वयं उर्दू उपनाम 'रसा' का प्रयोग किया करते थे परन्तु हिन्दी के लिए कटिबद्ध थे। उन्होंने हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान रचते हुए अपना प्रसित सूत्र वाक्य लिखा–

'निज भाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल।।
पढ़े संस्कृत जतन करि पंडित भे बिख्यात।
पै निज भाषा ज्ञान बिन कहि न सकत एक बात।।
अंग्रेजी पढ़ के जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।।
यह सब भाषा काम की जब लौ बाहर बास।
घर भीतर नहिं करि सकत इन सों बुद्धि प्रकास।।
नारि पुत्र नहि समुझहि कछु इन भावन माहि।
तासो इन भाषन सो काम चलत कछु नाहि।।
उन्नति पूरी है तबहि जब घर उन्नति होय।
निज सरीर उन्नति किए रहत मूढ सब लोय।।'

भारतेन्दु मण्डल के लेखकों ने भाषाई उन्नति के लिए प्रयास किया जिसके परिष्करण का कार्य अगले चरण में सम्पन्न हुआ।

भारतेन्दु मण्डल के कवि एक पैनी दृष्टि रखते जो जातीय उमंग के त्योहारों में भी निहितार्थ खोज लेते थे। भारतेन्दु 'होली' शीर्षक कविता में लिखते हैं –

भारत में मची है होरी
इक ओर भाग अभाग एक दिसि होय रही झकझोरी।
अपनी-अपनी जय सब चाहत होइ परी दुहुं ओरी।।
दुन्द सखी बहुत बढ़ो री।
धूर उड़त सोइ अबिर उड़ावत सब को नयन भरो री।
दीन दशा अंसुअन पिचकारिन सब खिलार भिंजयो री।।
भींजि रहे भूनि लटोरी।
भई पतझर तत्त्व कहुं नाहीं सोइ बसंत प्रगटो री।
पीरोमुएभई प्रजा दीन हवै सोइ फूली सरसों री।।

स्पष्ट है यहाँ भारतेन्दु का उद्देश्य होली का उत्साह प्रकट करना नहीं है वरन तत्कालीन समाज की दुरावस्था का वर्णन करना जिसके जिम्मेदार जितने अंग्रेज हैं उतनी ही उनकी आलसी मनोवृत्ति भी। आगे भारतेन्दु लिखते हैं–

'आलस में कछु काम न चालिहे सब कछु तो बिनसौ री।
कित गयौ धन बल राज पाट सब कोरो नाम बचौरी।।'

यह वह समय था सब त्योहार उमंग, उत्साह के स्थान पर एक बेबसी, कुछ न कर पाने का भाव मन में ला रहा था। ऐसा ही भाव प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी 'फाग' नामक कविता में प्रकट किया है–

अब तो चेत करो रे भाई।
जब सर्वसु कठि गयो हाथ ते तब न उचित हुरिहाई।।
उपज घटे धरती को दिन दिन नाज नितहिं मँहगाई।
कहा खाय त्यौहार मनावैं भूखे लोग लुगाई।।
सब धन ढोयो जात विलायत रहयो दलिद्दर छाई।
अन्न वस्त्र कहँ सब जन तरसैं होरी कहाँ सोहाई।।

वस्तुत: भारतेन्दुयुगीन कवियों की कविता में सामान्य जन की मंगल कामना का भाव ही मुखरित हुआ है। इसके लिए उन्होंने पत्र पत्रिकाओं को शिक्षित करने का माध्यम बनाया। चाहे कवि रानी विक्टोरिया की जय कर रहा हो या युवराज के आगमन पर कविता लिख रहा हो उसके मूल में देशभक्ति निहित थी। राजभक्ति का आवरण जातीय जागृति का उपकरण मात्र था जिसकी आड़ में इन कवियों ने स्त्री शिक्षा, विधवा-विवाह, बाल-विवाह पर रोक, जाति-बिरादरीगत ऊँच-नीच की भावना का दमन, मद्यपान जैसी सामाजिक कुरीतियों का निषेध धार्मिक पाखंड और बाह्याडम्बर पर प्रहार जैसे विषयों पर जमकर कविताएँ लिखीं। तत्कालीन परिस्थितियों में इस प्रकार का लेखन कोई आसान काम न था। पर भारतेन्दु मण्डल ने इस चुनौतीपूर्ण कार्य को निभाया और कविता के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन में अपना योगदान प्रदान किया। ❑

(सह आचार्य, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

Invasions on knowledge tradition and education also was happening simultaneously. When the Mughals subsequently settled down in Bharat to rule, they not only brought their language and religion, but also tried to bring their ways of educations. All these three aspects of the alien rule could not make complete impact and that was only because of the strength of such three aspects from Bharatiya Sanskriti. But they did make significant impacts and that still remains as a strong matter of fact. It is interesting to note the origin of the so-called Urdu language as a result of struggle for separate identity of the Muslims.

Bharatiya Struggle for independence and the role of Education

❑ **Dr. T. S. Girishkumar**

Bharat had indeed a long struggle towards her in dependence from various alien occupation, the last of which were Europeans, primarily the British. These long struggles towards Swabhimani Bharat had various ingredients to it, and education becomes one most important ingredient to the freedom struggle of Bharat.

Bharat's occupation by various aliens from time to time

Bharat was a treasure house for two kinds of wealth, the wealth of knowledge and the wealth of diamonds and precious stones etc. This led to two kinds of invasions, invasion for knowledge and invasion for mundane wealth. Prima facie, it may appear that invasion for knowledge is welcome thing, but experiences demonstrate that with Bharat that was not really the case always. Many came here to learn, and many learned much and returned home. Some of them recreated their knowledge in their own culture, but not always acknowledging their origin and roots. Some simply repeated them as their own findings, and gained both name and fame in their respective cultures. Some simply translated Bharatiya texts in their respective languages, some acknowledging the original, and some not bothering to acknowledge.

Bharatiya Sanskriti suggests "Ano Bhadra, KrutavoYantuViswatha" (Rg Veda) implying that one is to welcome all noble thoughts no matter from where and by whom. Bharatiya acharyas also gave whole heartedly all their knowledge to all genuine seekers without considering what they shall do with the knowledge gathered.

Should one look at all world religious books, one can easily identify imprints in them borrowed from Bharatiya knowledge tradition, either implicitly or explicitly. One can bring forth many instances of such influences from

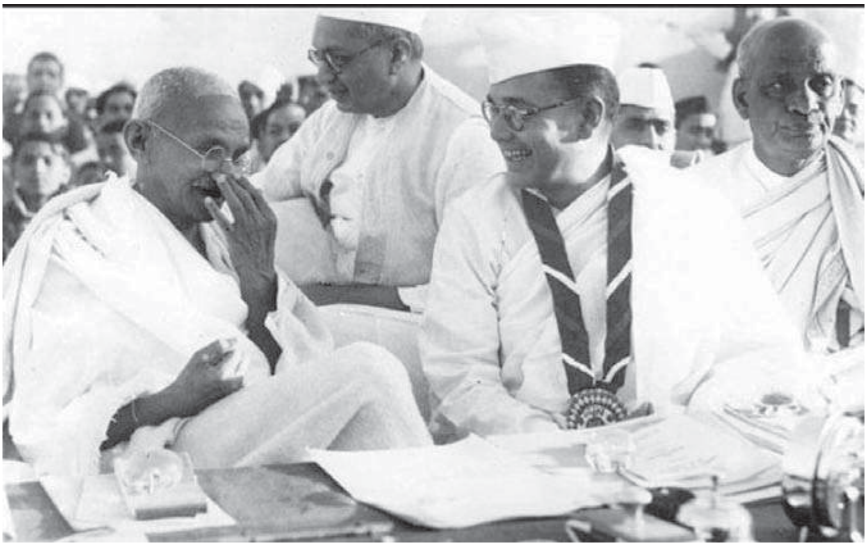

Bharatiya knowledge tradition, which is the Vedopanishadic knowledge tradition. Thus, carrying knowledge from Bharat was not always so innocent a process as it is suggested to appear. There were many intricacies built into them. The same is also the case with art, music, architecture and the like.

Invasions for material wealth came much after the invasions upon knowledge, which started from time immemorial. We have the instance from Greek philosophy of pre-Socratic period, where Thales of Greece, while working as a mercenary in Egypt comes across some Punjabi traders and learns about Bharatiya Darshana on the 'Panchabhutas'. Panchabhutas are five gross principles or even forces. But Thales understood that differently and presented them as 'five gross elements'. Even today, European philosophy speaks about five elements.

War time invasions

Perhaps the first military invasion was that of the Greek, Alexander, son of Phillip of Macedonia. He was severely defeated by the KshatraVirya of Bharat, and he could not reach back home alive. The Arab Qassim invaded Sindh primarily to spread Islam, and was very successful. Then came many fold invasions and they all were for two things, one to spread religion and two, for wealth. Since nobility were only a Hindu prerogative in this connection, people of Bharat remained at the receiving end all times.

Invasions on knowledge tradition and education also was happening simultaneously. When the Mughals subsequently settled down in Bharat to rule, they not only brought their language and religion, but also tried to bring their ways of education. All these three aspects of the alien rule could not make complete impact and that was only because of the strength of such three aspects from Bharatiya Sanskriti. But they did make significant impacts and that still remains as a strong matter of fact. It is interesting to note the origin of the so-called Urdu language as a result of struggle for separate identity of the Muslims. They started using the Persian script to write the commonly spoken language instead of Devanagari because the Hindu scriptures are written in Devanagari. One must see here that Persian is the language of Iran, which is a Shia Muslim majority area, where as the Muslims of Bharat are predominantly Sunnis.

Series of invasions in education

Along with different kinds of invasions upon Bharat, invasions upon education also took place. For example, forbidding education to women was an Islamic phenomenon. Though these invasions were barely commonly visible, they left serious puckers into Bharatiya education pattern as deep wounds. With the coming of the Europeans, invasions upon education became more systematic and organised. They constructed Churches and schools' side by side. They tried to educate young minds in their foreign languages, printed the Gospels in their new found presses, and gave them to the neo-educated young ones to read.

The Europeans had a serious drawback; they thought that they were the only civilised societies in their utter ignorance about Bharat, Bharatiya Sanskriti and Bharatiya knowledge tradition. They were convinced that Christianisation is the only way to civilise people around the world owing to their theological peculiarities. They were enthusiastic spreaders of the gospel, gospel to mean good spell – good news – that is the good news of the birth of Jesus Christ. Their theology taught them that is the only way to what they understand as redemption from their concept of the fundamental – principal – sin, which they treated as Cardinal. On the other hand, the Muslims at least had some vague idea that Bharat was ever better than everything

what they were.

Thus, missionary education became a serious problem to Bharat, as through the missionary education and McCauley Max Muller combination policy, they made programme to mentally subjugate Bharatiya Nagariks. Both were very confident that in just fifty years of time, there will be no 'idolater' left in Bharat and wrote so back to England. Indeed, the programme created to 'mentally subjugate' Bharat was a well thought out and meticulous one. McCauley used the German Max Muller very well to this end, and Max Muller brought out the notorious 'Aryan Invasion' theory. As per this theory, 'Aryans' came to Bharat from Europe and created Bharatiya Sanskriti and the Vedopanishadic knowledge tradition. Max Muller also created a physical appearance for the Aryans, like, golden hair, blue eyes and the like. Max Muller did a mistake of depicting Aryans in his own personal image, which best suited the Germans in general. (eventually, this depiction caused the complete reversal of the Aryan invasion theory by Max Muller, post the Franco Prussian war, which is another story)

The logic of the Colonial oppressors went this way: Aryans created the Vedopanishadic knowledge tradition and the entire Bharatiya Sanskriti. British are the descendants of the Aryans and therefore the British are fully entitled to rule Bharat. They were trying to 'intellectually legitimise' their domination of Bharat on the one hand, and trying to make the people of Bharat accept their imagined superiority. However, as no one can predict the inherent dynamics of Bharatiya Sanskriti, there came people like Maharishi Aurobindo who contradicted the spurious Aryan theory with the help of both Vedas and Upanishads. Later, historical researches also refuted this utter non-sense of Aryan theory with archaeological support and logic.

Contributions from education to the struggle for independence

The missionary education was completely for Christianisation through repeated suggestion of European as well as Christian superiority. They left no stone unturned in undermining and belittling whatever is Bharatiya. Obviously, such education was always obstructing any step towards freedom struggle. It still remains a fact that most of the freedom fighters were European educated and educated in the British pattern. On the face of it, it is impossible to imagine any support towards the freedom struggle, with the data and situation available to us objectively.

But then, the European education failed to estrange or alienate true Bharatiya spirit and sanskriti. This is because of the extreme strength of BharatiyaSanskriti that kept people strong enough to remain firmly rooted. Another aspect is Bharatiya family tradition, where Sanskriti is passed on from generations to generations. But the most important factor to this inner strength comes from nowhere other than the Hindu Dharma. The Hindu Dharma preserved, protected and transmitted Bharatiya knowledge tradition from generations to generations.

It is this Hindu Dharma that created a Shivaji Maharaj, Maharishi Aurobindo and many more like Vivekananda, who inspired Bharatiyas to uphold Swabhimana. Swabhimana to people of Bharat is based on the knowledge of BharatkiyaSankskriti and knowledge tradition, and that becomes in destroyable. Thus, all meticulous efforts from the colonial hegemony completely failed and the struggle for independence went along.

The education – knowledge imparted - that went supporting independence struggle is entirely from BharatiyaSanskriti both implicitly and explicitly. And this happened very spontaneously and smoothly, without even people being conscious of it. Examining the slogans used in independence struggle alone shall be very instructive to understand how much knowledge based Sanskriti had gone into them. (one of my students had done his PhD on this topic). One must remember, all these were done against the onslaught from Europeanised as well as missionary education, apart from The Congress party made up towards this very end at the instance of a British civil service officer, which could speak volumes about the cunning and planning of the colonial oppressors. So, European education was used to do everything to keep Bharat as their colony, but the very latent, but most powerful Bharatiya knowledge did defeat all their lies and efforts against the freedom struggle to eventually winning freedom.❑

(Member, Indian Council of Philosophical Research, New Delhi)

Role of Education during Indian Freedom Struggle

❑ **Sudhir Singh**

Britishers were afraid of ancient Indian traditional educational system which was not only inclusive but due to its quality attracted students from across the globe. Indian universities of Nalanda, Takhshila and Vikramshila was global quality tested higher educational institutions of learning which had attracted thousands of students not only from neighbouring countries but from all corners of the globe.

India is a country with a his tory of ancient civilization and have been known for its inclination towards education. In ancient Indian literatures, Guru has been given the status at par with the God. It is believed traditionally that god is giving birth but Guru is giving the vision to make this granted human life meaningful. Education has had been given unprecedented importance in Indian society and globally India was known for its quality education when present harbingers of modernity were in dark age. Needless to say that India achieved that status due to quality and moral based education.

Education is a light which ensure knowledge, inculcate human values and inspire us to fight against unjust acts. Our country remains under the yoke of foreign rule for many centuries. The Britishers were the last in the list of rulers who ruled India. They ruled for roughly 300 years. Freedom struggle started partially almost one hundred years ago before our independence. It got momentum in later part of the 19th century. That point of time literacy rate of India was bare minimum in contemporary world. It was due to gamut of factors but one of the most important among them was sustainable barbarian regimes in the middle era which has erased the imprint of our traditional educational system. It is significant that all leading light of freedom struggle were western educated but so charged that even after taking education from the western mode they not only remained

Indian by all counts but sacrificed their flourishing carrier for the independence of their motherland.

During the British rule, British parliament was formulating rules and regulations to sustain their rule in India. The English Education Act 1935 was a legislative Act of the Council of India, which came out aftera decision in 1835 by Lord William Bentinck, the then Governor- General of British India, to reallocate funds the East India Company was required by the British Parliament to spend on education and literature in India. They had not supported tradition of Hindu education and the publication of literature in the native learned tongues (Sanskrit and Persian); henceforward they were to support establishments teaching a Western curriculum with English as the language of instruction. Together with other measures promoting English as the language of administration and of the higher law courts (replacing Persian), this led eventually to English becoming one of the languages of India, rather than simply the native tongue of its foreign rulers.

In discussions leading up to the Act Thomas Babington Macaulay produced his famous Memorandum on (Indian) Education which was scathing on the inferiority (as he saw it) of native (particularly Hindu) culture and learning. He argued that Western learning was superior, and currently could only be taught through the medium of English. There was therefore a need to produce—by English-language higher education—"a class of people, who was no doubt Indian in blood and colour, but English in taste, in opinions, in morals and in intellect" who could in their turn develop the tools to transmit Western learning in the vernacular languages of India. Among Macaulay's recommendations were the immediate stopping of the printing by the East India Company of Arabic and Sanskrit books and that the Company should not continue to support traditional education beyond "the Sanskrit College at Benares and the Mahometan College at Delhi".the sole aim of the British rulers behind the introduction of the new education system was to dismantle the moral power of the Indian culture. Britishers were aware about the fact that Indian culture remains intact despite barrage of coercion and barbaric tactics of suppression. They were also willing to create a particular English educated class that could be the backbone for the sustainability of the British empire in India. They already had the elite class with them and wanted middle class people who could work for the smoothness of the empire.

Britishers were afraid of ancient Indian traditional educational system which was not only inclusive but due to its quality attracted students from across the globe. Indian universities of Nalanda, Takhshila and Vikramshila was global quality tested higher educational institutions of learning which had attracted thousands of students not only from neighbouring countries but from all corners of the globe. Millenia before the advent of the Christ, Indian scholars were globally known. Britishers were willing to dismantle this comprehensive process which has not only sustained the unity of India but also ensure the relevance of India as global guru. Peace and compassions were one of the few features of our educational system. Britishers even changed many things from the syllabus and forced our generations to read the saga that they were best human beings and it was their obligation to free us from the black age because we were in the dark age and away from humanism and they were duty bound to teach us humanity.

However, it is an open secret that majority of our freedom struggle leaders came from the new education system introduced by the British empire with the Macaulay system. They remained Indian by the core of heart because of the cultural imprints which has had been very strong in India since millennia.

RSS chief Mohan Bhagwat stressed that the leading figures of the freedom movement including Mahatma Gandhi and Rabindranath Tagore had been educated under a "western" system but were never influenced by it. Bhagwat was pointing out that it is not only the schooling, but a child's parents and the atmosphere at home and in the society also play a larger role in the upbringing. Various Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) outfits have spoken out against westernised education, demanding an overhaul of the education system.

There is a "consensus in the society" that the education system needs to be changed, Bhagwat said. "…the Macaulay education system, which we say is a foreign education system, produced Vivekananda, Lokmanya Tilak, Gandhiji and Rabindranath Tagore…So why did that school education system not influence them? The entire generation which participated in the freedom movement studied in the Macaulay education system," he said.

RSS chief is correct in his assertion but the fact remains close to the reality that through their own invented educational system, British empire had been successful to create BABU CLASS within Indian society to govern India smoothly.

The pure Indian values are even absent from our syllabus even after seven decades of our independence. New Education Policy report has been submitted to the government of India in May 2019. Modi led BJP has declared aims and objectives to revive ancient Indian glory. Modi led BJP has arrived into power again in May 2019. Indianness must be hallmark of our educational system. It is opportune moment when we can undo poisons of western education system. A country cannot become global power till it will not harness its universal values. It is possible only through more and more accommodation of Indian values into our educational system. ❑

(Dyal Singh College, University of Delhi)

Women in Indian Freedom Struggle : Role of Education

The power of education can be used in various ways. Whatever may be our forte, language, civics or even self-defense, education has the capability to help us reach our goal. A century has passed, the problems have changed, but the solution is clearer than ever - education. We need to take inspiration from these women who fought the most difficult problem of their day and age; a foreign rule on their homeland.

❑ **Aaradhana Singh**

The history of Indian freedom struggle would be incomplete without mentioning the contributions of Indian women. They fought with bravery and undaunted courage. Rani Laxmi Bai, Sarojini Naidu, Madam Bhikaji Kama, Aruna Asaf Ali, Sucheta Kriplani are few of those women who fought for the freedom of our country and had a marvelous educational background. The genesis of nationalism and feminism can be traced in the social reform movement initiated by Raja Ram Mohan Roy when the issues of women education, abolition of Purdah, widow remarriage etc. were raised.Social reformist movement in the 19th century and the nationalist movement contributed in promoting women's education.

Rani Laxmi Bai of Jhansi whose superb leadership laid an extraordinary example of real patriotism was educated at home as a child. She not only received traditional formal education but also received training in archery, horsemanship and self-defense which helped and prepared her to fight for what she believed in. A legendary figure associated with early resistance against the British Raj, she played an important role during the Indian Rebellion of 1857. Following the death of her husband, Maharaja of Jhansi Raja Gangadhar Rao Newalkar, British governor-general of India Lord Dalhousie refused to recognise the Maharaja's adopted son as his heir, and annexed Jhansi under their policy of the 'doctrine of lapse.' Lakshmibai gathered her forces and rose in revolt against the British, and joined the Indian Rebellion of 1857. Regarded as the first major resistance against the British rule, the Indian Rebellion of 1857 for the first time posed some kind of a threat to the British rule in India.

Sarojini Naidu was an exceptional student with knowledge of Urdu, Telugu, English, Bengali and Persian. She was an exceptional orator too who convinced many to join and support the movement. She topped the matriculation exam at the tender age of 12 years and for further studies she moved to London. She had expertise in a wide range of languages which helped her emerge as a famous writer, poet and orator. She joined the

Indian national movement and fought with the power of politics. In Bombay, she founded the Rashtriya Stree Sabha with Maniben Patel. She was also the elected president of the Indian National Congress in 1925, the first Indian woman to hold that post.

Madam Bhikaji Cama attended Alexandra Native Girl's English Institution and she was another woman with a flair for languages. She travelled across Europe for the cause of India's freedom. She was sent to Britain for medical care in 1902 as she was suffering from Plague (In an effort to provide care to the people suffering from Plague, she caught the Plague herself). In Britain, she came in contact with Dadabhai Naoroji through Shyamji Krishna Varma. She supported the founding of Indian Home Rule Society by Varma in 1905. She was told that her return to India would be prevented unless she promise not to participate in nationalist activities and she refused. She wrote, published and distributed revolutionary literature for the movement in exile in Paris. She attended the second Socialist Congress at Stuttgart, Germany on 22nd August 1907. In her appeal for human rights, equality and autonomy from Great Britain, she unfurled what she called the "Flag of Indian Independence". Her flag, a modification of the Calcutta Flag, was co-designed by Madam Bhikaji Cama, and Shyamji Krishna Varma, and later served as one of the templates from which the current national flag of India was created.

Aruna Asaf Ali is known as 'Grand Old Lady of India'.She got her education at Sacred Heart Convent in Lahore and then at All Saints' College in Nainital. Raised in a liberal, upper caste Bengali family that was part of the Brahmo Samaj and related to Rabindranath Tagore, Aruna Ganguly was extremely well educated. After her graduation, she worked as a teacher at the Gokhale Memorial School in Calcutta. Aruna Asaf Ali, one of the leading female figures of India's freedom movement, was a revolutionary who picked up the mantle of leadership during the Quit India Movement in 1942. She led many protests and agitations, both as an active member of Indian National Congress and Quit India Movement and as a political prisoner in Tihar Jail. Responding to Gandhi's call to "do or die", she defied the Britishers by hoisting the Tricolour on 9 August 1942 at the Gowalia Tank Maidan (now Azad Maidan) in Bombay, giving the movement one of the Quit India Movement's most enduring images.

The first woman Chief Minister of India, Sucheta Kriplani began the fight for our country during the Quit India Movement. Educated at Indraprastha College and St. Stephen's College, Delhi, Sucheta Kriplani became a Professor of Constitutional History at Banaras Hindu University and was a part of the subcommittee that drafted the Indian Constitution. Using her knowledge of constitution basics, she fought for the freedom cause with the power of law and policy, becoming an essential component of the Indian constitution we know today. She will always be remembered as a freedom fighter, a drafter of the Constitution, a chief minister and a path-breaker for women everywhere.

The power of education can be used in various ways. Whatever may be our forte, language, civics or even self-defense, education has the capability to help us reach our goal. A century has passed, the problems have changed, but the solution is clearer than ever - education. We need to take inspiration from these women who fought the most difficult problem of their day and age; a foreign rule on their homeland. ❑

(Department of Political Science,
University of Delhi, Delhi)

भारत के विचारों की लींचिंग

❑ प्रो. सतीश कुमार

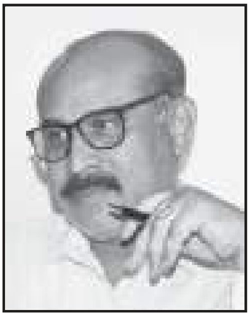

हिन्दू की बात करना भारत में साम्प्रदायिक माना गया वहीं मुसलमानों के हितों की बात करना धर्मनिरपेक्षता और प्रगतिशील माना गया। समाज को तोड़ने का काम प्रगतिशील विचारकों ने किया। उन्हें यह बताने की जरूरत नहीं पड़ी कि इस्लाम के पूर्व अफगानिस्तान और अरब देशों में किस धर्म का प्रसार था। जब इराक में शिव मंदिर की शिनाख़्त मिलती है तो यह बात खुद ब खुद सामने आती है कि भारत का सांस्कृतिक विस्तार न केवल हिमालय के देशों तक था, बल्कि इसके साये में पूरा हिन्द महासागर के देश भी शामिल थे। क्या इस बात की विवेचना नहीं होनी चाहिए? क्या हम ऐसा करते हैं तो साम्प्रदायिक बन जाते हैं? हमारी गलत सोच और पढ़ाई की वजह से नागालैंड, मिजोरम, आसाम, पंजाब की समस्याएँ उभरी।

पिछले कुछ वर्षों से मॉब लींचिंग पर देश भर में बहस छिड़ी हुई है। लोग धर्म के नाम पर मारे जा रहे हैं, तो कुछ लोग गौ हत्या के नाम पर बवाल मचाये हुए हैं। जिस देश की बुनियाद अहिंसा के रूप में गाँधी द्वारा रची गयी थी, उसका बेड़ा गर्क कर दिया गया। दूसरा गाँधी का सत्याग्रह भी राजनीति की तुरुप का ऐसी पत्ता बना कि आजादी के बाद उसका हर स्तर पर दुरुपयोग हुआ। गाँधी के शब्दों में सत्याग्रह सच का प्रतीक है जिसमें सम्पूर्ण त्याग की जरूरत पड़ती है। महज अपने विरोधी को तंग कर नीचा दिखाने के लिए नहीं, लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण है कि गाँधी के शास्त्रों का कितना दुरुपयोग हुआ। गाँधी गौ माता की पूजा को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखते थे जिसका दार्शनिक आधार भी था, लेकिन किसी विशेष सम्प्रदाय को गौ के नाम तंग किये जाने के भी विरोधी थे। भारतीय परम्परा और धर्म के घोर समर्थक थे। लेकिन इस भारतीय सोच को बौना बनाने का काम कब और कैसे शुरू हुआ, यह जानना भी उतना ही जरूरी है।

लिंचिंग किसी एक व्यक्ति या समुदाय या किसी विचारों का हो, वह भी उतना ही निंदनीय है। झारखण्ड में जब तबरेज अंसारी की हत्या हुई उस पर पूरा बुद्धिजीवियों का कुनबा लामबद्ध हो गया कि भारत पिछले 5 वर्षों में एक ऐसा देश बन चुका है, जहाँ पर अल्पसंख्यकों के लिए जीना दूभर हो गया है। प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर, सामाजिक वैज्ञानिक प्रो. जोया हसन का मानना है कि भारत में एक सुनयोजित ढंग से अल्पसंख्यकों को धर्म के ढाल की आड़ में तंग किया जा रहा है। बुद्धिजीवियों ने इस व्यवस्था की तुलना अमेरिका की 19 शताब्दी की सामाजिक ढाँचे से की है जहाँ पर गोरे लोगों के द्वारा नीग्रो पर खुलेआम अत्याचार किया जाता था। जबकि सच्चाई है कि जब कभी भी मुस्लिम अत्याचार की घटना झारखण्ड या उत्तर प्रदेश में आयी, सरकार ने फौरन करवाई की है। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने तो एक समिति भी बना दी है जो इस तरह की घटनाओं को बलपूर्वक रोक सके। लेकिन प्रश्न यहाँ पर उससे ज्यादा गंभीर है। प्रश्न यह है कि वर्षों से, दशकों से भारत की सोच को हलाल किया जाता रहा, उसके इतिहास को कुत्सित मानसिकता के साथ पढ़ाया जाता रहा, धर्म निरपेक्षता का अर्थ मुस्लिम तुष्टीकरण का महिमामंडन करना शेष था। भारत के निर्माताओं के विषय में गलत बातें बताई जाती रही। पहले आंबेडकर के हिन्दू विरोधी के रूप में रखा गया, जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने आंबेडकर की यथार्थ को सामने रखना शुरू किया तो वामपंथी बुद्धजीवियों की साँसे फूलने लगी। वही तरीका गाँधी के संदर्भ में अपनाया गया। अब लेफ्ट लिबरल टैगोर पर है। टैगोर के विचारों को भी तोड़ मरोड़कर पेश करने की कोशिश की जा रही है। टैगोर निश्चित रूप से एक मानवतावादी थे और राष्ट्रवाद को एक नकरात्मक नजरिये से देखते थे। लेकिन इसकी व्याख्या इन लोगों द्वारा हिन्दू विरोध के रूप में की जाने लगी जो सरासर गलत और बेमानी है। **टैगोर ने 1931 में एक भाषण में कहा था कि, दुनिया में दो ही ऐसे धर्म हैं जो अपने धर्म के सिवा और सारे धर्मों को छिन्न-भिन्न कर देना चाहते हैं, वे हैं इस्लाम और क्रिस्चियन। टैगोर ने पुनः हिन्दू धर्म की कमियों और इस्लाम की उग्र व्यवहार की भी चर्चा की थी। उन्होंने कहा था कि हिन्दू समुदाय हर तरीके से जातिगत विषमताओं में बँटा हुआ है, वहीं इस्लाम एकजुट है। भारत का मुस्लिम, टर्की का मुस्लिम या अफगानिस्तान का, सब एक सूत्र में बंधे हुए है, हिन्दू समुदाय जब तक अपने अपने कुनबों में बिखरे रहेंगे, वो इस्लाम के आक्रमण की बराबरी नहीं कर सकते।**

इस समस्या को समझने की लिए कई घटनाओं की चर्चा की जा सकती है, जहाँ से भारत एक स्वप्न को कैसे तोड़ने की तैयारी की गयी उस ढाँचे को कानूनी जामा पहनाया गया, झूठ को सच और सच को झूठ बनाकर भारत के बच्चों की सोच को बदला जाने लगा। कश्मीर, केरल, भारत के उत्तर पूर्वी राज्य की परिभाषा उसी सोच के अनुरूप बनायी गयी। जम्मू कश्मीर में

भारत के सैनिकों को ही आत्महंता बता दिया गया, पथरबाजों को मानवाधिकारों के कवच से सुरक्षित रखने की कोशिश की गयी। केरल को एक ऐसे राज्य के रूप में फैलने दिया गया जो मुस्लिम आतंकियों का केंद्र बन गया, विशेषकर कन्नूर जिले में। इनका सम्बन्ध सीधे आई.एस. के आतंकियों से था। हिन्दुओं की दिन दहाड़े हत्या होने लगी, यह सब कुछ वामपंथ सरकार की आँखों के सामने हो रहा था। उत्तर पूर्व के राज्यों को शरणार्थियों का अड्डा बना दिया गया। वोट की राजनीति ने लाखों लोगों को भारत में न केवल बसने की स्वच्छंद छूट दे दी बल्कि नागरिकता का अधिकार भी दे दिया। राज्यों की डेमोग्राफी देखते देखते बदल गयी। बहुसंख्यक अल्प सख्यंक बन गए। लाखों लोग अपने ही घर में बेगाने हो गए। लेकिन सवाल मुस्लिम समुदाय का था, इसलिए भारत की धर्मनिरपेक्षता उससे जुड़ी हुई थी, इसलिए किसी ने चूँ तक नहीं की, जिसने भी आवाज बुलंद की उसे दबा दिया गया। या उसे साम्प्रदायिक घोषित कर तिरस्कार किया गया।

पिछले 5 वर्षों से राष्ट्रवाद पर बात करना भी साम्प्रदायिकता के साँचे में आ गया। अगर आप अखंड भारत के सिद्धांत की बात करेंगे तो लोग आपको हिंदूवादी मानेंगे। क्या अखंड भारत की चर्चा उग्र राष्ट्रवाद या साम्प्रदायिकता है। सामाजिक विचारक और आर.एस.एस., मुस्लिम मंच के प्रमुख इंद्रेश कुमार का मानना है कि भारत के सच की विचारों की हत्या ही लिंचिंग की सही परिभाषा है, जो वर्षों से होती आ रही है। उनके शब्दों में, 'हम इतिहास पढ़ाने से डरते हैं, कोई स्कूल ऐसा नहीं है जो भारत की माइथोलॉजी को पढ़ता हो, एक मंदिर बनाने की लिए लाखों लोगों को मशक्कत करनी पड़ती है। हर धर्म का एक ठिकाना और मुख्यालय है। इस्लाम का मक्का-मदीना, क्रिश्चिनिटी का वेटिकन सिटी और सिखों का गोल्डन टेम्पल, लेकिन भारत की कण-कण में बसने वाले हिन्दुओं के लिए राम का जन्मस्थल रामजन्मभूमि राजनीतिक विवादों के घेरे में फँसा हुआ है, क्या यह लिंचिंग नहीं है? इतना ही नहीं हर उस सोच को तोड़ा गया जिसमें असल भारत की नींव रखने की बात कही।'

अगर हिन्दू की बात करना भारत में साम्प्रदायिक माना गया वहीं मुसलमानों के हितों की बात करना धर्मनिरपेक्षता और प्रगतिशील माना गया। समाज को तोड़ने का काम प्रगतिशील विचारकों ने किया। उन्हें यह बताने की जरूरत नहीं पड़ी कि इस्लाम के पूर्व अफगानिस्तान और अरब देशों में किस धर्म का प्रसार था। जब इराक में शिव मंदिर की शिनाख्त मिलती है तो यह बात खुद ब खुद सामने आती है कि भारत का सांस्कृतिक विस्तार न केवल हिमालय के देशों तक था, बल्कि इसके साये में पूरा हिन्द महासागर के देश भी शामिल थे। क्या इस बात की विवेचना नहीं होनी चाहिए? क्या हम ऐसा करते हैं तो साम्प्रदायिक बन जाते हैं? हमारी गलत सोच और पढ़ाई की वजह से नागालैंड, मिजोरम, आसाम, पंजाब की समस्याएँ उभरी। हमने आजादी के बाद भी अंग्रेजी सिद्धांत पर चलते रहने, कि भारत एक राष्ट्र था ही नहीं, और न ही बन सकता है। मुस्लिम लीग की 1940 की दो राष्ट्र सिद्धांत की आलोचना तकरीबन सभी बड़े नेताओं ने की थी। अगर हम भारत को एक राष्ट्र के रूप में मानते थे, तो भारत की पूर्व के राज्यों को उसी सूत्र में समझने की भूल क्यों हुई, जो राजनीतिक विद्वेष का कारण बन गया और दशकों तक लहूलुहान होता रहा।

आजादी के बाद की पुरोधाओं ने विविधता में एकता की बात खूब की, उसको इस तरीके से पेश किया गया कि भारत की आत्मा इसी में खुश है। नायपॉल की 'वन थाउजेंड म्युटिनी' की परिभाषा ही हमारी सटीक व्याख्या है। लेकिन एकता की बात पर चुप्पी साध ली गयी। यह बताने की कोशिश हुई नहीं कि हम भारतवासी एक हैं। हममें एक समानता है जो दक्षिण से लेकर उत्तर तक एक जैसा दीखता है। पूर्व से लेकर पश्चिम तक फैला हुआ है। **भारत की संस्कृति को जानबूझकर उपेक्षित रखा गया। साथ ही भारत के कई समुदाय को अलग थलग कर दिया गया। वनवासी समाज को हिन्दू समाज से अलग करने की थ्योरी को बल दिया गया। अर्थात् आदिवासी मूल निवासी हैं, और आर्यों ने आक्रमण कर उनके घर को उनसे छीन लिया और उन्हें बेघर कर दिया। इस कुत्सित मानसिकता ने ही आदिवासी समाज को मेनस्ट्रीम से अलग कर दिया। पहले अंग्रेजों ने फिर भारत के अंग्रेजीनुमा शासकों ने वनवासी समुदाय को अलग थलग रखा।** नक्सलवाद का उदय और उसमें आदिवासियों की शिरकत भी इसी वजह से बनी। अगर अंग्रेजों के सिद्धांत को तोड़ा जाता और सच बात बताई जाती तो इतनी दिक्कत नहीं होती। भारत के ज्ञान और मीमांसा की लगातार तौहीन होती रही। भारतीय ज्ञान अर्थात् परम्परागत, ज्ञान को दकियानूसी भी कहा गया। भारत के दर्शन को हाशिये पर रखा गया। जब अंग्रेजों ने कालीदास को महाकवि माना तो हम भी उन्हें विश्व कवि कहने लगे। जब टैगोर को नोबेल मिला तो हम उनका गुणगान शुरू कर दिए, जब शोपनहावर ने उपनिषद से प्रेरणा प्राप्त करने की बात कही तो हमने भी गीता और उपनिषद पढ़नी शुरू कर दी। हम आज तक विश्व राजनीति को समझने के लिए अंग्रेजों और अमेरिका द्वारा दिए गए सिद्धांत की नक्शे कदम पर चलते आ रहे हैं। इसलिए भारत को एक अखंड राष्ट्र कहने में हमें दिक्कत होती है। हम सार्क की बात करते हैं, यह भी मानते हैं कि सार्क के सभी देशों में एक समानता है, लेकिन उस समानता को भारत की एक संस्कृति से जोड़ने से परहेज करते हैं क्योंकि विदेशी सिद्धांत आपके विश्लेषण को शक की घेरे में डाल देगा, हम प्रश्नवाचक सम्बोधन से बचना चाहते हैं। ❑

(राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर)

भारत में उच्च शिक्षा की चुनौतियों की व्यापकता को ध्यान रखते हुए शिक्षा व्यवस्था में अभिनव परिवर्तन करने की आवश्यकता है। वर्तमान सरकार ने इस ओर तेजी से कदम बढ़ाना प्रारम्भ किया है, जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति, नवीन मान्यता प्रणाली, संकाय सदस्यों की नियुक्ति का अभियान शामिल है। उच्च शिक्षा के व्यापक हित को ध्यान में रखते हुए शिक्षा को प्रभावित करने वाले अनके अवयवों यथा शिक्षक, शिक्षार्थी, पाठ्यक्रम, शिक्षा शास्त्र, संसाधन, संचालन, परीक्षा एवं मूल्यांकन आदि के सम्बन्ध में व्यावहारिक योजना बनाने एवं उस पर कार्य करने की आवश्यकता है।

गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा

❑ **प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल**

शिक्षा व्यवस्था बुनियादी तौर पर इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक मनुष्य असीम दिव्य उर्जा से युक्त है और शिक्षा मानव की इसी दिव्य उर्जा के प्रति जागरूक करने की एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। इसीलिए मनुष्य के सर्वांगीण विकास को ही शिक्षा का उद्देश्य स्वीकार किया गया है। जिसके अन्तर्गत शिक्षा केवल जानने और करने तक सीमित न होकर साथ-साथ रहने एवं अपने व्यक्तित्व को सामर्थ्यवान बनाने की सीख को सम्मिलित करती है। परन्तु जब उच्च शिक्षा की स्थिति पर प्रकाशित प्रतिवेदनों पर गौर किया जाता है तो हमारी उच्च शिक्षा की दुर्दशा की कहानी स्पष्ट होती है। आज उच्च शिक्षा की गुणवत्ता हाशिए पर चली गई है। यह राष्ट्रहित में सोचने वाले सभी व्यक्तियों के लिए घोर चिन्ता का विषय है। कुछ चिन्ताएँ निम्नलिखित है -

असंगति (Disconnect) - भारत की वर्तमान उच्च शिक्षा खण्डों में बँटी हुई है और छात्र के सर्वांगीण विकास में एक बड़ी बाधा है। हमारे देश में स्नातक, स्नातकोत्तर, शोध, पेशेवर शिक्षा, तकनीकी शिक्षा तथा कॉलेज में शिक्षा, विश्वविद्यालय में शिक्षा, विशिष्ट संस्थानों जैसे आई.आई.टी, आई.आई.एम., आई.आई.एस. जैसे अनेक भागों में बँटी शिक्षा का उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर गहरा दुष्परिणाम देखने को मिलता है। यही नहीं अध्ययन, शोध एवं नवाचार को अलग-अलग करने के कारण प्राप्त अवसरों का लाभ नहीं उठाया जा पा रहा है। पूर्व प्राथमिक से लेकर शोध एवं नवाचार तक की शिक्षा में किसी भी प्रकार का कोई तालमेल नहीं है।

कमजोर संचालन (Poor Governance) - उच्च शिक्षा संस्थानों के कमजोर प्रबन्धन, नियमन एवं नेतृत्व का सीधा प्रभाव उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर दिखाई देता है। उच्च शिक्षण संस्थानों की स्वायत्तता में कमी आने, राजनैतिक एवं नौकरशाही का हस्तक्षेप बढ़ने, शिक्षक को शिक्षा के प्रबन्धन से अलग करने, शिक्षा के बाजारीकरण को प्रोत्साहन मिलने, नियमन का कोई व्यावहारिक साधन सरकार के पास नहीं होने से उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में कमी आई है। उच्च शिक्षा का प्रशासन एक तदर्थ व्यवस्था से चल रहा है और बदलती परिस्थितियों एवं शिक्षा के हितधारकों की अपेक्षाओं से बहुत दूर है। उच्च शिक्षा की बहुसंख्यक नियामक संस्थाओं की विद्यमानता भी कमजोर प्रशासन का एक बड़ा कारण है। भ्रष्टाचार एवं निजी शिक्षण संस्थाओं

की मनमानी ने भयावह स्थिति को जन्म दिया है।

हीनताबोधक पाठ्यक्रम (Poor Curriculum) – वर्तमान के पाठ्यक्रम एवं विषय सामग्री पर ध्यान दिया जाये तो हम पाते हैं कि यह परीक्षा–परक है। पाठ्यक्रम न तो भारत केन्द्रित है और न ही छात्र केन्द्रित। **डॉ. डी.एस. कोठारी के शब्दों में भारत के प्रबुद्ध वर्ग की गुरुत्वाकर्षण शक्ति भारत के बाहर केन्द्रित है। वह यूरो–केन्द्रित है, अतः जो कुछ भी छात्रों को परोसा जा रहा है वह यूरो–केन्द्रित ही है। अर्थात् हम अपने अतीत से सबक न लेकर पश्चिम में जो किया जा रहा है उसकी हूबहू नकल करने में रुचि रखते हैं। रटन्त विद्या एवं अंकों की प्रतिस्पर्धा बढ़ाने वाले पाठ्यक्रम में छात्र के जीवन को सुसंस्कृत बनाने एवं सर्वांगीण विकास का नितान्त अभाव है।** पाठ्यक्रम में स्थानीय कला, समस्या समाधान, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक ज्ञान, क्रिटीकल थिंकिंग, स्किल प्राप्त करने की सुविधा, नैतिक मूल्यों, स्वरोजगार, उद्यमिता एवं स्वावलंबन का अभाव दिखाई देता है। यहाँ तक कि भारत के गौरवशाली इतिहास, समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा, आध्यात्मिक विरासत, योग शिक्षा यहाँ तक कि संस्कृत भाषा को भी शिक्षा के पाठ्यक्रमों से अलग कर दिया है।

कमजोर शोध एवं नवाचार (Poor Research and Innovation) – मौजूदा शिक्षा व्यवस्था में शोध को पर्याप्त स्थान नहीं मिल पाया है। अध्यापन एवं शोध तथा शिक्षण संस्थानों एवं शोध संस्थानों के बीच दूरी के कारण इसने एक विकराल समस्या का रूप ले लिया है। आज शोध एवं नवाचार न तो नवीन ज्ञान का निर्माण कर रहा है और न ही सामाजिक उपयोगिता के बिन्दु पर खरा उतर पा रहा है। केवल शोध की डिग्री प्राप्त करने का साधन बनता जा रहा है। शोध एवं अनुसंधान के प्रति न तो कोई प्रेरणा है और न ही वातावरण।

अपर्याप्त संसाधन (Insufficient Intrastructure) – आज सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की लागत में निरन्तर वृद्धि हो रही है और राज्य की ओर से दी जाने वाली आर्थिक सुविधा में निरन्तर आनुपातिक रूप से कमी दिखाई दे रही है। पहले शिक्षा जो समाज का दायित्व था वह अब सरकार का दायित्व बनता जा रहा है। परिणामस्वरूप भौतिक एवं बौद्धिक संसाधनों का टोटा पड़ता दिखाई दे रहा है। उच्च शिक्षा नियमित एवं योग्य शिक्षकों, खेल के मैदान, पुस्तकालय, पुस्तकें, भवन, प्रयोगशालाएँ, शोध शालाएँ आदि की कमी से जूझ रही है और दूसरी ओर निजी संस्थाओं की तड़क–भड़क शिक्षार्थियों को आकर्षित कर रही है। शिक्षा को बाजार की दशाएँ प्रभावित करने लगी हैं।

भारत में उच्च शिक्षा की चुनौतियों की व्यापकता को ध्यान रखते हुए शिक्षा व्यवस्था में अभिनव परिवर्तन करने की आवश्यकता है। वर्तमान सरकार ने इस ओर तेजी से कदम बढ़ाना प्रारम्भ किया है, जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति, नवीन मान्यता प्रणाली, संकाय सदस्यों की नियुक्ति का अभियान शामिल है। उच्च शिक्षा के व्यापक हित को ध्यान में रखते हुए शिक्षा को प्रभावित करने वाले अनके अवयवों यथा शिक्षक, शिक्षार्थी, पाठ्यक्रम, शिक्षा शास्त्र, संसाधन, संचालन, परीक्षा एवं मूल्यांकन आदि के सम्बन्ध में व्यावहारिक योजना बनाने एवं उस पर कार्य करने की आवश्यकता है।

1. श्रेष्ठ शिक्षक (Best Teacher)

शिक्षक न केवल छात्रों के भविष्य का, बल्कि भविष्य के समाज का निर्माण करता है। शिक्षक में इतनी ऊर्जा होती है कि किसी साधारण छात्र को असाधारण योद्धा बना सकता है जो खुद का भाग्य विधाता बन सके। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था कि सच्चा शिक्षक वही है जो हमारे लिए सोचने में मदद करे, वह नहीं जो छात्र के दिमाग में तथ्यों को जबरन ठूँस दे बल्कि जो आने वाले कल की चुनौतियों के लिए छात्र एवं समाज को तैयार करे। इसीलिए तो कहा गया है कि शिक्षक जानकारी देता है, अच्छा शिक्षक समझाता है, बेहतर शिक्षक करके दिखाता है और श्रेष्ठ शिक्षक प्रेरित करता है। श्रेष्ठ शिक्षक को विषय के शिक्षक के स्थान पर समाज का शिक्षक बनना होगा।

भारतीय शिक्षा परम्परा में शिक्षक का अपना विशिष्ट स्थान है, उसे गुरु अथवा आचार्य जैसे शब्दों से पहचाना जाता है। शिक्षक का व्यक्तित्व बहुआयामी हो, वह शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक तथा चारित्रिक दृष्टि से सुदृढ़ हो तब ही वह श्रेष्ठ शिक्षक होगा। इसके लिए–

शिक्षक को स्वायत्तता देनी होगी ताकि वह स्वतन्त्र रूप में चिन्तन कर सके एवं अपने कार्यों में नवाचार ला सके।

शिक्षक को नवीनतम ज्ञान से अभिप्रेत करने एवं उसका सदुपयोग करने के लिए कार्य पर रहते हुए व्यावहारिक प्रशिक्षण की सुविधा दी जानी चाहिए।

शिक्षक की नियुक्ति के लिए न्यूनतम योग्यता पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है। सामान्य डिग्री के साथ उसकी मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं भावनात्मक संवेदनाओं, शिक्षा के प्रति समर्पण एवं भारतीय शिक्षा परम्परा के ज्ञान का मूल्यांकन करने की आवश्यकता है।

शिक्षक में शिक्षण की नवीनतम तकनीक का उपयोग करने की सिद्धता हो। शिक्षक छात्र के साथ चर्चा, प्रश्न–उत्तर, तर्क–वितर्क के माध्यम से उसकी प्रतिक्रिया जाने। शिक्षक को गहन अध्येता एवं परिश्रमी बनना होगा ताकि वह नवीन ज्ञान का सृजन कर सके।

अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में टिके रहने की सामर्थ्य पैदा करने के लिए देश के बाहर के शिक्षकों को हमारे यहाँ तथा हमारे देश के शिक्षकों का देश के बाहर के देशों में आवाजाही हो।

2. भारत केन्द्रित तथा छात्र केन्द्रित पाठयक्रम (Bharat Centric and Student Centeric Curriculum)

वर्तमान पाठ्यक्रम अत्यन्त नीरस, जड़, डराऊ संरचनायुक्त एवं पूर्व प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय शिक्षा तक के कक्षों एवं खण्डों में सिमटा हुआ है। हमारे पाठ्यक्रम एवं विषयवस्तु भारत केन्द्रित एवं छात्र केन्द्रित तो बिल्कुल ही नहीं हैं। भारतीय प्रतिमानों, भारतीयता, चरित्र और भारतीय चिन्तन से इसका दूर-दूर तक कोई सरोकार नहीं है। अत: वर्तमान शिक्षा के पाठ्यक्रम एवं विषय सामग्री को छात्र की आवश्यकता के अनुरूप बनाना होगा तथा भारत के उत्कृष्ट गौरव को प्रतिपादित करने वाला बनाना होगा।

खण्ड-खण्ड में बँटा पाठ्यक्रम एवं विषय सामग्री युवा शक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं के सम्पूर्ण उपयोग एवं नवीन ज्ञान के अर्जन में अत्यन्त बाधक सिद्ध हुई है। अत: समग्र एवं समावेशी शिक्षा प्रणाली को आधार बनाकर पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाना होगा।

शिक्षा के पाठ्यक्रमों में भारतीय जीवन मूल्यों, संस्कारों, चरित्र निर्माण, भारत के गौरव को बढ़ाने वाली बातों, जीवन कौशल, खेल आदि को उचित स्थान मिले। छात्र के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है कि पाठ्यक्रमों को एक विशिष्ट विषय तक सीमित न रखकर बहु-विषयक बनाना होगा और 16 संस्कार एवं 64 कलाओं को पाठ्यक्रमों में जगह देनी होगी। स्थानीय व्यक्तियों, किसानों, कलाकारों के स्थानीय ज्ञान को भी इसमें स्थान देना होगा। छात्रों में सामाजिक एवं राष्ट्रीय दायित्व का बोध विकसित करने वाली एवं सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं की ओर केन्द्रित करने वाली विषय सामग्री जोड़ने से छात्र के दिमाग की संकीर्णता समाप्त होगी। पाठ्यक्रमों में कौशल शिक्षा, स्वावलम्बन एवं उद्यमिता को केन्द्र में लाने की आवश्यकता है।

शिक्षा के पाठ्यक्रम शोध एवं नवाचार को प्रेरित करने वाले हो। पाठ्यक्रम ऐसे होने चाहिए जिससे संस्थाओं में एक ऐसी संस्कृति का निर्माण हो सके जहाँ छात्र अपने द्वारा सीखी गई बातों को समाज में उपयोग कर सके और उसे व्यावहारिक अनुभव मिल सके।

3. परीक्षा एवं मूल्यांकन (Examination and Evaluation)

प्राचीन काल में प्रचलित गुरुकुल पद्धति में शिक्षार्थी वर्षों गुरु के अनुशासित संरक्षण में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान अर्जित करता था और गुरु विद्यार्थी का समग्र मूल्यांकन करने के बाद ही समाज में लौटने की आज्ञा देता था। परन्तु पाश्चात्य-केन्द्रित वर्तमान परीक्षा एवं मूल्यांकन व्यवस्था छात्र के अन्तर्निहित ज्ञान का परीक्षण करने, बौद्धिक स्तर, नैतिक मूल्य, अभिरुचियों का निष्पक्ष मूल्यांकन करने में बिल्कुल ही असफल रही है। परीक्षा एवं मूल्यांकन पूरी तरह से रटन्त विद्या और समग्र मूल्यांकन के स्थान पर 'स्मरण शक्ति' पर आधारित है।

स्मृति परीक्षण की वर्तमान परीक्षा एवं मूल्यांकन व्यवस्था के स्थान पर तनाव रहित परीक्षा एवं सतत् एवं समग्र मूल्यांकन व्यवस्था लागू की जाये जिसमें विद्यार्थी के बौद्धिक स्तर, व्यावहारिक ज्ञान के साथ नैतिक मूल्यों, अभिरुचियों एवं नेतृत्व क्षमता एवं नवीन ज्ञान अर्जन करने की क्षमता का मूल्यांकन सम्भव हो सके। अंकों की होड़ को समाप्त करने के लिए अंक आधारित मूल्यांकन के स्थान पर ग्रेड आधारित मूल्यांकन हो।

4. शिक्षा-शास्त्र (Pedagogy)

शिक्षार्थी की सीखने की क्षमता पर शिक्षा-शास्त्र की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अत: शिक्षक शिक्षा-शास्त्र के आधुनिकतम विधियों में पारंगत हो और शिक्षार्थी की आवश्यकतानुसार उनका उपयोग कर सके।

शिक्षा-शास्त्र में ऐसा परिवर्तन करना अपरिहार्य है जिससे रटन्त विद्या पर रोक लगाया जाना सम्भव हो और सृजनात्मकता, वैज्ञानिक सोच एवं समस्या समाधान पर जोर हो। शिक्षा-शास्त्र को कौशल बढ़ाने एवं सामाजिक सरोकार से जोड़ने के साथ-साथ शिक्षार्थी के समग्र विकास को बढ़ावा मिलता हो।

शिक्षा-शास्त्र में आधुनिकतम प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाना सुनिश्चित हो।

5. सुशासन एवं स्वायत्तता (Good Governance and Autonomy)

शिक्षा एवं शिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता नवीन ज्ञान के सृजन की आधारशिला है और इस स्वायत्तता को हर हाल में बरकरार रखने के लिए सुशासन चाहिए। वर्तमान में उच्च शिक्षा का प्रबन्धन अत्यन्त पुरातनकालीन एवं कमजोर है। बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार उसमें बदलाव नहीं आया है। आज भी शिक्षण संस्थाओं को सरकारी विभागों के रूप में देखा जाता है और संस्थानों के प्रमुखों के चयन से लेकर पाठ्यक्रमों के निर्माण, छात्रों के प्रवेश, शुल्क के निर्धारण, भौतिक साधनों के विकास, शिक्षकों के चयन यहाँ तक कि शिक्षा की प्राथमिकताओं के निर्धारण में राजनेताओं, राजनैतिक दलों एवं नौकरशाही का हस्तक्षेप दिखाई देता है। उच्च शिक्षा की गुणवत्ता के लिए सुशासन एवं स्वायत्तता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिक्षा के बाजारीकरण पर प्रतिबन्ध लगे इसके लिए भी सुशासन आवश्यक है।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ एक लम्बे समय से शिक्षा व्यवस्था

के नियमन के लिए शिक्षाविदों से युक्त स्वतन्त्र एवं स्वायत्त नियामक शिक्षा आयोग की मांग करता रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2019 के प्रारूप में भी ऐसे आयोग की स्थापना की बात को स्वीकार किया गया है। अत: शिक्षाविदों से युक्त स्वतन्त्र एवं स्वायत्त राष्ट्रीय शिक्षा आयोग का निर्माण अविलम्ब किया जाये।

शिक्षकों को नवीन ज्ञान का सृजन करने एवं नवाचार के लिए प्रेरित करने के लिए पूर्ण स्वायत्तता देनी होगी।

शिक्षण संस्थाओं को शैक्षणिक, प्रशासनिक एवं वित्तीय स्वायत्तता हो परन्तु साथ ही उनकी जवावदेही भी सुनिश्चित की जाये।

शिक्षा की योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए मुख्य अधिशाषी अधिकारी नोकरशाही तन्त्र के स्थान पर शिक्षा क्षेत्र से ही हो। उदाहरण इस बात को पुष्ट करते हैं कि जहाँ भी शिक्षा की नीतियों का क्रियान्वयन शिक्षा के व्यक्तियों को सौंपा गया और पूर्ण स्वायत्तता दी गई वहाँ के परिणाम श्रेष्ठ रहे हैं।

शिक्षण संस्थाओं के लिए अच्छे प्रबन्धक/ प्रशासक मिल सकें इसके लिए शिक्षण प्रबन्धन/ प्रशासन करने वालों का एक अलग से कैडर सृजित किया जाये। शिक्षा सम्बन्धी सभी निर्णयों में शिक्षकों की सहभागिता सुनिश्चित की जाये।

6. शोध एवं नवाचार (Research and Innovations)

शिक्षा वह प्रक्रिया है जो ऐसे योग्य नागरिकों का निर्माण करती है जो समाज एवं राष्ट्र के लिए उपयोगी कार्य कर सके। इसके लिए नवीन ज्ञान का सृजन करने, शोध एवं नवाचार के उपयुक्त अवसर प्रदान किये जाने चाहिए।

वर्तमान में उच्च शिक्षा में जो शोध हो रहे हैं वे व्यावहारिकता एवं सामाजिक उपयोगिता के पैमाने पर खरे नहीं उतरते। शुद्ध विज्ञान के क्षेत्र में शोध करने वालों का टोटा दिखाई देता है परिणामस्वरूप नवाचार नहीं हो पा रहा है। शोध की गुणवत्ता भी संदेह के घेरे में है। अतः इस पर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है।

शोध के ऐसे विषयों का चयन करने की व्यवस्था हो जो समाज एवं राष्ट्र की समस्याओं के समाधान से सम्बन्धित हो। शोध के विषयों का विशेषज्ञ समिति द्वारा गहनता से परखने के पश्चात ही स्वीकार किया जाये।

शोध को प्रासंगिक बनाने के लिए उसे वित्तीय लाभ प्राप्त करने की व्यवस्था से अलग करने की आवश्यकता है।

शोध से प्राप्त इनपुट का उपयोग करने वाले व्यक्ति या संस्थान से प्राप्त होने वाली आय पर शोधार्थी का भी अधिकार हो।

शोध के लिए शोध कलस्टर स्थापित किये जायें तो बहु-अनुशासनात्मक शोधों को प्रोत्साहन मिलेगा एवं शोधार्थियों को एक ही स्थान पर समस्त सुविधाएँ मिल सकेंगी। इससे शोध एवं अनुसंधान करने की संस्कृति को प्रोत्साहन मिलेगा।

7. पर्याप्त संसाधन (Sufficient Resources)

उच्च शिक्षा प्रकारान्तर से समाज का उत्तरदायित्व थी परन्तु पश्चिमोन्मुखी विचार ने इसे पूर्णतया सरकार का दायित्व बना दिया है और उच्च शिक्षा केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों की प्राथमिकताओं में नहीं रही। परिणामस्वरूप अच्छे शिक्षक, खेल के मैदान, पुस्तकालय, शोध शालाएँ, प्रयोगशालाएँ, भवन आदि के लिए शिक्षण संस्थाएँ तरसती रहती हैं। शिक्षण संस्थाओं के पास पर्याप्त संसाधन हों इसके लिए केन्द्र सरकार जी.डी.पी. का कम से कम 6 प्रतिशत या कुल खर्चे का 20 प्रतिशत खर्च शिक्षा पर सुनिश्चित करे एवं राज्य सरकार अपने बजट का 30 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करे। इससे उच्च शिक्षा के लिए भी पर्याप्त धनराशि प्राप्त हो सकेगी। यह खर्च सरकार का श्रेष्ठ विनियोग सिद्ध होगा।

विभिन्न संकायों में शिक्षकों की भारी कमी है। इस कमी को दूर करने के लिए योग्य एवं नियमित शिक्षकों की नियुक्ति की जानी होगी। शिक्षकों की चयन-प्रक्रिया को त्वरित एवं निष्पक्ष बनाने के लिए भी कदम उठाने होंगे।

शिक्षण संस्थानों के भौतिक संसाधनों की पर्याप्त उपलब्धता के लिए समाज के दानवीरों, व्यावसायिक संस्थानों, पूर्व छात्रों आदि को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

8. शिक्षार्थी (Students)

उच्च शिक्षा की दृष्टि से उच्च शिक्षा भारत केन्द्रित हो, मानव का निर्माण करने वाली, छात्र का सर्वांगीण विकास करने एवं वैश्विक स्तर की सामर्थ्य पैदा करने वाली बने इसके लिए छात्रों की चिन्ता करना भी आवश्यक है।

जिसे ज्ञान अर्जित करना है, उसकी रुचि, समर्पण एवं आवश्यकता का भी उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उच्च शिक्षा सभी के लिए हो या फिर उन सीमित व्यक्तियों के लिए जो किसी विशिष्ट प्रकार की दक्षता प्राप्त करना चाहते हैं।

असल में उच्च शिक्षा का अवसर उन सभी छात्रों को प्राप्त होना चाहिए जो अपने आप को सामाजिक, व्यावसायिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक एवं एक सुयोग्य एवं जिम्मेदार नागरिक की भूमिकाओं के लिए तैयार करने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

छात्र केवल रोजगार के अवसरों की प्रतिक्षा में न रहे बल्कि उसे स्वावलम्बन एवं राष्ट्र के गौरव को बढ़ाने के लिए प्रतिबद्धता आये ऐसा वातावरण सृजित करने की आवश्यकता है।

विद्यार्थी की जीवन दृष्टि में इस प्रकार का परिवर्तन लाने की आवश्यकता है जिससे उसमें निर्भीकता, स्वतन्त्रता एवं सर्जनात्मकता विकसित हो तब ही उसका सर्वांगीण विकास सम्भव होगा। ❑

(अध्यक्ष, अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ)

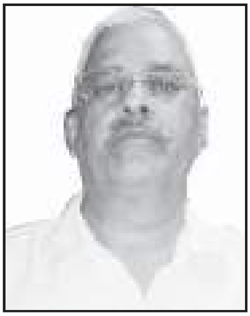

इस महाविद्यालय की यह विशेषता रही कि यहाँ संस्कृत वाङ्मय की समस्त शाखाओं तथा चारों वेद, धर्मशास्त्र, छः दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण, साहित्य आदि का अध्ययन-अध्यापन होता था। सन् 1946 ई. में आयुर्वेद कॉलेज की अलग स्थापना की गयी। महाराजा संस्कृत महाविद्यालय की स्नातक परम्परा में भारत प्रसिद्ध और विद्वान्, साहित्यकार, कवि, राज्याधिकारी, प्रशासक, नेता हुए हैं जिनमें से कई विद्वान् इसी महाविद्यालय में प्राध्यापक पद पर नियुक्त हो गये थे।

स्वतंत्रता आंदोलन काल में जयपुर की संस्कृत शिक्षा

❑ **डॉ. नाथू लाल सुमन**

ब्रिटिश शासनकाल में जब संस्कृत एवं अन्य प्रान्तीय भाषाओं के वर्चस्व को तोड़कर अंग्रेजी शिक्षा का प्रभुत्व स्थापित किया जा रहा था, ऐसे समय में सम्पूर्ण देश विशेषकर राजस्थान की देशी रियासतों के राजा-महाराजाओं एवं सेठों द्वारा संस्कृत शिक्षा की अलख जगायी जा रही थी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर आदि नगरों में वहाँ के राजाओं द्वारा पृथक-रूपेण संस्कृत महाविद्यालयों की स्थापना की गयी तथा राजस्थान के अनेक अंचलों विशेषकर शेखावाटी के छोटे-छोटे स्थानों पर भी वहाँ के धर्म प्राण एवं दानवीर सेठों द्वारा संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना की गयी। इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार कर भारत की संस्कारक्षम शिक्षा प्रणाली को तहस-नहस करने का प्रयास अंग्रेजों द्वारा किया जा रहा था ऐसे समय में संस्कृत शिक्षा संस्थानों की स्थापना का महनीय कार्य यहाँ के राजा-महाराजाओं एवं श्रेष्ठी वर्ग द्वारा किया गया। परिणाम स्वरूप हिन्दू संस्कृति एवं संस्कारों की रक्षा हो सकी। इसी क्रम में जयपुर में भी क्रमशः अनेक संस्कृत शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हुई जिनका विवेचन आगे किया जा रहा है।

जयपुर राज्य के स्थापना काल से ही यहाँ संस्कृत एवं ब्रज भाषा के लेखन, अनुशीलन, अध्ययन और अध्यापन की गौरवशाली परम्परा रही है। संस्कृत विद्वानों की परम्परा के कारण जयपुर को 'अपराकाशी' भी कहा जाता है। इसलिये यह सूक्ति प्रसिद्ध है- 'वाराणसी का जयपत्तनं वा।' इसका प्रमुख कारण यह है कि जयपुर संस्थापक सवाई जयसिंह ने सम्पूर्ण भारत से विशिष्ट विद्वानों को यहाँ लाकर बसाया था।

महाराजा संस्कृत कॉलेज- महाराजा रामसिंह द्वितीय ने सन् 1844 ई. में महाराज संस्कृत कॉलेज की स्थापना की जो बड़ी चौपड़ पर एक मंदिर के परिसर में चलता था। प्रारम्भ में इस महाविद्यालय में संस्कृत के साथ-साथ फारसी, उर्दू, अंग्रेजी आदि विषय भी पढ़ाये जाते थे। सन् 1852 ई. में हवामहल के सामने रामचन्द्र जी के मंदिर में पृथक्तया संस्कृत कॉलेज प्रारम्भ किया गया।

सन् 1791 ई. में वाराणसी में संस्कृत कॉलेज की स्थापना की गयी थी तत्पश्चात् सन् 1821 ई. से पूना डेक्कन कॉलेज तथा सन् 1824 ई. में कलकत्ता संस्कृत कॉलेज की स्थापना हुई। जयपुर का महाराज संस्कृत कॉलेज प्राचीनता में चतुर्थ क्रमाङ्क पर था, इस प्रकार नियमित संस्कृत कॉलेजों में प्राचीनतम कहा जा सकता है। अन्य नगरों में संस्कृत कॉलेजों की स्थापना इसके पश्चात्

हुई। अखिल भारतीय स्तर के विद्वानों का चयन कर उन्हें यहाँ प्राध्यापक एवं प्राचार्य के रूप में नियुक्त किया गया। श्री एकनाथ चौधरी मैथिल इस महाविद्यालय के प्रथम प्राचार्य थे। कालान्तर में श्री चन्द्रशेखर द्विवेदी प्राचार्य बने जो नौ वर्षों तक निरन्तर सेवा देने के पश्चात् पुरी के शंकराचार्य नियुक्त किये गये थे।

इस महाविद्यालय की यह विशेषता रही कि यहाँ संस्कृत वाङ्मय की समस्त शाखाओं तथा चारों वेद, धर्मशास्त्र, छः दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण, साहित्य आदि का अध्ययन अध्यापन होता था। सन् 1946 ई. में आयुर्वेद कॉलेज की अलग स्थापना की गयी। महाराजा संस्कृत महाविद्यालय की स्नातक परम्परा में भारत प्रसिद्ध और विद्वान्, साहित्यकार, कवि, राज्याधिकारी, प्रशासक, नेता हुए हैं जिनमें से कई विद्वान् इसी महाविद्यालय में प्राध्यापक पद पर नियुक्त हो गये थे। पं. शिवराम शर्मा यहाँ धर्मशास्त्र के प्राध्यापक थे जिनके ज्येष्ठ पुत्र पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने 'उसने कहा था' नामक हिन्दी कहानी लिखकर ख्याति अर्जित की। कनिष्ठ पुत्र पं. सोमदेव शर्मा यहाँ धर्मशास्त्र का अध्ययन करने के पश्चात् यहीं पर प्राध्यापक बन गये थे।

महाराज संस्कृत महाविद्यालय के प्राध्यापक अपने विषय के अध्यापन के साथ-साथ शोध, पत्रकारिता आदि विषयों में भी रुचि रखते थे। म.म. शिवदत्त शर्मा व्याकरण विषय के प्राध्यापक थे जो बाद में लाहौर ओरियण्टल कॉलेज में प्रोफेसर पद पर नियुक्त हो गये थे तथा इन्होंने लगभग 25 वर्षों तक निर्णयसागर प्रेस बम्बई से काव्यमाला सीरीज प्रकाशित की जिसके कारण पाण्डुलिपि रूप में विद्यमान अनेक संस्कृत काव्य सम्पादित होकर प्रकाश में आये। यहीं के विद्वान् समीक्षा-चक्रवर्ती पं. मधुसूदन ओझा ने वेद की विज्ञान परक अभिनव व्याख्या परम्परा प्रारम्भ की। राजगुरु एवं प्रोफेसर पद पर नियुक्त रहते हुए ओझा जी ने 'पोथीखाना' नामक राज्य पुस्तकालय के अध्यक्ष तथा विद्वत्सभा के संरक्षक के दायित्व का भी निर्वहन किया। वेदों के विज्ञान परक शोध विषय में ओझाजी ने शताधिक ग्रन्थों की रचना की। सन् 1902 ई. में महाराजा माधोसिंह जी के साथ ओझा जी भी इंग्लैण्ड की यात्रा पर गये थे। ओझा जी ने अपने वेद विषयक व्याख्यानों से इंग्लैण्ड के विद्वानों को बहुत प्रभावित किया। इनके ये व्याख्यान 'वेद धर्मव्याख्यान' नाम से प्रकाशित भी हुए हैं। भारत प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ओझा जी के ही शिष्य थे जो स्वयं भी महाराज संस्कृत महाविद्यालय में प्राध्यापक रहे। ओझा जी के ही एक शिष्य पं. मोतीलाल शास्त्री ने अपने गुरु की वेदविद्या के प्रसारणार्थ 'मानवाश्रम विद्यापीठ' की स्थापना की।

महाराज संस्कृत महाविद्यालय के विद्वान् प्राध्यापकों द्वारा सन् 1904 ई. में 'संस्कृत रत्नाकर:' नामक संस्कृत पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया जो 50 वर्षों तक निरन्तर चलता रहा। ज्योतिष विषय के प्राध्यापक अध्यापन के साथ-साथ जयपुर स्थित जंतर-मंतर (वेधशाला) के प्रभारी का दायित्व भी संभालते थे तथा विषय के प्रायोगिक शोध के लिये इस वेधशाला का उपयोग किया जाता था। जब दिल्ली एवं उज्जैन स्थित वेधशालाओं के पुनरुद्धार का अवसर आता था तब इन्हीं विद्वानों को सादर आमंत्रित किया जाता था। राजस्थान के प्रथम मुख्यमंत्री श्री हीरा लाल शास्त्री, काशी कॉलेज के वेद विभागाध्यक्ष श्री भवदत्त शर्मा इसी महाविद्यालय के छात्र थे। इसी महाविद्यालय के हिन्दी प्राध्यापक श्री प्रभु नारायण शर्मा ने सन् 1934 ई. में स्थानीय नाट्यगृह (राम प्रकाश) में संस्कृत नाटकों का मंचन प्रारम्भ किया।

इस प्रकार जयपुर का महाराज संस्कृत महाविद्यालय सम्पूर्ण राजस्थान ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष में संस्कृत शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बन गया था जहाँ उच्च अध्ययन एवं शोध की सुविधा उपलब्ध थी तथा जहाँ के विद्वान् शिक्षक सम्पूर्ण देश में ख्याति प्राप्त थे।

महाराजा कॉलेज – सन् 1893ई. में जयपुर में महाराजा कॉलेज की भी स्थापना की गयी जिसमें संस्कृत के साथ ही अन्य विषयों के भी स्नातकोत्तर स्तर के अध्यापन की सुविधा उपलब्ध थी। अपनी स्थापना के बाद से लेकर कालान्तर में राजस्थान विश्वविद्यालय का संगठक (विज्ञान) महाविद्यालय बनने तक इस कॉलेज का स्वरूप बहु विषयात्मक ही रहा। यहाँ भी संस्कृत के दिग्गज विद्वान् प्राध्यापक रहे। यहाँ के विद्वान् प्राध्यापक श्री हरिदास शास्त्री का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने महाकवि कुमारदास के जानकीहरण महाकाव्य जो कि पाण्डुलिपि श्रीलंका से लाकर सर्वप्रथम उसका सम्पादन किया। इस महाविद्यालय के छात्रों में म.म. गोपीनाथ कविराज सदृश विद्वान् भी थे जिन्होंने बंगाल से आकर यहाँ संस्कृत शिक्षा प्राप्त की, जबकि उस समय कलकत्ता एवं वाराणसी में संस्कृत कॉलेज विद्यमान थे किन्तु यहाँ के विद्वानों की ख्याति उन्हें यहाँ तक खींच लायी। गोपीनाथ कविराज जी अपने समय के तन्त्र के महान् विद्वान् थे जो काशी संस्कृत कॉलेज के प्राचार्य भी बने। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी एवं सद् गोपीनाथ पुरोहित भी इसी कॉलेज के छात्र रहे।

अन्य संस्कृत शिक्षण केन्द्र – जयपुर नगर में संस्कृत के उपर्युक्त शिक्षा केन्द्रों के अतिरिक्त सन् 1885 ई. में श्री दिगम्बर जैन संस्कृत कॉलेज की भी स्थापना की गयी जहाँ संस्कृत एवं जैन दर्शन के अध्ययन-अध्यापन की सुविधा उपलब्ध थी। इसी प्रकार सन् 1920 ई. में दादू महाविद्यालय की भी स्थापना की गयी जिसमें संस्कृत एवं आयुर्वेद के अध्ययन की सुविधा के साथ-साथ छात्रावास की सुविधा भी उपलब्ध थी। इस प्रकार स्वतंत्रता आंदोलन काल में जयपुर संस्कृत शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र रहा। ❑

(सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव, उच्च शिक्षा,
शासन सचिवालय, जयपुर)

महात्मा गाँधी जी के 150 वें जन्म वर्ष पर विशेष (भाग-11)

गाँधी के विचार और राष्ट्रवाद

❑ प्रो. सतीश कुमार

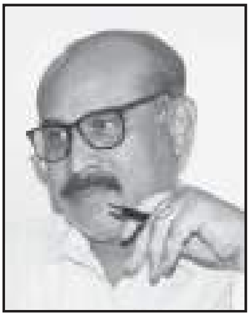

आज देश के सामने राष्ट्रवाद एक चुनौती बन गया है, जब परिवर्तन भारतीय अस्मिता को खोजने की हो रही है, तो उसे साम्प्रदायिक रंग से मलिन करने की साजिश भी हो रही है। भारत एक राष्ट्र के रूप में सबसे पुराना है। विश्व राजनीति में इसे सभ्यताओं वाला देश कहा जाता है। इसकी पहचान दुनिया के दर्द की दवा भी है, एक समझ भी है। लेकिन जरूरत पहले इस बात की है कि हम खुद को पहचानने की उलझनों में अटके हुए हैं।

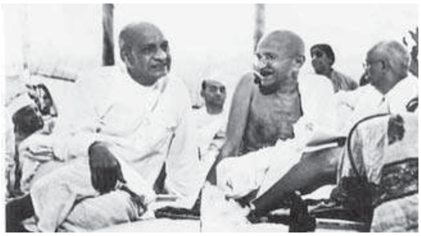

पिछले कुछ वर्षों से राष्ट्रवाद पर खूब गंभीर बहस चल रही हैं, कुछ बुद्धि जीवियों की नजर में देश राष्ट्रवाद के कारण संकट में है। वे तमाम लोग गाँधी के विचारों को उद्धृत करने की कोशिश करते हैं। जब गाँधी के तर्क उन पर उल्टे पड़ गये तो टैगोर को सामने ला खड़ा कर दिया, इसलिए इन दोनों महापुरुषों के विचार को जानना और समझना देश के लिए जरूरी है। गाँधी ने कहा कि राष्ट्र बनता कैसे है? गाँधी के शब्दों में, एक व्यक्ति अपने परिवार के लिए त्याग करता है, एक परिवार गाँव के लिए, गाँव समाज के लिए और समाज राष्ट्र के लिए। इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद अंग्रेजों की देन या भेंट नहीं है। भारत का राष्ट्रवाद अंग्रेजों के आने के पहले भी था और मजबूत था। गाँधी भारतीय राष्ट्रवाद के सन्दर्भ में दो बुनियादी बातें कहते हैं। पहली, भारत का राष्ट्रवाद स्वाभाविक और जोड़ने वाला है। हर तबके को साथ में लेकर मंजिल की ओर आगे बढ़ने वाला है। यहाँ किसी के साथ बैर नहीं और न ही वैमनस्य। इसलिए यह यूरोपीय व्यवस्था से बिल्कुल अलग है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात कही कि हमारे धर्म स्थलों की बड़ी अहम् भूमिका है राष्ट्र के निर्माण में हमारे ज्यादातर ऋषि-मुनि घुमंतू हुआ करते थे, जहाँ भी जाते थे, वहाँ के लोगों के साथ रच बस जाते थे। वहाँ पर आस्था के जुड़ाव के रूप में एक मंदिर या ऐसी संस्था की स्थापना करते थे जो लोगों को आपस में एक सूत्र की तरह जोड़ सके। यह प्रवृति उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत और पूरब से लेकर पश्चिम तक थी। यहाँ पर हिन्दू संस्कृति के चारों धामों द्वारा राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

यह दुखद संयोग है कि भारत में आजादी के बाद इस बात की नींव रखी गयी कि भारत को एकीकृत कर अंग्रेजी व्यवस्था के अधीन इण्डिया बनाया भारत नहीं। 70 सालों से हम किताबों में यही पढ़ते आ रहे हैं। हम अपनी हजारों वर्ष की सभ्यता को भूल गए, 14 वीं शताब्दी में यूरोप से संपादित आधुनिक राष्ट्र राज्य के दावानल में भारत की अस्मिता को बह जाने दिया गया। आज उसके कई दुष्परिणाम देखने को मिल रहे हैं। गाँधी ने स्पष्ट शब्दों में हिन्द स्वराज में लिखा है कि भारतीय सभ्यता से ज्यादा कोई भी सभ्यता इतनी सहज और मानवीय नहीं रही है जो हर तबके को जोड़ सके, जो एक राष्ट्र की परिभाषा के लिए सबसे जरूरी है। पश्चिम का राष्ट्रवाद तो अहंकार और अतिक्रमण पर टिका हुआ है, वहाँ पर सामन्जस्य नहीं है। उनकी बुनियाद एक दूसरे को तोड़ने और विखंडित करने की रही है। भारत तो उस दिशा में चला ही नहीं। जहाँ भी गए वहाँ पर अपनी सांस्कृतिक छवि एक सूत्र में बढ़ाने की रही है। पश्चिमी चिन्तक अर्नेस्ट रेनान का फ्यूजन सिद्धान्त गाँधी के विचारों की वकालत करता है। **गाँधी ने अंग्रेजी भाषा को भी राष्ट्रवाद के लिए दोषी माना। उनका बैर अंग्रेजी से नहीं था, बल्कि अंग्रेजियत से था। उन्होंने हिन्द स्वराज में लिखा है कि आजाद भारत में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग एक शक्ति के रूप में होगा जो जनसमूह के लिए घातक होगा। इसके बूते पर लोग अफसर, डॉक्टर और नेता बनेंगे जिनकी कोशिश अपना पेट भरने की होगी, राष्ट्र निर्माण में नहीं।** गाँधी ने कांग्रेस के बड़े नेताओं पर भी तंज कसे और कहा कि स्वस्थ मानसिकता के साथ राष्ट्र निर्माण की बुनावट कांग्रेस के माथे पर थी क्योंकि कांग्रेस देश को आजाद

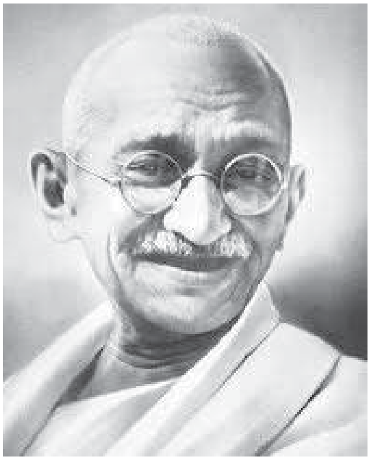

करने के साथ उन भावनाओं को राष्ट्र में समाहित करने के उत्तरदायित्व भी उनका ही था, लेकिन ऐसा होता दिख नहीं रहा है। गाँधी ने नरम दल और गरम दल की मुहीम की भी आलोचना की थी। राष्ट्र का निर्माण महज आजादी तक सीमित नहीं है। आजादी अंग्रेजों से और अंग्रेजीयत दोनों से मिलनी थी, लेकिन आज भी दूसरी आजादी के लिए तरस रहे हैं।

नीति बनाने वालों ने अनेकता में एकता सिद्धांत दिया। खूब जमकर भारत की अनेकता में एकता पर किताबें लिखी गयी, यह भी कहा जाने लगा की भारत सैकड़ों टुकड़ों में बना हुआ है, कहीं जाति में तो कहीं धर्म पर तो कही रंग और क्षेत्र के आधर पर। नायपॉल की 'वन मिलियन म्यूटनिज' जैसी पुस्तक लिखी गयी, जिसमें लिखा गया कि यहाँ पर हर 10 किलोमीटर पर एक अलग-अलग भारत दिखता है। राजनीतिक पार्टियाँ भी इस सिद्धांत पर कड़ी हो गयी जो जाति और धर्म के कोटरों में बँट गयी। विविधता फोकस बन गयी और एकता उसमें छुपा दी गई। इस बात की चर्चा ही बंद हो गया कि भारत एक राष्ट्र के रूप शताब्दियों से एक रहा है। गाँधी के तर्क को तोड़ मरोड़कर कर पेश किया गया। जब गाँधी के सिद्धांत वामपंथियों के समीकरण में फिट नहीं हुआ तो उन्होंने टैगोर को अपना लिया। टैगोर एक मानवतावादी चिन्तक थे। उनकी नजर में राष्ट्र के कारण लोगों को तकलीफें होती है। चूँकि टैगोर जापान और पश्चिमी राष्ट्रवाद के हिंसक प्रवृतियों से दुखी थे। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान हुए खौफ़नाक हिंसा के कारण उन्होंने राष्ट्र को मानवता के लिए अवरोधक माना। लेकिन टैगोर के तीनों नॉवेल में भारतीय राष्ट्रवाद की प्रशंसा है। उन्होंने कहा भी है कि हिन्दू संस्कृति के बल पर ही भारत की नींव गढ़ी जा सकती है।

आज देश के सामने राष्ट्रवाद एक चुनौती बन गया है, जब परिवर्तन भारतीय अस्मिता को खोजने की हो रही है, तो उसे साम्प्रदायिक रंग से मलिन करने की साजिश भी हो रही है। भारत एक राष्ट्र के रूप में सबसे पुराना है। विश्व राजनीति में इसे सभ्यताओं वाला देश कहा जाता है। इसकी पहचान दुनिया के दर्द की दवा भी है, एक समझ भी है। लेकिन जरूरत पहले इस बात की है कि हम खुद को पहचानने की उलझनों में अटके हुए हैं। दादी नानी की कहानियों में एक भारत वर्ष की कहानियों को हमने सुना, लेकिन जैसे ही औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के अंग बने वहाँ यह सिखाया गया की ये कहानियाँ मनगढंत है, यह महज मिथ्या है। ऐसा कुछ भी नहीं था। फिर हमें 15वीं शताब्दी के यूरोप के चिंतकों और घटनाओं के सामने खड़ा कर दिया जाता है, जहाँ से हम अपनी रोजी रोटी के साथ राष्ट्र की परिभाषा को गढ़ते और अपने बच्चों को सिखाते हैं। आज जरूरत इस बात की है कि गाँधी के सपनों और विचारों का भारत हमारे हाथ से रेत की तरह फिसलता जा रहा है, रोजी रोटी की समस्या राष्ट्र पर हावी है, इसे जोड़ने की जरूरत है और अंगीकार कर गाँधी के कर्ज को पूरा करने की जरूरत है। ❑

(प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान)

श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय (सी.टी.ई.)

केशव विद्यापीठ जामडोली जयपुर, नैक ग्रेड-ए

केन्द्र प्रवर्तित योजनान्तर्गत भारत सरकार से क्रमो. संस्थान

दूरभाष: 0141-2680466 (कार्यालय), 0141-2681583 (प्राचार्य)

वेबसाइट: www.shriagrasenpgttcollegecte.com ई-मेल ctejamdoli@gmail.com

संस्था अन्तर्गत संचालित विभिन्न पाठ्यक्रम

- एम.एड. द्वि-वर्षीय पाठ्यक्रम
- बी.एड. द्वि-वर्षीय पाठ्यक्रम
- चार वर्षीय इंटीग्रेटेड बी.एससी.-बी.एड. एवं बी.ए. बी.एड. पाठ्यक्रम
- डी.एल.ई.डी. (बी.एस.टी.सी) द्वि-वर्षीय पाठ्यक्रम
- राजस्थान विश्वविद्यालय से सम्बद्ध शोध केन्द्र
- केन्द्र प्रवर्तित योजनान्तर्गत सृजित सी.टी.ई. संस्थान
- इग्नू अध्ययन केन्द्र (बी.एड., एम.एड., एम.ए. (शिक्षा) इत्यादि)
- M.I.O.S. का D.L.E.D. अध्ययन केन्द्र
- RKCL का RS-CIT अध्ययन केन्द्र

संस्था की विशिष्ट उपलब्धियाँ

- नैक द्वारा 'ए' ग्रेड प्राप्त संस्थान
- भारत सरकार द्वारा सीटीई के रूप में क्रमोन्नत संस्थान
- राजस्थान विश्वविद्यालय के अन्तर्गत स्थापित शोध केन्द्र

संस्था अन्तर्गत उपलब्ध सुविधाएँ

- छात्र-छात्राओं हेतु पृथक छात्रावास व्यवस्था
- कम्प्यूटर प्रशिक्षण की सुविधा
- पुस्तकालय सुविधा
- शैक्षिक तकनीकी प्रयोगशाला
- मनोविज्ञान प्रयोगशाला
- आर्ट एण्ड क्राफ्ट प्रयोगशाला
- स्वापत्र प्रकोष्ठ, परामर्श प्रकोष्ठ, महिला प्रकोष्ठ
- शोध एवं प्रकाशन
- गणित एवं भाषा प्रयोगशाला
- संस्कार केन्द्र

डॉ. रामकरण शर्मा	सूर्यनारायण सैनी	डॉ. रीटा शर्मा
अध्यक्ष	मंत्री	प्राचार्य

अ.भा. राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के आह्वान पर देश भर में दिये ज्ञापन

माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन केन्द्र व राज्य स्तर पर हो

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ ने माध्यमिक संवर्ग के शिक्षकों की समस्याओं को लेकर 15 जुलाई 2019 को देश के सभी जिला मुख्यालयों पर कलेक्टर के माध्यम से प्रधानमंत्री, मानव संसाधन विकास मंत्री, राज्यों के मुख्यमंत्री व शिक्षामंत्री को 21 सूत्रीय माँगों का ज्ञापन सौंपकर उनके शीघ्र निराकरण की माँग की है। इस अवसर पर सभी जिला मुख्यालयों पर बड़ी संख्या में शिक्षकों की उपस्थिति रही। संगठन के अध्यक्ष प्रो. जे.पी. सिंघल ने बताया कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के ज्ञापन में प्रमुख रूप से केन्द्र एवं राज्य स्तर पर स्वायत्त माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन, केन्द्र सरकार द्वारा जीडीपी का 10 प्रतिशत एवं राज्य सरकार द्वारा 30 प्रतिशत व्यय करना, केन्द्रीय शिक्षकों के समान सातवें वेतन आयोग की संस्तुति के आधार पर सभी राज्यों के शिक्षकों को वेतनमान एवं अन्य भत्ते प्रदान करना व वेतन विसंगतियों को दूर करना, नई पेंशन योजना को बंद कर पुरानी पेंशन योजना लागू करना, सेवा निवृत्ति आयु पूरे देश में एक समान 65 वर्ष करना, समान कार्य समान वेतन के लिए राष्ट्रीय नीति का निर्धारण, सम्पूर्ण देश में समान सेवा शर्तें एवं अन्य सुविधाओं में एकरूपता, माध्यमिक शिक्षकों एवं संस्था प्रधानों के रिक्त पदों को भरना, माध्यमिक शिक्षा के निजीकरण की आड़ में शिक्षा के व्यापारीकरण पर रोक आदि माँगे हैं।

21 सूत्रीय माँग-पत्र

1. स्वायत्त माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन केंद्र एवं राज्य स्तर पर किया जाए।
2. सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का दस प्रतिशत केंद्र सरकार द्वारा एवं राज्य अपने बजट का 30 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय सुनिश्चित करें।
3. केंद्रीय शिक्षकों के समान सातवें वेतन आयोग की संस्तुति के आधार पर सभी राज्यों में शिक्षकों को वेतनमान एवं सभी तरह के देय भत्ते समान रूप से दिया जाएँ और छठे एवं सातवें वेतनमान में उत्पन्न विसंगतियों को तत्काल दूर किया जाए।
4. नई पेंशन योजना को वापस लिया जाए और पुनः पुरानी पेंशन योजना लागू की जाए ताकि सेवानिवृत्ति उपरान्त शिक्षक आर्थिक रूप से स्वतंत्र रह सके।
5. इस समय देश के सभी राज्यों में माध्यमिक शिक्षकों एवं संस्था प्रधानों के हजारों पद रिक्त पड़े हैं। अतः नियमित नियुक्ति की प्रक्रिया तेज की जाए ताकि शिक्षक गुणवत्ता स्थापित की जा सके।
6. माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली व्यावसायिक, शारीरिक शिक्षा एवं कंप्यूटर शिक्षा के लिए नियमित शिक्षकों की नियुक्ति की जाए।
7. समान कार्य के लिए समान वेतनमान के सिद्धान्त का पालन करने हेतु राष्ट्रीय नीति निर्धारित की जाए तथा संपूर्ण देश में समान सेवा शर्तें एवं अन्य सुविधाओं में एकरूपता लाई जाए एवं वेतन प्रतिमाह पहली तारीख को खाते में जमा हो जाए यह सुनिश्चित किया जाए।
8. माध्यमिक शिक्षा में निजीकरण की आड़ में बढ़ते व्यापारीकरण को रोका जाए।
9. राज्यों के शिक्षकों को केंद्रीय शिक्षकों की भांति चिकित्सकीय भत्ता, अस्पतालों में निशुल्क भर्ती की सुविधा प्रदान की जाए।
10. समग्र शिक्षा अभियान में राजकीय एवं सहायता प्राप्त विद्यालयों में भेदभाव न करके उनको समान सुविधा दी जाए।
11. संपूर्ण देश में सेवानिवृत्ति आयु एक समान 65 वर्ष की जाए।
12. शिक्षकों को गैर शैक्षिक कार्य से मुक्त रखा जाए।
13. शिक्षा कैडर बनाया जाए।
14. पदोन्नति प्रक्रिया को सरल बनाया जाए एवं समयबद्ध की जाए।
15. चाईल्ड केयर लीव के स्थान पर फैमिली केयर लीव की सुविधा दी जाए।
16. शिक्षा अधिकार अधिनियम के तहत छात्र शिक्षक अनुपात 30:1 के स्थान पर कक्षावार किया जाए।
17. स्व वित्त पोषित शिक्षा संस्थान की कुल आय का 80 प्रतिशत शिक्षकों के वेतन पर खर्च किया जाए।
18. संपूर्ण शिक्षा एक ही मंत्रालय के अधीन हो।
19. G.P.F. में जमा धन राशि से ऋण बैंक में जमा धन की तरह आहरण का प्रावधान किया जाए ।
20. C.C.E. (ग्रेडिंग सिस्टम) हटाया जाए।
21. उच्च योग्यताधारी शिक्षकों को अतिरिक्त वेतन वृद्धि दी जाए।

गतिविधि

'भारतीय महिला : दिशा और दृष्टि' विषयक व्याख्यान जयपुर में सम्पन्न

शैक्षिक मंथन संस्थान, जयपुर अपनी स्थापना से ही शैक्षिक उन्नयन एवं नवाचार के साथ-साथ समाज से जुड़े विभिन्न विषयों पर संगोष्ठियाँ व कार्यक्रम आयोजित करता रहा है। इसी शृंखला में 14 जुलाई को पाथेय भवन के देवर्षि नारद सभागार में 'भारतीय महिला : दृष्टि और दिशा' विषय पर व्याख्यान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पुनरुत्थान विद्यापीठ गुजरात की कुलपति प्रो. इन्दुमति काटदरे ने कहा कि हमारी शिक्षा भारतीय न होकर अमेरिकी-यूरो केन्द्रित है। सभी संगठनों को शिक्षा के भारतीयकरण करने के प्रयास करने चाहिए। कक्षा-कक्ष की शिक्षा व्यवस्था को भारतीय बनाना अत्यंत आवश्यक है। आज शिक्षा को स्वावलंबी बनाने की महती आवश्यकता है। धर्म एवं संस्कृति की रक्षा हेतु शिक्षा के साथ कुटुम्ब व्यवस्था का होना आवश्यक है। महिला सशक्तिकरण के भारतीय दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि भारत की समाज रचना परिवार केन्द्रित है। वहीं यूरो-अमेरिकी विचारधारा व्यक्ति केन्द्रित है। भारत में महिला एवं पुरुष मिलकर एकात्म संबंध का निर्माण करते हैं। जबकि विदेशों में ऐसा नहीं होता। भारत की समाज रचना में महिला-पुरुष मिलकर एक होते हैं क्योंकि हमारे यहाँ विवाह संस्कार है। वहीं यूरो-अमेरिकी देशों में विवाह करार है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी स्वतन्त्र, सशक्त, दया, करुणा, ममता की प्रतीक है।

हमारे ज्ञान क्षेत्र को ऐसा आवरण चढ़ गया है जो हम यूरो-अमेरिकी के हिसाब से चल रहे हैं। पति-पत्नी हेतु दम्पती शब्द का प्रयोग होता है लेकिन विदेशों में ऐसा नहीं है। दम्पती ही सारे कार्यों को सम्पन्न करते हैं जिनमें यज्ञ, पूजा आदि है। पुण्य या पाप के भागीदार भी पति-पत्नी दोनों ही हैं। यूरोपीय देशों का मानना है कि भारत में महिलाओं का शोषण होता है। क्योंकि महिलाएँ ही पूरे घर का कामकाज करती हैं। भारतीय व्यवस्था में नारी को पूज्य माना गया है। यह सांस्कृतिक श्रेष्ठता की जननी है। लेकिन आज भारत में नारी की सोच यूरो-अमेरिकी केन्द्रित हो गई है और उसे वह समझदारी समझती है कि वह जैसा पुरुष है, वैसा बनना चाहती है। इस हेतु हमारे समाज के साथ सरकार एवं कानून व्यवस्था ने भी इसे स्वीकार कर लिया है। भारत में आर्थिक केन्द्रित समाज न होकर धर्म केन्द्रित समाज है। भारत का विमर्श संस्कृति के आधार पर, कुटुम्ब के आधार पर चलेगा। हमारा लक्ष्य संस्कृति की स्थापना कर इसे परम वैभव पर ले जाना है। भारत का ईश्वर प्रदत्त दायित्व विश्व कल्याण का मार्ग है। हमारी शिक्षा व्यवस्था में पुन: चिन्तन करना पड़ेगा। कुटुम्ब शिक्षा को विद्यालय शिक्षा से ज्यादा महत्त्वपूर्ण बनाकर नई पीढ़ी को देश के लायक बनाना होगा। साथ ही स्वायत्त कुटुम्ब शिक्षा का विचार देश व समाज को करना होगा। इससे भारतीय संस्कृति को बचा सकेंगे।

राजस्थान विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति व संस्थान के अध्यक्ष प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल ने कहा कि भारतीय महिलाओं ने प्रारम्भ से लेकर अभी तक अनूठी छाप छोड़ी है। महिला श्रद्धा का प्रतीक है वहीं पुरुष विश्वास का प्रतीक है। सभी नाम महिलाओं से प्रारम्भ होते हैं जिनमें राधेश्याम, गौरी-शंकर, सीता-राम। भारत के इतिहास व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहा कि महिला केन्द्रित परिवार एवं विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा होनी चाहिए, लेकिन आज ऐसा नहीं हो रहा है। पुराने जमाने में भारत विश्व गुरु था। अब हमारा आत्मविश्वास कम हो गया है। भारत को भारत बनाने हेतु शिक्षा में भारतीयता होना आवश्यक है। इसलिए भारत विमर्श की आवश्यकता है। इस हेतु हमें हमारी मानसिकता बदलनी होगी। उन्होंने पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानव दर्शन पर गहराई से प्रकाश डाला। मुख्य अतिथि महारानी कॉलेज, राजस्थान विश्वविद्यालय की प्राचार्य प्रो. अल्पना कटेजा ने कहा कि समाज की व्यवस्था की जानकारी प्राप्त करनी है तो वहाँ के समाज की महिलाओं की दशा को देखा जा सकता है। नारी की प्रकृति को अनेक उदाहरणों से स्पष्ट करते हुए उन्होंने महिला सशक्तिकरण की मिशाल पेश की। महिलाओं के काम करने की क्षमता और सहनशीलता व अर्थव्यवस्था पर जानकारी देते हुए परिवार संचालन के बारे में बताया। महिलाओं की स्थिति को वैश्विक पटल पर रखते हुए बताया कि जीडीपी का 27 प्रतिशत भूमिका महिलाओं की है। महिलाओं के कार्यों को लेकर विश्व के 132 देशों में भारत का 112 वाँ स्थान है। भारत को आर्थिक महाशक्ति बनाने के लिए महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका बनानी होगी।

इस अवसर पर शैक्षिक मंथन मासिक के संपादक प्रो. संतोष पाण्डेय ने संस्थान का परिचय प्रस्तुत किया। मंच संचालन राजस्थान विश्वविद्यालय की डॉ. दीपिका विजयवर्गीय ने तथा आभार भरत शर्मा ने व्यक्त किया।

शैक्षिक महासंघ की विभिन्न इकाइयों द्वारा देश भर में गुरु वंदन कार्यक्रम

राजस्थान में प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के आह्वान पर राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) की प्रदेशभर की स्थानीय इकाइयों के स्तर पर गुरुपूर्णिमा के पुनीत अवसर पर शुक्ल पक्ष के दौरान महर्षि वेदव्यास को आदिगुरु मानते हुए उनके चित्र के सानिध्य में 'गुरुवंदन कार्यक्रम' प्रारंभ हो गए। गुरुवंदन के सादगीपूर्ण कार्यक्रम में महाविद्यालय शिक्षकों एवं विद्यार्थियों हेतु समाज के पुरोधा चिंतकों, पूज्य संतों और विद्वान शिक्षकों द्वारा गुरु की महिमा को स्थापित करने के हेतु पाथेय आयोजित किये जाते हैं।

सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में आयोजित गुरु वंदन कार्यक्रम में कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के पूर्व कुलपति पर प्रो. परमेंद्र दशोरा ने मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए कहा कि गूगल एक सूचना प्रवाह मात्र है, जबकि गुरु उचित अनुचित का भेद बताने का महती कार्य करता है। गुरु शिष्य संबंध औपचारिक व काल सापेक्ष न होकर अनौपचारिक तथा काल निरपेक्ष होने चाहिए। उन्होंने वर्तमान पीढ़ी में बढ़ रही सांस्कृतिक निरक्षरता पर चिंता व्यक्त करते हुए स्वामी विवेकानंद से प्रेरणा लेने का आह्वान किया। शैक्षिक संघ अध्यक्ष प्रो. दिग्विजय भटनागर ने विषय प्रवर्तन किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता अधिष्ठाता प्रो. साधना कोठारी ने की।

इसी क्रम में रुक्टा राष्ट्रीय की कोटा स्थित सभी राजकीय महाविद्यालयों की स्थानीय इकाइयों के संयुक्त तत्वावधान में गुरु वन्दन कार्यक्रम स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय, कोटा में सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम के मुख्य वक्ता पूर्व प्राचार्य डॉ. सत्यनारायण गर्ग रहे, अध्यक्षता भारतीय इतिहास संकलन समिति के चित्तौड़ प्रांत अध्यक्ष एवं प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डॉ. मोहन लाल साहू ने की। विशिष्ट अतिथि स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय, कोटा के मंत्री श्री विमल चन्द जैन थे। विषय प्रवर्तन करते हुए रुक्टा राष्ट्रीय के प्रदेश कार्यकारिणी सदस्य डॉ. गीताराम शर्मा ने मुनि वेदव्यास के जन्मदिन के दिन गुरु वन्दन का हेतु बताते हुए कहा कि आज तक व्यास जी जैसे साहित्य, इतिहास, भूगोल, दर्शन तथा विविध कलाओं के व्यक्तित्व का जन्म नहीं हुआ। इसीलिए महर्षि व्यास को आदिगुरु माना गया है। मुख्य वक्ता डॉ. गर्ग ने कहा कि विद्यार्थी के मन में सोयी हुयी शक्तियों का जागरण कर उन्हें समाज के उत्थान में लगाना गुरु का सामाजिक दायित्व है। शिष्य को कठिनतम समय के लिए सक्षम बनाना गुरु का परम कर्तव्य है। विशिष्ट अतिथि श्री विमल चन्द जैन ने कहा कि समय के अनुसार हर परिस्थिति का मुकाबला करने की शक्ति देकर समाज की बुराइयों से मुक्त होने का ज्ञान गुरु द्वारा ही प्राप्त होता है। कार्यक्रम के अध्यक्ष डॉ. मोहनलाल साहू ने कहा कि गुरु सामान्य से शिष्य को विशिष्ट बना देता है। कार्यक्रम का संचालन डॉ. आदित्य कुमार गुप्ता ने किया तथा आभार डॉ. रामावतार मेघवाल ने व्यक्त किया।

इसी प्रकार राजकीय कला, विज्ञान, वाणिज्य एवं महिला महाविद्यालय, दौसा में आयोजित संयुक्त गुरुवंदन कार्यक्रम में विद्याभारती जयपुर प्रान्त के उपाध्यक्ष एवं विद्या भारती की उच्च शिक्षा शाखा राजस्थान प्रान्त के पूर्व प्रभारी डॉ. ओमप्रकाश गुप्ता का पाथेय प्राप्त हुआ। गुप्ता ने कहा कि जिस प्रकार महर्षि वेदव्यास का जीवन दर्शन 'परोपकाराय पुण्याय' की अवधारणा पर अवलंबित है, उसी सिद्धांत पर शिक्षक साथियों के हित में रुक्टा (राष्ट्रीय) भी काम करता है। विद्यार्थियों को अपनी जिज्ञासाओं का समाधान अपने गुरुओं से अवश्य करना चाहिए।

इसी धारणा के आधार पर स्वामी विवेकानंद अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के योग्य एवं प्रिय शिष्य बन सके।

कार्यक्रम में विषय प्रवर्तन डॉ. शिव शरण कौशिक ने किया, अतिथियों का परिचय डॉ. शंभुलाल मीना ने कराया, धन्यवाद ज्ञापन डॉ. राकेश शर्मा ने किया ।

कार्यक्रम में विज्ञान वाणिज्य महाविद्यालय दौसा के इकाई सचिव डॉ. चंद्र प्रकाश महेंद्रा, महिला महाविद्यालय दौसा के इकाई सचिव डॉ. सतीश सिंहल, अन्य शिक्षकगण तथा बड़ी संख्या में विद्यार्थी उपस्थित रहे।

अलवर के राजर्षि महाविद्यालय, कला महाविद्यालय एवं जी.डी. महाविद्यालय में संयुक्त गुरु वंदन कार्यक्रम में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विभाग प्रचारक मुकेश का उद्‌बोधन प्राप्त हुआ। कार्यक्रम के अध्यक्ष प्रो. एन.एल. शर्मा, विशिष्ट अतिथि डॉ. गंगाश्याम गुर्जर व डॉ. बुद्धमति यादव थी। विषय प्रवर्तन डॉ. गंगाश्याम गुर्जर ने, अतिथियों का परिचय डॉ. करमवीर सिंह ने, धन्यवाद ज्ञापन डॉ. धंनजय कुमार सिंह ने व मंच संचालन डॉ. लता शर्मा ने किया।

राजकीय महाविद्यालय, सरदारशहर में आयोजित गुरुवंदन कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में रुक्टा राष्ट्रीय के प्रदेश अध्यक्ष डॉ. दिग्विजय सिंह का पाथेय हुआ। डॉ. सिंह ने गुरुवंदन कार्यक्रम के व्यापक उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए रुक्टा राष्ट्रीय एवं अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के सामाजिक, शैक्षिक तथा अकादमिक सरोकारों की चर्चा की। उन्होंने केंद्रीय संगठन के आह्वान पर प्रतिवर्ष गुरु पूर्णिमा के अवसर पर गुरु वंदन कार्यक्रम के आयोजन द्वारा विद्यार्थियों, शिक्षकों व समाज के मध्य इस आयोजन के महत्त्व को रेखांकित किया। कार्यक्रम में विषय प्रवर्तन डॉ. सुमित्रा शर्मा ने किया एवं सीकर विभाग के सचिव डॉ. देवीशंकर शर्मा ने आभार व्यक्त किया संचालन इकाई सचिव डॉ. कविता शर्मा ने किया।

राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर में संपन्न गुरुवंदन कार्यक्रम में मुख्यवक्ता पेंशनर समाज के प्रांतीय उपाध्यक्ष पंडित वाणीनंदन व्यास एवं अध्यक्ष रुक्टा (राष्ट्रीय) के भूतपूर्व प्रांतीय अध्यक्ष डॉ. धर्मचंद जैन रहे। डॉ. व्यास ने गुरुतत्व के स्वरूप और महत्त्व का शास्त्रीय विवेचन करते हुए कहा कि गुरु शिष्य की समस्त दुविधाओं को दूर करता है। डॉ. धर्मचंद जैन ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में भारतीय ज्ञान परंपरा का संक्षिप्त परिचय करवाने के साथ ही संगठन भाव से कार्य करने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया तथा विषम परिस्थितियों में भी संगठन की संघर्ष यात्रा में कार्य करते हुए सतत सक्रियता का आह्वान किया।

राजकीय महाविद्यालय, कुशलगढ़ में

आयोजित गुरु वंदन कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए रुक्टा राष्ट्रीय के प्रदेश सह संगठन मंत्री डॉ. सुशील कुमार बिस्सू ने कहा कि गुरु अपने शिष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है। गुरु वह है, जो अपने शिष्य को कर्तव्य का बोध करवाता है और अपने कर्म को सर्वश्रेष्ठ तरीके से कैसे किया जाए, इसका मार्ग सिखाता है। उन्होंने प्राचीन भारतीय परिवेश में गुरुकुल शिक्षण पद्धति को शोधपूर्ण व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण शिक्षा व्यवस्था बताते हुए कहा कि लार्ड मैकाले को भी भारतीय शिक्षण पद्धति की प्रशंसा में कहना पड़ा था कि जब तक मूल भारतीय शिक्षण पद्धति रहेगी, अंग्रेजी राज्य स्थापित नहीं हो सकता। डॉ. बिस्सु ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठता को अपने वक्तव्य में विस्तार से बताते हुए जीवन मे शिक्षा एवं शिक्षक के महत्व पर प्रकाश डाला।

अध्यक्षीय उद्‌बोधन में डॉ. आलोक श्रीवास्तव ने गुरु पूर्णिमा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि महाभारत, भगवदगीता एवं अठारह पुराणों के रचयिता महर्षि वेदव्यास का जन्म दिन भी आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को होता है, जिसे भारतवर्ष में गुरु पूर्णिमा के रूप में मनाया जाता है। कार्यक्रम का संचालन डॉ नवीन मितल ने किया।

वीकेबी राजकीय कन्या महाविद्यालय, डूंगरपुर में आयोजित गुरु वंदन कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए प्रदेश महामंत्री डॉ. नारायण लाल गुप्ता ने भारत की महान गुरु शिष्य परम्परा को पुनर्जीवित करने तथा शिक्षकों से अपना गुरुतत्व जागृत करते हुए विद्यार्थियों में राष्ट्र के लिए दूरगामी सोच पैदा करने का आह्वान किया। प्राचार्य डॉ. दीपक शाह ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में कहा कि हमें भारत को पुन: विश्व गुरु के रूप में स्थापित करने का प्रयास करना होगा। कार्यक्रम का संचालन डॉ. विवेक मंडोत ने किया।

राजकीय महाविद्यालय जालौर में आयोजित गुरु वंदन कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए रुक्टा राष्ट्रीय के प्रदेश संगठन मंत्री डॉ. दीपक शर्मा ने कहा कि गुरु मनुष्य को अंधकार से प्रकाश का मार्ग दिखाता है तथा अपने विद्यार्थियों को जीवन का वृहत्तर लक्ष्य देखने में मदद करता है।

राजकीय महाविद्यालय, राजाखेड़ा में आयोजित गुरुवंदन कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के रूप में डॉ. सतीश त्रिगुणायत ने उद्‌बोधन प्रदान किया। कार्यक्रम में डॉ. राजबाला सिंह ने भी अपने विचार अभिव्यक्त किये। कार्यक्रम का संचालन अंकुश मीणा ने किया।

राजकीय महाविद्यालय, जैसलमेर में रुक्टा राष्ट्रीय के प्रदेश कार्यकारिणी सदस्य डॉ. नेमीचंद का उद्‌बोधन हुआ। इसी प्रकार एमबीसी राजकीय कन्या महाविद्यालय, बाड़मेर में मुख्यवक्ता के रूप में मांगीलाल जैन का उद्‌बोधन हुआ। राजकीय महाविद्यालय, बारां में आयोजित गुरुवंदन कार्यक्रम में कृष्णमुरारी मीणा ने अध्यक्षता की। कार्यक्रम में रामकेश मीणा एवं डॉ. केशव शर्मा ने उद्‌बोधन दिया।

राजकीय कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर में आयोजित गुरुवन्दन कार्यक्रम के मुख्य वक्ता आर्य समाज के रामनिवास रहे व विशिष्ट अतिथि डॉ. रामसिंह राजावत ने भी उद्‌बोधन दिया।

गंगापुर सिटी नगर के सभी महाविद्यालयों का संयुक्त गुरुवंदन कार्यक्रम श्री मत्स्य महाविद्यालय में आयोजित किया गया, जिसमें मुख्य वक्ता एस.के. अग्रवाल रहे एवं अध्यक्षता पृथ्वीराज मीना ने की।

राजकीय महाविद्यालय, गोगुंदा (उदयपुर) में आयोजित गुरु वंदन कार्यक्रम में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जिला महाविद्यालय विद्यार्थी प्रमुख ख्याली लाल ने मुख्यवक्ता के रूप में पाथेय प्रदान किया। कार्यक्रम में संगठन के प्रदेश कार्यकारिणी सदस्य डॉ. सरोज कुमार ने भी विचार रखे।

भीलवाड़ा स्थित समस्त महाविद्यालय इकाइयों के संयुक्त तत्वावधान में गुरु वंदन कार्यक्रम के अंतर्गत आयोजित संगोष्ठी में मुख्य वक्ता प्रांत कार्यवाह- राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ डॉ शंकर लाल माली एवं मुख्य अतिथि डॉ रोशन लाल पीतलिया, पूर्व प्राचार्य रहे।

इसी प्रकार राजकीय महाविद्यालय, टोडाभीम (करौली), हाडीरानी राजकीय महाविद्यालय,सलूम्बर, एचकेएम पीजी कालेज, घड़साना, राजकीय महाविद्यालय, नोहर, राजकीय महाविद्यालय, होद (सीकर), राजकीय महाविद्यालय, अनुपगढ़, जा.दे. राजकीय महाविद्यालय, तारानगर, राजकीय महाविद्यालय, सिरोही, राजकीय महाविद्यालय, केकड़ी, राजकीय महाविद्यालय, बूंदी एवं राजकीय महाविद्यालय, खेतड़ी सहित अनेक महाविद्यालयों में गुरुवंदन कार्यक्रम समारोहपूर्वक मनाए गए हैं।

हरियाणा-

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय (एमडीयू) रोहतक, के संस्कृत विभाग तथा विश्वविद्यालय शैक्षिक संघ के संयुक्त तत्वावधान में संस्कृत विभाग में गुरु वंदन कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रो. सुरेन्द्र कुमार ने कार्यक्रम में उपस्थित विद्यार्थियों को जीवन में अनुशासित होकर कठिन परिश्रम करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कहा कि ध्येयनिष्ठ व्यक्ति ही जीवन में सफलता को प्राप्त कर सकता है। प्रो. सुरेन्द्र कुमार ने विद्यार्थियों को कर्तव्यबोध, विवेक शीलता, जागरूकता, संयम और लक्ष्य प्राप्ति के लिए निष्ठा आदि गुणों को ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने विद्यार्थी और गुरु के संबंध की व्याख्या करते हुए कहा कि छात्र विकास में ही गुरु का विकास निहित है।

इस कार्यक्रम में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रांत कार्यवाह सुभाष आहूजा मुख्य अतिथि रहे। उन्होंने गुरु महिमा पर कहा कि गुरु को भगवान से भी बड़ा दर्जा दिया गया है, क्योंकि गुरु ही ईश्वर प्राप्ति का मार्ग दिखाता है। डीन, कॉलेज डेवलपमेंट काउंसिल प्रो. युद्धवीर ने भी इस अवसर पर प्रेरणादायी संबोधन से विद्यार्थियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया।

इसी प्रकार दीनबंधु छोटू राम विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विवि मुरथल के शैक्षिक संघ द्वारा आयोजित गुरु वंदन कार्यक्रम में कुलपति राजेंद्र कुमार अनायत ने कहा कि माता-पिता के बाद यदि कोई पूजनीय माना गया है तो वह गुरु ही है। वह हमें ज्ञान देता है, जिससे व्यक्तित्व विकसित होता है।

भारतीय संस्कृति में ज्ञान की सर्वाधिक महत्ता है, इसलिए समाज में गुरु का भी विशेष स्थान है। उन्होंने कहा कि गुरु शब्द पहले केवल भारतीय शब्दकोश में था। लेकिन अब दूसरे देशों ने भी गुरु के महत्व को स्वीकार करते हुए अपने शब्दकोश में शामिल कर लिया है।

'भारतीय परम्परा का आधुनिक भारत : स्वरूप एवं दिशा' विषय पर वाराणसी (उ.प्र.) में राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्पन्न

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी व अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ, नई दिल्ली द्वारा संयुक्त रूप से प्रस्तावित 'भारतीय परंपरा का आधुनिक भारत : स्वरूप एवं दिशा' विषय पर केंद्रित द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी गांधी अध्ययन पीठ सभागार, वाराणसी में दिनांक 27-28 जुलाई 2019 को संपन्न हुई। इस संगोष्ठी में देश के 14 राज्यों के 343 विद्वान-विदुषियों ने भाग लिया। संगोष्ठी में आयोजित हुए तीन तकनीकी सत्रों में प्रतिभागियों ने अपने शोध-पत्र प्रस्तुत किए।

संगोष्ठी के उद्घाटन-सत्र की अध्यक्षता गांधी अध्ययन पीठ के कुलपति प्रो. टी. एन. सिंह ने की। मुख्य अतिथि उत्तर प्रदेश शासन के उपमुख्यमंत्री व उच्च शिक्षा मंत्री प्रो. दिनेश शर्मा थे। मुख्य वक्तव्य दिया प्रख्यात संस्कृतिविद प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने। प्रो. मिश्र ने कहा कि भारतीय परंपरा विश्व की उन अनेक संस्कृतियों को आधार प्रदान करती है, जिनके विषय में कहा जाता है कि वे अत्यधिक प्राचीन हैं। उनके अनुसार बारह सौ साल का मुस्लिम और उसके बाद का ईसाई प्रभाव-काल हमारी महान् संस्कृति को नष्ट तो नहीं कर सका, लेकिन इसने इसे हानि बहुत पहुँचाई। वर्तमान में भारत पुन: विश्व का प्रतिनिधित्व करने की स्थिति में आ रहा है और जिन्हें भारत का यह गौरव पसंद नहीं, वे अपना भविष्य और कहीं देखें।

मुख्यातिथि प्रो. दिनेश शर्मा ने अपने अनुभूत तथ्यों के आधार कहा कि आज का भारत अतीत के कलंकों को धोने वाला भारत है। अमेरिका व यूरोप के विकसित देश भी न केवल भारतीय मेधा का लोहा मानते हैं, बल्कि वे भयभीत हैं कि भारत उनकी प्रभुता छीन न ले। इसका एक ही कारण है कि आज तक हमने अपनी भारतीयता, अपनी परंपरा नहीं छोड़ी है। आज भारत का युवा एक हाथ में गीता और एक हाथ में कम्प्यूटर लेकर खड़ा है और इसी कारण वह भविष्य का विश्वास जीतने वाला विश्व-नायक बनने की ओर अग्रसर है।

इससे पूर्व अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ शैक्षिक महासंघ के अध्यक्ष प्रो. जे.पी. सिंघल ने संगठन का परिचय दिया और संगोष्ठी की संकल्पना प्रस्तुत की। उद्घाटन-सत्र के अध्यक्ष प्रो. टी.एन. सिंह ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि जो देश अपने सांस्कृतिक मूल को नहीं छोड़ता है, वह निश्चय ही दुनिया में आगे बढ़ता है। हमने कभी भी अपने मूल संस्कारों का त्याग नहीं किया, इसलिए आज हम दुनिया में आगे बढ़ते दिखाई रहे हैं। सत्र का संयोजन प्रो. उदय प्रकाश ने किया व धन्यवाद-ज्ञापन की परंपरा का निर्वहन प्रो. आर.पी. सिंह ने किया।

संगोष्ठी के प्रथम तकनीकी सत्र, जिसका उपविषय 'भारतीय परंपरा व भारतीयता' था, की अध्यक्षता . प्रो. आर. एन. दुबे ने की व मुख्य वक्तव्य दिया प्रो. जीतेन्द्र मिश्र ने। प्रो. मिश्र ने कहा कि परम्परा संस्कृति का सहज प्रवाह है। एक समय था जब व्यक्ति के सम्मान का कारक चरित्र था, धन नहीं। हम कोशिश करें कि हमारा चरित्र उज्ज्वल हो और धन हमारा केंद्रीय तत्त्व न हो। हमें देखना चाहिए कि हम विदेशी दुष्प्रचारवश अपनी संस्कृति के बारे में कहीं भ्रमित तो नहीं हो रहे हैं? अगर कहीं हम भ्रमित हो रहे हैं, तो हमें हमारे भ्रमों का निवारण करना चाहिए।

सत्र के अध्यक्ष प्रो. दुबे का कहना था हमारे शास्त्रों में हमारी परंपरा जीवंत रूप में विद्यमान है। हम इसका अनुसरण करते हुए अपने चरित्र का निर्माण करते रहें, यही प्रगति का युक्तियुक्त मार्ग है। सत्र का संचालन किया प्रो. डॉ. राहुल गुप्ता ने और धन्यवाद दिया डा. शम्भुनाथ शास्त्री ने।

द्वितीय तकनीकी सत्र का उपविषय था 'भारतीय परंपरा का स्वरूप व नवोन्मेष'। इस सत्र की अध्यक्षता प्रो. प्रग्नेश शाह ने की। मुख्य वक्ता की भूमिका में थे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के प्रो. देवव्रत। प्रो. देवव्रत का विचार था कि परंपरा हमें श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर की ओर लेकर जाती है और जब-जब इसमें विचलन आता है, तब-तब समस्याएँ खड़ी होती हैं। जैसे देश में जो बेरोजगारी है, वह इस विचलन का ही परिणाम है। बेरोजगारी का तो हमारी परंपरा में स्थान ही नहीं था। सभी लोग अपना-अपना काम दायित्वपूर्वक पूरा करते थे। हमें पता होना चाहिए कि हमारी परंपरा को पश्चिम न समझ सकता है और न ही समझा सकता है - इसलिए हमारी परंपरा की व्याख्या हम ही करें, तो अच्छा रहे। हमें समझना होगा कि परंपरा से संपृक्त हुए बिना आधुनिकता सम्पादित हो ही नहीं सकती।

सत्राध्यक्ष प्रो. प्रग्नेश शाह ने कहा कि परंपरा हमें सिखाती है कि हमें किस तरह रहना चाहिए। हमें प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए ही आगे बढ़ना चाहिए। हमें यह समझना चाहिए कि हम ईश्वर से शासित होते हैं और ईश्वरीय व्यवस्था में कोई दोष नहीं है। इस सत्र का संयोजन प्रो. गीता भट्ट ने किया। आभार-प्रदर्शन का दायित्व निभाया डॉ. जी.एन. पाण्डेय ने।

तृतीय तकनीकी सत्र, जिसका उपविषय 'वैश्विक संस्कृति का स्वरूप : अधिष्ठान व प्रभाव' था, के अध्यक्ष थे एल.एन. मिश्रा विश्वविद्यालय, दरभंगा के कुलपति प्रो. एस. के. सिंह। मुख्य वक्ता थे प्रसिद्ध विद्वान प्रो. गिरीश्वर मिश्रा। उन्होंने

कहा कि आज पश्चिम जिस 'विश्वग्राम' की बात करता है, उसकी अवधारणा तो भारतीय परंपरा में सदियों से प्रचलित है। पश्चिम के विपरीत भारत के विश्वग्राम में किसी प्रकार की यांत्रिकता नहीं थी। उन्होंने कहा कि हमें, नई शिक्षा-नीति के अनुसार, भारत-केंद्रित व ज्ञान-केंद्रित होना होगा। ज्ञान का हम आयात नहीं कर सकते और यदि करते हैं, तो यह अनुचित है - इसलिए श्रेष्ठतर यही होगा कि हम हमारे अन्तर्भूत भारतीय ज्ञान को ही जगाएँ।

सत्र के अध्यक्ष प्रो. एस.के. सिंह की दृष्टि में आधुनिकता की ओर बढ़ते भारत में हमें सूचना, ज्ञान व विवेक के समन्वय की त्रिवेणी बहानी होगी। इसके लिए सबसे अधिक आवश्यक है हम में परंपरा के प्रकाश में सीखने की ललक हो। इस सत्र का संयोजन प्रो. मनोज सिन्हा ने किया। आभार-ज्ञापन किया प्रो. निर्मला यादव ने।

संगोष्ठी के समारोप-सत्र के मुख्यातिथि थे सुप्रसिद्ध विद्वान एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अखिल भारतीय संपर्क प्रमुख प्रो. अनिरुद्ध देशपांडे ने अपने उद्‌बोधन में प्रो. देशपांडे ने इस प्रकृति की संगोष्ठियों का महत्त्व प्रतिपादित किया और कहा कि किसी देश की परंपरा ही उस देश को विशिष्ट बनाती है। इसलिए आधुनिक को चिरन्तर के साथ विचार करने की आवश्यकता है। किसी भी देश की संस्कृति की व्याख्या उसका समाज करता है। आपने कहा कि स्व की अनुभूति चली गई तो सब कुछ व्यर्थ हो जायेगा अत: यह निरन्तर रहे यह अत्यन्त आवश्यक है। इस वैशिष्टय को बनाए रखने का दायित्व निभाते हैं देश के शिक्षक। परंपरा से जुड़े हमारे देश के लोग एक ओर गुरु में भगवान देखते हैं - तो दूसरी ओर हमारे देश के गुरु भी अपने कर्त्तव्य-बोध के प्रति सचेत रहते हैं। प्रो. देशपांडे ने विश्वास प्रकट किया कि अपनी परंपराओं का परिरक्षण करते हुए हम देश को दुनिया में पुन: उच्चासन पर आसीन कर देंगे।

समारोप-सत्र के अध्यक्ष प्रो. टी.एन. सिंह ने कहा कि नए व आधुनिक भारत के निर्माण में निश्चित रूप से हम परंपरा से ही निर्दिष्ट होंगे और यह गोष्ठी इस ज्ञान-यज्ञ में अपना इतिहाससम्मत योगदान करेगी। इससे पूर्व अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के उच्चशिक्षा संवर्ग के संयुक्त सचिव डॉ. नारायणलाल गुप्ता ने संगोष्ठी का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। सत्र का संचालन प्रो. आमोद ने तथा राष्ट्रीय महामंत्री श्री शिवानन्द सिन्दनकेरा ने आभार प्रकट किया।

AJKTLF urged to announce policy for teacher's transfer

The state President and leader of the All Jammu Kashmir Ladakh Teachers Federation affiliated to Akhil Bharatiya Rashtriya Shaikshik Mahasangh (ABRSM) Devraj Thakur has urged the State government to come forward with a definite policy with regard to transfer of teachers and revision of DPC in J&K state .

Speaking to teachers here on 11 July 2019, Mr. Thakur said that the State having no definite policy with regard to the transfer of government school teachers was leading to unnecessary confusion every year.

Teachers form the largest group among the State government employees. However, the successive governments have failed to implement a definite transfer policy. The teachers have been demanding for inter-zonal transfers to ensure better quality of education.

However, the government is yet to consider seriously the need for having a transfer policy for school teachers. There may be several hitches in introducing inter-zonal transfer for school teachers. But the government should make some forward move in consultation with teachers, officials and experts, he said.

The teachers in Kathua Poonch, Jammu, Rajouri and Samba are agitating for non seriousness of the Authority to transfer them in times in suitable places.

Further we appeal to the Hon'able Governor to take the appropriate actions and instructions for the Education department to fulfill the long pending demands of teaching community .The teachers are the worst suffered due to not transparent transfer policy in the state.

He alleged that hundreds of General Line Teachers and Masters have been working in far flung areas for the past several years but the department has never initiated general transfers as per teachers Transfer Policy despite repeated representations from the general line teachers/masters in several districts.

Mr Thakur also appealed the CEOs of Poonch and Kathua to fulfill the genuine greviences of the teaching community without any delay.

Mr Thakur hailed the govt. initative for handing over the MDM to panchyat which was the long pending demand raised by our organisation with State and Central Govts. A big relief given for teachers community by the Hon'able Governor for releiving the teachers from MDM .

पंजीयन क्र/126/जोध/95–96 ॐ ☎0291–2757941

विद्या भारती शिक्षा संस्थान, जोधपुर

E-Mail – vbssjod@gmail.com "श्रुतम" कमला नेहरू नगर, जोधपुर

भारतीय संस्कृति के अनुरूप श्रेष्ठ संस्कारों के साथ उत्तम शिक्षा देने के लिए प्रयासरत

बोर्ड परीक्षा परिणाम 2018–19

12 वीं बोर्ड परीक्षा परिणाम – 2018–19

वर्ग	विद्या मंदिर सहभाग	कुल विद्यार्थी	परीक्षा में प्रविष्ट	उत्तीर्ण								
				90% व ऊपर	75%-89%	61%-74%	60 %	51 %-59 %	46%-50 %	33%-45 %	योग	परिणाम प्रतिशत
विज्ञान	17	505	505	16	135	253	11	75	5	0	495	98.02
वाणिज्य	16	386	386	3	55	157	13	108	25	4	366	94.82
कला	23	660	658	19	225	295	11	80	17	6	653	99.24
योग		1551	1549	38	415	705	35	263	47	10	1514	

10 वीं बोर्ड परीक्षा परिणाम – 2018–19

वर्ग	विद्या मंदिर सहभाग	कुल विद्यार्थी	परीक्षा में प्रविष्ट	उत्तीर्ण								
				90% व ऊपर	75-89%	61%-74%	60 %	51 %-59 %	46%-50 %	33%-45 %	योग	परिणाम प्रतिशत
पाली	11	471	471	6	88	124	9	104	54	38	423	89.81
बाली	8	295	295	5	43	108	11	80	21	17	285	96.61
सिरोही	14	803	803	35	158	268	19	169	57	28	734	91.41
जालोर	11	518	517	16	91	183	3	106	20	19	438	84.72
बालोतरा	4	208	208	11	57	85	6	32	9	3	203	97.6
बाड़मेर	15	548	546	17	127	202	12	114	43	17	532	97.44
जैसलमेर	11	302	302	14	59	100	8	65	31	11	288	95.36
जोधपुर जिला	16	867	866	35	191	333	18	195	36	21	829	95.73
जोधपुर महानगर	10	476	476	19	91	157	9	109	29	19	433	90.97
नागौर	11	485	484	8	112	171	8	106	42	17	464	95.87
बीकानेर	11	512	511	27	117	176	11	107	29	18	485	94.91
श्रीगंगानगर	7	216	216	9	49	74	5	46	15	9	207	95.83
हनुमानगढ़	2	53	53	3	10	14	1	11	7	4	50	94.34
योग	131	5754	5748	205	1193	1995	120	1244	393	221	5371	93.4

प्रान्त के सभी प्रधानाचार्यों, आचार्यों, समिति, अभिभावक एवं मेधावी विद्यार्थियों को हार्दिक बधाई।

डॉ.श्रवण कुमार मोदी
अध्यक्ष
विद्या भारती शिक्षा संस्थान, जोधपुर

गंगाविशन बिश्नोई
मंत्री
विद्या भारती शिक्षा संस्थान, जोधपुर

Website - www.hkmundracollege.org
Ph. 01506-251516

E-mail : hkmundracollege@gmail.com
M-9414504389, Fax : 01506-251515

ॐ श्री गणेशाय नमः

राजस्थान सरकार से स्थाई मान्यता प्राप्त एवं
महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय बीकानेर से सम्बद्ध

H.K.M. (P.G.) COLLEGE

Gharsana- 335711, Distt. SRI GANGANAGAR (RAJ.)

**विज्ञान, कम्प्यूटर,
वाणिज्य एवं कला
संकाय से युक्त**

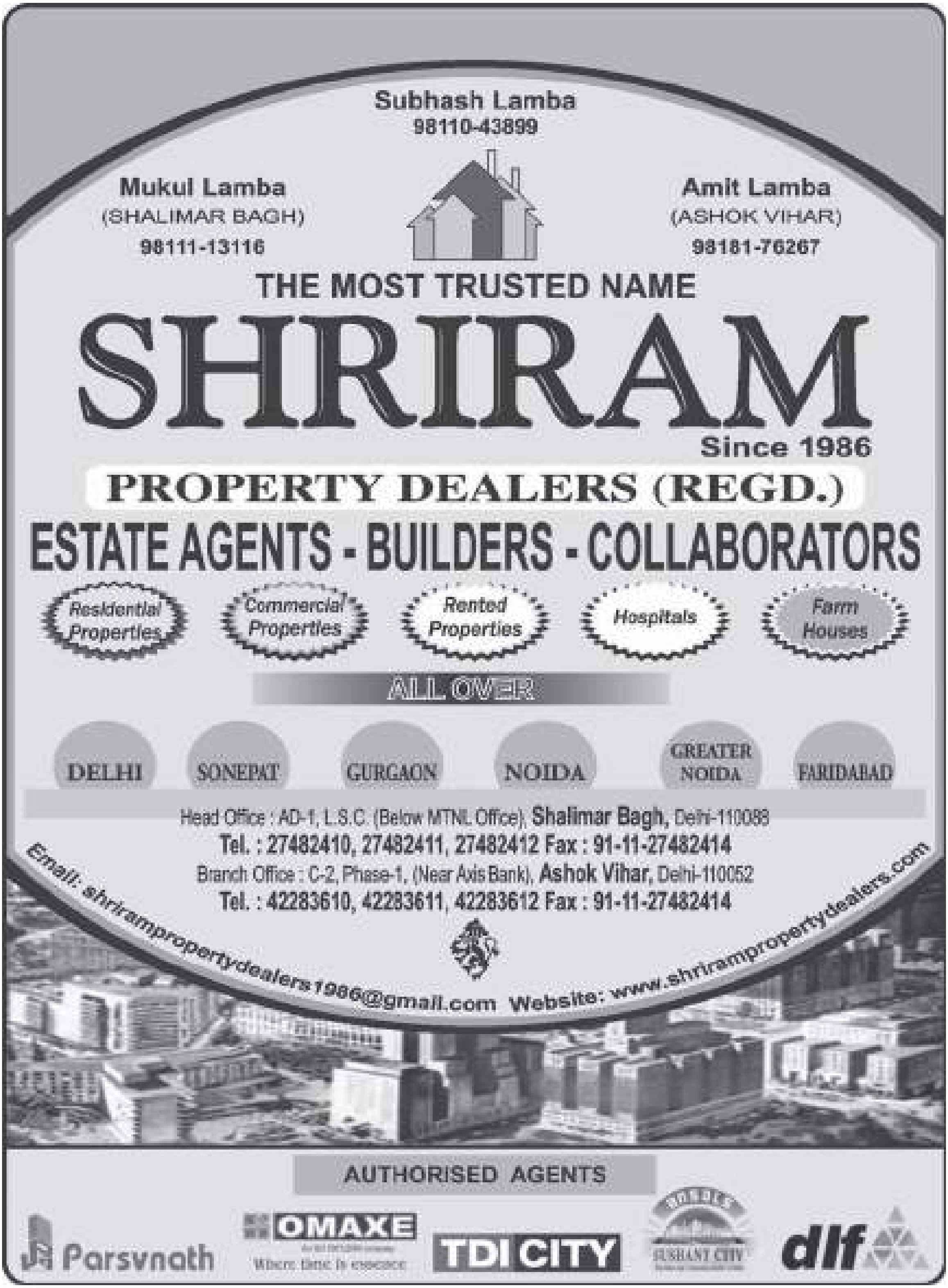
Subhash Lamba
98110-43899
Mukul Lamba
(SHALIMAR BAGH)
98111-13116
Amit Lamba
(ASHOK VIHAR)
98181-76267
THE MOST TRUSTED NAME
SHRIRAM
Since 1986
PROPERTY DEALERS (REGD.)
ESTATE AGENTS - BUILDERS - COLLABORATORS
Residential Properties
Commercial Properties
Rented Properties
Hospitals
Farm Houses
ALL OVER
DELHI
SONEPAT
GURGAON
NOIDA
GREATER NOIDA
FARIDABAD
Head Office : AD-1, L.S.C. (Below MTNL Office), Shalimar Bagh, Delhi-110088
Tel. : 27482410, 27482411, 27482412 Fax : 91-11-27482414
Branch Office : C-2, Phase-1, (Near Axis Bank), Ashok Vihar, Delhi-110052
Tel. : 42283610, 42283611, 42283612 Fax : 91-11-27482414
Email: shrirampropertydealers1986@gmail.com Website: www.shrirampropertydealers.com
AUTHORISED AGENTS
Parsvnath
OMAXE
Where time is essence
TDI CITY
SUSHANT CITY
dlf

पंजीयन संख्या -5/चित्तौड़गढ़/ 94-95 ॥ ॐ ॥ 0145-2603524

विद्या भारती, चित्तौड़ प्रान्त

(विद्या भारती अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान एवं विद्या भारती राजस्थान से सम्बद्ध)

माधव स्मृति आदर्श विद्या निकेतन (माध्यमिक) परिसर, पुष्कर मार्ग, अजमेर-305004

रामप्रकाश बंसल
अध्यक्ष

विरेन्द्र कुमार शर्मा
मंत्री

विद्या भारती चित्तौड़ प्रान्त का उद्देश्य विद्यार्थियों में नैतिक, आध्यात्मिक, चारित्रिक गुणों का विकास कर राष्ट्र समर्पित जीवन का निर्माण करना है। विद्यार्थियों में गुणों के विकास के लिए संस्था द्वारा 12 जिलों में चलाये जा रहे विद्यालयों की स्थिति निम्न प्रकार है -

औपचारिक शिक्षा केन्द्र

विद्यालय	संस्था	छात्र संख्या		
		भैया	बहिन	योग
उच्च माध्यमिक	19	656	376	1031
माध्यमिक	92	6587	3510	10097
उच्च प्राथमिक	84	11925	6596	18621
प्राथमिक शिशुवाटिका सहित	79	28958	19719	48677
योग	274	48125	30201	78325
कुल आचार्य दीदी	**3316**			

अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र

	संख्या	छात्र संख्या	आचार्य संख्या
संस्कार केन्द्र	289	6588	301
एकल विद्यालय बांसवाड़ा परियोजना	744	22299	744
एकल विद्यालय सोंधवाड़ क्षेत्र	65	1557	59
योग	1068	30444	1101

प्रांत में दो अर्द्ध आवासीय विद्यालय कोटा एवं चित्तौड़गढ़ में तथा एक नि:शुल्क अर्द्ध आवासीय विद्यालय कोठार (बांसवाड़ा) में चलता है।

अत: सभी बंधुओं से आग्रह है कि अपने बच्चों को संस्कारित एवं गुणवान बनाने के लिए उन्हें विद्या भारती द्वारा संचालित विद्यालयों में प्रवेश दिलाएँ।

रामप्रकाश बंसल
अध्यक्ष

सुरेन्द्र सिंह राव
मंत्री

विद्या भारती राजस्थान

वार्षिक वृत्त : 2018-19

औपचारिक शिक्षा केन्द्र

	शासकीय जिले	तहसील	विकास खण्ड	संकुल
कुल	33	309	299	160
कार्ययुक्त	33	281	263	166

औपचारिक शिक्षा

स्तर	विद्यालय संख्या	आचार्य			छात्र		
		पुरुष	महिला	योग	भैय्या	बहिन	योग
शिशु वाटिका	39	343	925	1268	20276	15153	35429
प्राथमिक	288	2487	2564	5051	79431	53981	133412
उ.प्राथमिक	257	1715	685	2400	42598	24082	66680
माध्यमिक	327	1826	516	2342	25342	13866	39208
व.माध्यमिक	106	551	221	772	5566	4190	9756
अन्य	4						
कुल	1021	6922	4911	11833	173213	111272	284485

अनौपचारिक शिक्षा

स्तर	इकाइयाँ	छात्र	छात्रा	योग	आचार्य	आचार्या	योग
संस्कार केन्द्र	713	8910	7548	16458	374	339	713
एकल विद्यालय	880	13669	12341	26010	570	310	880
कुल	1593	22579	19889	42468	944	649	1593

सम्पूर्ण भैया-बहिनों का योग 284485+42468 = 326953

परीक्षा परिणाम = 2018-19

	10वीं				12वीं			
स्तर	जयपुर	जोधपुर	चित्तौड़	योग	जयपुर	जोधपुर	चित्तौड़	योग
कुल परीक्षार्थी	8028	5748	4560	18336	2570	1549	480	4599
प्रथम श्रेणी	4804	3513	2816	11133	1739	1193	335	3267
परीक्षा परिणाम में	94.05	93.44	95.15	92.64	93.50	97.67	94.37	92.97
90% से उच्च प्राप्तांक बालकों की संख्या	340	205	125	670	51	38	6	95
100% परिणाम वाले विद्यालय	54	37	37	128	38	13	10	61

वर्ष 2018-19 की राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड परीक्षा में उच्च माध्यमिक के 9 बालक (93.00% तक) व माध्यमिक के 27 भैया/ बहिनों (95.50% तक) ने स्थान प्राप्त किया है।

- कक्षा 3 से कम्प्यूटर शिक्षा सुविधा
- वाहन सुविधा
- अंग्रेजी स्पोकन पर विशेष प्रयास
- सभी विद्यालय इन्टरनेट से युक्त
- खेलों के लिये पर्याप्त मैदान एवं खेल सामग्री।
- देश दर्शन के कार्यक्रम।
- विद्यालय भवन साफ, सुसज्जित एवं मूलभूत सुविधाओं युक्त
- आचार्यों को नवीन शिक्षण तकनीकी से अवगत कराने के लिये प्रशिक्षण योजना।
- विद्यालयों का वातावरण विशुद्ध भारतीय संस्कृति को पोषित करने वाला एवं संस्कारवान।

प्रो. भरतराम कुम्हार
अध्यक्ष

शिवप्रसाद
संगठन मंत्री

डॉ. परमेन्द्र दशोरा
मंत्री

श्री गुरूजी छात्रावास
उ.मा. आदर्श विद्या मन्दिर
आदर्श नगर, जयपुर
प्रवेश प्रारम्भ
कक्षा 10वीं में 90% अंक पर 10,000 रु. की एवं 94% से अधिक पर 25,000 रु. की शुल्क में छूट दी जावेगी।
भोजन
प्रातः दूध, दलिया, पोहे, जलेबी, हलुआ
भोजन : चावल, चपाती, दही, सब्जी, सलाद
अपराह्न : 4 बजे फलाहार
प्रत्येक रविवार : विशेष भोजन
प्रत्येक त्योहार : विशेष भोजन
सत्र 2018–19 के Topper विद्यार्थी
कक्षा XII विज्ञान वर्ग
भैया हेमन्त शर्मा 93.20%
भैया पवन कुशवाह 91.00%
भैया सलिल कृष्णा 90.40%
कक्षा X
भैया रचित गोयल 93.40%
भैया कुणाल 92.87%
भैया अक्षय पारेख 90.87%
विद्यालय के भैया बहिनों द्वारा प्रस्तुत विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों की झलकियाँ
सम्पर्क- रामानंद चौधरी मो. 97993 94656